श्री श्री रामकृष्ण कथामृत - 3

श्री मुनसफ अनुकूल सान्याल ने 17 वर्ष की वयस् में श्री श्री माँ के दर्शन जयरामवाटी में किए थे और उन्हें कथामृत का यह तीसरा भाग पढ़कर सुनाया था।

—श्री म दर्शन 6:21:5 (1988 संस्करण पृष्ठ 220)

प्रथम खण्ड

कलकत्ता में श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के साथ श्रीरामकृष्ण का मिलन

प्रथम परिच्छेद

(विद्यासागर का घर)

आज शनिवार, श्रावण की कृष्णा षष्ठी तिथि, 5 अगस्त 1882 ईसवी। चार बजने को हैं।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलकत्ते के राजपथ से गाड़ी में बादुड़बागान की ओर से आ रहे हैं। साथ में भवनाथ, हाजरा और मास्टर। विद्यासागर के घर जाएँगे।

ठाकुर की जन्मभूमि हुगली जिले में कामारपुकुर ग्राम है। यह ग्राम विद्यासागर की जन्मभूमि वीरसिंह नामक ग्राम के निकट है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण बाल्यकाल से विद्यासागर की दया की बातें सुनते आ रहे हैं। दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी में रहते-रहते ही उनके पाण्डित्य और दया की बात सुनते रहते हैं। 'मास्टर (श्री म) विद्यासागर के स्कूल में पढ़ाते हैं',

सुनकर उनसे कहा, ''मुझे विद्यासागर के पास क्या ले चलोगे ? मेरी उन्हें मिलने की बड़ी इच्छा है।''

मास्टर ने विद्यासागर से यह बात कही। विद्यासागर ने आनन्दित होकर उन्हें एक दिन शनिवार 4 बजे अपने साथ लाने के लिए कहा। मात्र एक बार पूछा, ''किस प्रकार का 'परमहंस' है ? वे क्या गेरुआ कपड़ा पहनते हैं ?''

मास्टर ने कह दिया था, ''जी नहीं, वे एक अद्‌भुत पुरुष हैं। लाल कन्नी की धोती पहनते हैं, कमीज-कोट पहनते हैं, वार्निश की हुई चट्टी जूता (स्लीपर) पहनते हैं। रासमणि की कालीबाड़ी में एक कमरे में रहते हैं, उस कक्ष में तख्तपोश बिछा हुआ है। उसके ऊपर बिछौना, मसहरी है, उस बिस्तर पर सोते हैं। बाहरी कोई भी चिह्न नहीं है। किन्तु ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। दिन-रात उनका ही चिन्तन करते हैं।

गाड़ी दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी से चली। पुल पार करके, श्यामबाजार से होकर धीरे-धीरे अमहर्स्ट स्ट्रीट में आ गई। भक्तों ने कहा, अब गाड़ी बादुड़बागान के निकट आ गई है। ठाकुर बालक की तरह आनन्द से बातें करने लगे। अमहर्स्ट स्ट्रीट में आकर हठात् उनका भावान्तर हो गया, जैसे ईश्वरावेश होने को है।

गाड़ी श्री राममोहन राय की बागानवाटी के निकट से आ रही है। मास्टर ने ठाकुर का भावान्तर नहीं देखा, सहसा कह दिया, यही है राममोहन राय का घर। ठाकुर विरक्त हो गए— बोले, ''अब ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं।'' ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं।

विद्यासागर के घर के सामने गाड़ी खड़ी हो गई।
घर दो तल का है, अंग्रेज़ी रुचि का है। जमीन के बीच में घर और जमीन के चारों ओर प्राचीर है। घर के पश्चिमी किनारे पर सदर दरवाज़ा और फाटक हैं। फाटक द्वार के दक्षिण में है। पश्चिम की दीवार और दुमंजिले गृह के मध्य बीच-बीच में पुष्प-वृक्ष हैं। पश्चिम की ओर के नीचे के कमरे से होकर सीढ़ियों द्वारा ऊपर चढ़ना होता है। ऊपर विद्यासागर रहते हैं। सीढ़ियों से चढ़ते ही उत्तर में एक कमरा है, उसके

पूर्व की ओर हॉल कमरा है। हॉल के दक्षिण-पूर्व के कमरे में विद्यासागर शयन करते हैं। ठीक दक्षिण में और एक कमरा है। ये कई कमरे बहुमूल्य पुस्तकों से परिपूर्ण हैं। दीवार के निकट पंक्तिबद्ध पुस्तक-रैकों में अति सुन्दर रूप से जिल्द बँधी हुई बहुत-सी पुस्तकें सजाई हुई हैं। हॉल कमरे की पूर्वी सीमा के अन्त में टेबल और चेयर हैं। विद्यासागर जब बैठकर कार्य करते हैं तब वे यहीं पर पश्चिमास्य होकर बैठते हैं। जो लोग मिलने-जुलने आते हैं, वे लोग भी टेबल के चारों ओर चेयरों (कुर्सियों) पर बैठते हैं। टेबल पर लिखने की सामग्री— कागज, कलम, दवात, ब्लॉटिंग, बहुत से चिट्ठी-पत्र, जिल्द बँधी हिसाब की कापी, फ़ाइल्स, दो-चार विद्यासागर की पाठ्य पुस्तकें रखी हुई दिखाई दे रही हैं। उधर काष्ठासन (तख्तपोश) के ठीक दक्षिण के कमरे में खाट बिछी हुई है— इसी स्थान पर ये सोते हैं।

टेबल के ऊपर जो पत्रादि दबाकर रखे हुए हैं, उनमें क्या लिखा हुआ है! शायद किसी विधवा ने लिखा है— मेरा नाबालिग शिशु अनाथ है, कोई देखने वाला नहीं है, आप को देखना होगा। किसी ने लिखा है, आप खरमाता चले गए थे, जभी हमें महीना ठीक तरह से नहीं मिला। बड़ा कष्ट हुआ। किसी गरीब ने लिखा है, आपके स्कूल में फ्री (बिना फीस) भर्ती हुआ हूँ किन्तु मेरी पुस्तकें खरीदने की क्षमता नहीं है। किसी ने लिखा है, मेरे परिवार को खाने के लिए नहीं मिल रहा। मुझे कोई नौकरी दिलवा दें। उनके स्कूल के किसी शिक्षक ने लिखा है, मेरी बहिन विधवा हो गई है। उसका समस्त भार मुझे लेना पड़ा है। इस वेतन में मेरा गुजारा नहीं चलता। शायद किसी ने विलायत से लिखा है, मैं यहाँ पर विपद्-ग्रस्त हो गया हूँ। आप दीनों के बन्धु हैं, कुछ रुपया भेजकर इस आसन्न विपद् से मेरी रक्षा करें। फिर और किसी ने लिखा है, अमुक दिन फैसले का दिन निर्धारित है। आप उस दिन आकर हमारा विवाद मिटा दें।

ठाकुर गाड़ी से उतरे। मास्टर रास्ता दिखलाते घर में ले जा रहे हैं। आँगन में पुष्प-वृक्ष हैं। उसके बीच से आते-आते ठाकुर ने बालक की तरह बटनों पर हाथ लगाकर मास्टर से पूछा, ''मेरे कुर्ते के बटन खुले हुए हैं,

इसमें कुछ दोष तो न होगा?" शरीर पर एक लट्ठे का जामा (कुरता) है, लाल किनारे की धोती है, उसका आँचल कन्धे पर पड़ा हुआ है। पाँव में वार्निश हुआ चटीजूता (स्लीपर) है। मास्टर ने कहा, "आप इसके लिए मत सोचें, आप का कोई दोष नहीं होगा, आपको बटन लगाने की जरूरत नहीं है।" बालक जैसे समझाने पर निश्चिन्त हो जाता है, ठाकुर भी वैसे ही निश्चिन्त हो गए।

द्वितीय परिच्छेद

(विद्यासागर)

सीढ़ियों से चढ़कर एकदम प्रथम कमरे में (चढ़ने के बाद ठीक उत्तर के कमरे में) ठाकुर भक्तों के संग प्रवेश कर रहे हैं। विद्यासागर कमरे में उत्तर की तरफ दक्षिणास्य हुए बैठे हैं। सम्मुख एक चौकोन लम्बा पॉलिश हुआ टेबल (मेज) है। मेज के पूर्व के किनारे पर एक पीठ के सहारे वाला बेंच है। टेबल के दक्षिण और पश्चिम की तरफ कई कुर्सियाँ हैं। विद्यासागर दो-एक बन्धुओं के संग बातें कर रहे हैं।

ठाकुर के प्रवेश करने पर विद्यसागर ने खड़े होकर दण्डायमान होकर अभ्यर्थना की। ठाकुर पश्चिमास्य, टेबल के पूर्व किनारे खड़े हैं। बायाँ हाथ टेबल के ऊपर है। पीछे बेंच है। विद्यासागर के पूर्वपरिचित की तरह उन्हें एक दृष्टि से देख रहे हैं और भाव में हँस रहे हैं।

विद्यासागर की वयस् प्राय: 62/63 होगी। श्रीरामकृष्ण से वे 16/17 वर्ष बड़े होंगे। शरीर पर सफेद किनारे की धोती, पाँव में स्लीपर और बदन पर फ्लालैन का आधी बाँहों का कुरता है। सिर उड़ियाकट की हजामत वाला। बातें करते समय दाँत उज्ज्वल दिखाई देते हैं। दाँत सब नकली हैं। खूब बड़ा सिर। उन्नत ललाट और कुछ नाटी आकृति। ब्राह्मण हैं,

तभी गले में उपवीत।

विद्यासागर में बहुत गुण हैं।

प्रथम— विद्यानुराग। एक दिन मास्टर (श्री म) के निकट यह कहते-कहते सचमुच रो पड़े थे, "मेरी तो बहुत इच्छा थी कि पढ़ता-लिखता रहूँ, किन्तु कहाँ हुआ वैसा! संसार में फँस कर कुछ भी समय नहीं मिला।"

द्वितीय— दया सर्व जीवों पर। विद्यासागर हैं दया के सागर। 'बछड़ों को माँ का दूध नहीं मिलता', देखकर स्वयं कई वर्षों तक दूध पीना बन्द कर दिया था। अन्त में शरीर अतिशय अस्वस्थ हो जाने से अनेक दिनों पश्चात् फिर दोबारा लेना आरम्भ किया था।
गाड़ी पर नहीं चढ़ते— घोड़ा तो अपना कष्ट कह नहीं सकता ना! एक दिन देखा, एक मजदूर हैजे (कॉलरा) से पीड़ित हुआ सड़क पर पड़ा है, पास ही टोकरा पड़ा है— देखकर अपनी गोद में उठाकर उसे घर ले आए और सेवा करने लगे।

तृतीय— स्वाधीनता-प्रियता। मालिकों के संग एकमत न होने से, संस्कृत कॉलिज के प्रधान/अध्यक्ष (प्रिन्सीपल) का कार्य छोड़ दिया।

चतुर्थ— लोकोपेक्षा (लोगों की उपेक्षा) नहीं करते थे। एक शिक्षक को प्यार करते थे, उनकी कन्या के विवाह के समय स्वयं कुआँरेपन का कपड़ा बगल में लेकर उपस्थित हो गए।

पञ्चम— मातृभक्ति और मन का बल। माँ ने कहा था, ईश्वर! तुम यदि इस विवाह (भाई के विवाह) में न आए तो फिर मन बहुत खराब होगा। तब कलकत्ते से पैदल गए। रास्ते में दामोदर नदी थी। नौका नहीं मिली, तैर कर पार हो गए। उन्हीं गीले कपड़ों से विवाह-रात्रि में ही वीरसिंह में माँ के पास जा उपस्थित हुए। बोले— माँ, मैं आ गया।

(श्रीरामकृष्ण के प्रति विद्यासागर की पूजा और सम्भाषण)

ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं और काफी देर से भाव में खड़े हुए हैं। भावसंवरण करने के लिए बीच-बीच में कह रहे हैं, 'पानी पीऊँगा'।

देखते ही देखते घर के लड़के और रिश्तेदार-मित्र आकर खड़े हो गए।

ठाकुर भावाविष्ट हुए बेंच के ऊपर बैठ रहे हैं। एक 17-18 वर्ष का लड़का उसी बेंच पर बैठा है— विद्यासागर के पास पढ़ाई के लिए सहायता की प्रार्थना करने आया है। ठाकुर भावाविष्ट हैं— ऋषि की अन्तर्दृष्टि ने लड़के के अन्तर के भाव समस्त जान लिए। थोड़ा सरक कर बैठे और भाव में कहते हैं, 'माँ, इस लड़के की बड़ी संसारासक्ति है। तुम्हारा अविद्या का संसार है। यह अविद्या का लड़का है।'

जो व्यक्ति ब्रह्म-विद्या के लिए व्याकुल नहीं है, केवल अर्थकरी विद्या उपार्जन करना तो उसके लिए मात्र धोखा है— क्या यही बात ठाकुर कह रहे हैं?

विद्यासागर ने व्यग्र होकर एक जन को जल लाने के लिए कहा, और मास्टर से पूछ रहे हैं, कुछ खाने के लिए लाने पर क्या ये खाएँगे? उन्होंने कहा, जी हाँ, लाइए ना! विद्यासागर शीघ्रता से भीतर जाकर बहुत-सी मिठाई लाए और बोले, ये वर्धमान से आई हैं। ठाकुर को कुछ खाने के लिए दी गईं। हाजरा, भवनाथ ने भी कुछ पाई। मास्टर को देने के लिए आने पर विद्यासागर बोले, 'यह तो घर का लड़का है, इसके लिए कोई रुकावट (बन्धन) नहीं है।' ठाकुर एक भक्त लड़के की बात विद्यासागर से कहते हैं। यह विशेष लड़का यहाँ पर ठाकुर के सामने बैठा है। ठाकुर बोले, 'यह लड़का अच्छा सत्-गुण सम्पन्न है, और अन्त:सार— जैसे फल्गु नदी। ऊपर रेत है, तनिक खोदने पर ही भीतर जल बहता हुआ दिखलाई देता है।'

मिष्टिमुख करने पर ठाकुर सहास्य विद्यासागर के संग बातचीत करते हैं। देखते ही देखते सारे घर में लोग भर गए— कोई बैठ गया, कोई खड़ा है।

श्रीरामकृष्ण— आज सागर में आकर मिल गया हूँ। इतने दिन नहर, झील,

हद नदी देखी थी। अब सागर देख रहा हूँ। *(सबका हास्य)*।

विद्यासागर *(सहास्य)*— तो फिर नमकीन जल थोड़ा-सा ले जाइए। *(हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण— ना, जी! नमकीन जल क्यों? तुम तो अविद्या के सागर नहीं हो। तुम तो विद्या के सागर! *(सबका हास्य)* तुम क्षीर-समुद्र। *(सबका हास्य)*।

विद्यासागर— आप जैसा चाहें, कह सकते हैं।

विद्यासागर चुप किए रहे। ठाकुर बातें करते हैं।

(विद्यासागर का सात्त्विक कर्म— ''तुम भी सिद्ध पुरुष हो'')

''तुम्हारा कर्म सात्त्विक कर्म है। सत्त्व का रज। सत्त्वगुण से दया होती है। दया के लिए जो कर्म किया जाता है, वह चाहे राजसिक कर्म तो है किन्तु यह रजोगुण है— सत्त्व का रजोगुण। इसमें दोष नहीं। शुकदेव आदि ने लोक-शिक्षा के लिए दया रखी हुई थी— ईश्वर के विषय में शिक्षा देने के लिए। तुम विद्या-दान, अन्न-दान करते हो। यह अच्छा है। निष्काम कर सकने पर ही इससे भगवान-लाभ होता है। जो कोई नाम के लिए या पुण्य के लिए करते हैं, उनका कर्म निष्काम नहीं है। और सिद्ध तो तुम हो ही।''

विद्यासागर— महाशय, किस प्रकार?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— आलु-परवल सिद्ध होने पर (पकने पर) नरम हो जाते हैं। फिर तुम तो बहुत नरम हो। तुम्हारे में इतनी दया है! *(हास्य)*

विद्यासागर *(सहास्य)*— पिसी हुई उड़द की दाल सिद्ध होने पर सख्त हो जाती है। *(सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण— तुम वह नहीं हो जी! खाली पण्डित अधपके होते हैं। न इधर के, न उधर के। गीध बहुत ऊँचे उड़ता है, किन्तु नजर उसकी होती है पशु-मरघट पर। जो केवल पढ़े हुए पण्डित हैं, वे सुनने में ही पण्डित हैं, किन्तु उनमें कामिनी-काञ्चन की आसक्ति है— गीध की तरह सड़ी लाश ही खोजते हैं। आसक्ति अविद्या का संसार है। दया, भक्ति, वैराग्य, यह विद्या

का ऐश्वर्य है।

विद्यासागर चुपचाप सुन रहे हैं। सब ही एकटक इस आनन्दमय पुरुष के दर्शन और उनका कथामृत-पान कर रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण— ज्ञानयोग वा वेदान्त-विचार)

विद्यासागर महापण्डित हैं। जब वे संस्कृत-कॉलिज में पढ़ते थे, तब अपनी श्रेणी में सर्वोत्कृष्ट छात्र थे। हर परीक्षा में प्रथम रहते और स्वर्ण-पदक (gold medal) अथवा छात्रवृत्ति प्राप्त किया करते। क्रमशः संस्कृत कॉलिज के प्रधान अध्यापक (प्रिन्सीपल) हो गए थे। उन्होंने संस्कृत व्याकरण और संस्कृत काव्य में विशेष पारदर्शिता लाभ की थी। अध्यवसाय गुण से, अपनी चेष्टा से अंग्रेज़ी सीख ली थी।

धर्म के विषय में किसी को भी शिक्षा नहीं देते थे। उन्होंने दर्शनादि ग्रन्थ पढ़े थे। मास्टर (श्री म) ने एक दिन पूछा था—
'आपको हिन्दू-दर्शन कैसा लगता है।' उन्होंने बताया था,
''मुझे तो बोध होता है, 'वे जो समझाने गए थे, समझा नहीं सके'।''

हिन्दुओं की भाँति श्राद्धादि धर्म-कर्म समस्त किया करते, गले में उपवीत (जनेऊ) धारण करते, बंगाली में जितने पत्र लिखते, उनमें 'श्री श्रीहरिशरणम्' भगवान की यह वन्दना पहले किया करते।

मास्टर (श्री म) ने और एक दिन उनके मुख से, 'वे ईश्वर के सम्बन्ध में कैसा सोचते हैं' सुना था। विद्यासागर ने बताया था,
''उनको तो जाना नहीं जाता। अब कर्त्तव्य क्या है? मेरे मत में कर्त्तव्य है कि हमें स्वयं ऐसा होना उचित है कि यदि सब ही इस प्रकार के हो जाएँ, तो पृथ्वी स्वर्ग बन जाएगी। प्रत्येक को चेष्टा करनी उचित है कि जिससे जगत का मंगल हो।''

विद्या और अविद्या की बात करते-करते ठाकुर ब्रह्मज्ञान की बातें करते

हैं। विद्यासागर महापण्डित। षड्दर्शन पढ़कर समझ लिया है कि शायद ईश्वर के विषय में कुछ भी जाना नहीं जाता।

श्रीरामकृष्ण— ब्रह्म विद्या और अविद्या के पार हैं। वे मायातीत हैं।

(Problem of Evil— ब्रह्म निर्लिप्त— जीव के सम्बन्ध में ही दुःखादि)

''इस जगत में विद्या-माया, अविद्या-माया दोनों ही हैं; ज्ञान-भक्ति है और फिर कामिनी-काञ्चन भी है; सत् भी है, असत् भी है। भला भी है, और साथ ही मन्दा भी है। किन्तु ब्रह्म है निर्लिप्त। भला-मन्दा जीव के पक्ष में है, सत्-असत् जीव के पक्ष में है। उनका इससे कुछ नहीं होता।

''जैसे प्रदीप के सामने कोई तो भागवत पढ़ता है, और कोई जाल (जालसाजी) करता है। प्रदीप निर्लिप्त!

''सूर्य शिष्ट के ऊपर प्रकाश डालता है, और फिर दुष्ट के ऊपर भी प्रकाश डालता है।

''यदि कहो दुःख, पाप, अशान्ति— ये समस्त फिर क्या हैं? उसका उत्तर यही है कि वे समस्त जीव के लिए हैं। ब्रह्म निर्लिप्त हैं। साँप के भीतर विष है, अन्य को काटने पर वह मर जाता है। साँप का किन्तु कुछ नहीं होता।''

(ब्रह्म— अनिर्वचनीय, अव्यपदेश्यम् The Unknown and the Unknowable)

''ब्रह्म जो क्या है, मुख से नहीं बोला जाता। सब चीजें झूठी हो गई हैं। वेद, पुराण, तन्त्र, षड्दर्शन— सब उच्छिष्ट हो गए हैं— मुख में आ गए हैं, मुख से उच्चारित हुए हैं, इसीलिए सब झूठे हो गए हैं। किन्तु एक ही वस्तु केवल उच्छिष्ट नहीं हुई, वही वस्तु है ब्रह्म। ब्रह्म जो क्या है, आज पर्यन्त कोई मुख से बोल नहीं सका है।''

विद्यासागर *(बन्धुओं के प्रति)*— वाह! यह तो बहुत सुन्दर बात है। आज एक विशेष नूतन बात सीखी है मैंने— 'ब्रह्म उच्छिष्ट हुए नहीं'।

श्रीरामकृष्ण— एक बाप के दो लड़के थे। ब्रह्म-विद्या सीखने के लिए पिता ने दोनों को ही आचार्य के हाथ में दे दिया। कई वर्ष के पश्चात् वे दोनों गुरु-गृह से लौट आए। आकर पिता को प्रणाम किया। पिता की इच्छा हुई कि देखूँ इनका ब्रह्मज्ञान कैसा हुआ है! बड़े बेटे से पूछा, 'बेटा तुमने तो समस्त पढ़ा है, 'ब्रह्म कैसा है'— तनिक बताओ न! ज़रा देखूँ तो।' बड़ा बेटा वेद से नाना श्लोक आवृत्ति कर-करके ब्रह्म के स्वरूप को समझाने लगा। पिता जी चुप रहे। जब छोटे बेटे को पूछा, वह सिर झुकाए चुप किए रहा। मुख से कोई भी बात नहीं कही। बाप ने प्रसन्न होकर कहा, 'वत्स, तुम ही थोड़ा-सा समझे हो। 'ब्रह्म जो क्या है'— वह मुख से नहीं बोला जाता'।

"मनुष्य सोचता है कि हम उनको जान पाए हैं। एक चींटी चीनी के पहाड़ पर गई थी। एक दाना खाकर पेट भर गया, और एक दाना मुख में लेकर अपने निवास-स्थान पर जाने लगी। जाते समय सोचती है— अबकी बार आकर सारे का सारा पहाड़ ही ले जाऊँगी। क्षुद्र जीवगण ऐसा ही सोचते हैं। जानते नहीं, ब्रह्म वाक्य-मन के अतीत हैं।

"कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो, उनको कौन जानेगा? शुकदेव आदि बहुत हुए तो काला चिंऊँटा, शायद चीनी के आठ-दस दाने मुख में रख लें।

(ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप— निर्विकल्प समाधि और ब्रह्मज्ञान)

"फिर वेद-पुराण में जो कहा गया है, वह किस प्रकार कहा गया है— जानते हो? एक व्यक्ति के सागर देखकर आने पर यदि कोई पूछे, कैसा देखा? वह व्यक्ति 'हा' करके (मुख बाये) बोला, 'ओह! कैसा देखा! कैसी हिल्लोल-कल्लोल!' ब्रह्म की बात भी वैसी ही है। वेद में है— वे आनन्दस्वरूप, सच्चिदानन्द हैं। शुकदेव आदि ने इसी ब्रह्मसागर-तट पर खड़े होकर दर्शन-स्पर्शन किया था। एक मत में है—ये लोग इस सागर में उतरे नहीं थे। क्योंकि इस सागर में उतर जाने पर फिर लौटना नहीं होता।

"समाधिस्थ होने पर ब्रह्मज्ञान होता है, ब्रह्मदर्शन होता है— उस अवस्था में विचार बिलकुल बन्द हो जाता है, मनुष्य चुप हो जाता है। ब्रह्म क्या वस्तु है— यह मुख से बोलने की शक्ति नहीं रहती।

"नमक की छवि (पुतलिका) समुद्र मापने गई थी। *(सब का हास्य)* कितना गहरा जल है, यह खबर देगी। खबर देना तो फिर हुआ ही नहीं। ज्यों ही उतरना त्यों ही गल जाना। फिर कौन खबर दे!"

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया,
"समाधिस्थ व्यक्ति, जिन्हें ब्रह्मज्ञान हुआ है, वे क्या फिर बातें नहीं करते?"

श्रीरामकृष्ण *(विद्यासागर के प्रति)*— शंकराचार्य ने लोकशिक्षा के लिए विद्या का 'मैं' रखा था। ब्रह्मदर्शन हो जाने पर मनुष्य चुप हो जाता है। जब तक दर्शन नहीं होता, तब तक ही विचार है। जब तक घी कच्चा रहता है तब तक ही है कलकलानि (शोर)! पक्के घी में कोई शब्द नहीं रहता। किन्तु जब पक्के घी में फिर और कच्ची लुचि (पूरी) पड़ती है, तब फिर एक बार छौं-छौं, कल-कल करता है। जब कच्ची पूरी को पका देता है, तब फिर चुप हो जाता है। वैसे ही समाधिस्थ पुरुष लोकशिक्षा देने के लिए फिर दोबारा उतर आता है, और फिर बातें करता है।

"जितनी देर मधुमक्खी फूल पर नहीं बैठती तब तक भन-भन करती है। फूल पर बैठकर मधुपान करना आरम्भ करने पर चुप हो जाती है। मधुपान करने पर, मतवाली होने पर फिर दोबारा कभी-कभी गुन-गुन करती है।

"तालाब में कलसी में जल भरने के समय भक्-भक् शब्द होता है। पूर्ण हो जाने पर फिर शब्द नहीं। *(सब का हास्य)*। फिर जब जल अन्य घड़े में यदि पलटा जाए तो फिर दोबारा शब्द होता है।" *(हास्य)*।

चतुर्थ परिच्छेद

ज्ञान और विज्ञान

(अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद और द्वैतवाद का समन्वय
Reconciliation of
Non-dualism, qualified non-dualism and dualism)

श्रीरामकृष्ण— ऋषियों को ब्रह्मज्ञान हुआ था। विषयबुद्धि का लेशमात्र रहने पर यह ब्रह्मज्ञान नहीं होता। ऋषिलोग कितना परिश्रम किया करते! सुबह से ही आश्रम से चले जाते। अकेले सारा दिन ध्यान-चिन्तन करते। रात को आश्रम में लौटकर कुछ फल-फूल खाते। देखना, सुनना, छूना— इन सब विषयों से मन को अलग रखते। तभी फिर ब्रह्म को 'बोधे-बोध' किया करते।

"कलि में अन्न में प्राण है, देहबुद्धि नहीं जाती। इस अवस्था में 'सोऽहम्' कहना ठीक नहीं। सब ही किया जाता है, और फिर 'मैं ही ब्रह्म हूँ' कहना ठीक नहीं। जो विषय-त्याग नहीं कर सकते, जिनकी 'मैं' किसी तरह भी जाती नहीं, उनका 'मैं दास', 'मैं भक्त'— यह अभिमान अच्छा है। भक्तिपथ पर रहने से भी उनको प्राप्त किया जाता है।

"ज्ञानी 'नेति-नेति' करके विषयबुद्धि-त्याग करता है। तब फिर ब्रह्म को जान सकता है। जैसे सीढ़ी के सोपान छोड़ते-छोड़ते छत पर पहुँचा जाता है।

"किन्तु जो विज्ञानी हैं, वे विशेष रूप से उनके साथ आलाप करते हैं। वे और भी कुछ दर्शन करते हैं। वे देखते हैं, छत जिस द्रव्य की बनी है, उसी ईंट, चूने, सुरखी से ही सीढ़ी भी तैयार की गई है। 'नेति-नेति' करके जिनको ब्रह्म कहकर (जानकर) बोध होता है, वे ही जीव-जगत हुए हैं। विज्ञानी देखता है— जो निर्गुण हैं, वे ही सगुण हैं।

"छत पर बहुत देर मनुष्य ठहर नहीं सकता, फिर उतर आता है। जिन्होंने समाधिस्थ होकर ब्रह्मदर्शन कर लिया है, वे भी उतर कर आकर देखते हैं कि जीव-जगत वे ही हुए हैं। सा, रे, गा, मा, पा, धा, नी। 'नी' पर

बहुत देर नहीं ठहरा जाता। 'मैं' नहीं जाता, तब देखता है— वे ही मैं हूँ, वे ही जीव-जगत समस्त हैं। इसका ही नाम विज्ञान है।

"ज्ञान का पथ भी पथ है। ज्ञानभक्ति का पथ भी पथ है और फिर भक्ति का पथ भी पथ है। ज्ञानयोग भी सत्य है, भक्तिपथ भी सत्य है। सब पथों द्वारा ही उनके पास जाया जाता है। वे जब तक 'मैं' रखे हैं, तब तक भक्तिपथ ही सहज, सीधा है।

"विज्ञानी देखता है कि ब्रह्म अटल, निष्क्रिय, सुमेरुवत् है। यह जगत उसके तीन गुणों— सत्व, रज और तम से बना है। पर वह निर्लिप्त है।

विज्ञानी देखता है जो ब्रह्म हैं, वे ही भगवान हैं। जो गुणातीत हैं, वे ही षडैश्वर्यपूर्ण भगवान हैं। यह जीव-जगत, मन-बुद्धि, भक्ति-वैराग्य, ज्ञान— ये समस्त उनका ऐश्वर्य है। *(सहास्य)* जिस बाबू का घर-द्वार नहीं है, शायद बिक गया है, वह बाबू कैसा बाबू? *(सबका हास्य)*। ईश्वर षडैश्वर्यपूर्ण हैं। उस व्यक्ति का यदि ऐश्वर्य न होता तो फिर कौन मानता? *(सबका हास्य)*।

(विभु रूप में एक, किन्तु शक्ति विशेष)

"देखो ना, यह जगत कैसा विस्मयजनक है! कितने प्रकार की वस्तुएँ हैं— चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र! कितने तरह के जीव! बड़े-छोटे, भले-मन्दे— किसी की अधिक शक्ति, किसी की कम शक्ति।"

विद्यासागर— उन्होंने क्या किसी को अधिक शक्ति, किसी को कम शक्ति दी है?

श्रीरामकृष्ण— वे विभु रूप में सर्व भूतों में हैं— चींटी तक में। किन्तु शक्ति विशेष है। वैसा न हो तो एक जन दस जनों को हरा देता है, और फिर कोई एक व्यक्ति के पास से भागता है और वैसा यदि न होता तो तुम्हें ही सब लोग क्यों मानते हैं? तुम्हारे क्या दो सींग निकले हैं? *(हास्य)*। औरों की अपेक्षा तुम में दया है, तुम्हारे पास विद्या है। तभी तुम्हें लोग मानते हैं, तुम्हें मिलने आते हैं। तुम यह सब मानते हो कि नहीं?"

विद्यासागर मृदु-मृदु हँसते हैं।

(केवल पाण्डित्य, पोथीगत विद्या— असार, भक्ति ही सार)

श्रीरामकृष्ण— केवल पाण्डित्य कुछ नहीं है। पुस्तक पढ़ना उनको पाने का, उनको जानने का उपाय है। एक साधु की पुस्तक में क्या है— एक व्यक्ति के पूछने पर साधु ने खोलकर दिखा दिया। पन्ने-पन्ने पर 'ॐ राम' लिखा हुआ है और कुछ भी नहीं।

"गीता का अर्थ क्या है ? दस बार बोलने में जो होता है। 'गीता'-'गीता', दस बार बोलो तो, 'त्यागी'-'त्यागी' हो जाता है। गीता की यही शिक्षा है— हे जीव, सब त्याग करके भगवान-लाभ करने की चेष्टा कर। साधु ही हो, या गृही ही हो, मन से सब आसक्ति त्याग करनी चाहिए।

"चैतन्यदेव जब दक्षिण में तीर्थ-भ्रमण कर रहे थे— देखा एक व्यक्ति गीता पढ़ रहा है और अन्य एक जन थोड़ी दूर बैठा सुन रहा है, और रो रहा है— रो-रो कर आँखें डूबी जा रही हैं। चैतन्यदेव ने पूछा, 'तुम यह समस्त समझ रहे हो ?' वह बोला, 'ठाकुर! मैं श्लोक इत्यादि कुछ भी समझ नहीं पा रहा।' उन्होंने पूछा 'तो फिर क्यों रो रहे हो ?' वह भक्त बोला, 'मैं अर्जुन का रथ और उसके सामने भगवान और अर्जुन बातें कर रहे हैं'— देख रहा हूँ। उसे देखकर मैं रो रहा हूँ'।"

पञ्चम परिच्छेद

(भक्ति-योग का रहस्य— the secret of dualism)

श्रीरामकृष्ण— विज्ञानी क्यों भक्ति लेकर रहता है ? इसका उत्तर यही है कि 'मैं' तो जाता नहीं। समाधि-अवस्था में चाहे चला तो जाता है किन्तु फिर दोबारा आ पड़ता है। फिर साधारण जीव का 'अहं' तो जाता नहीं। अश्वत्थ के पौधे को काट दो, फिर अगले दिन फुनगी निकल आती है। *(सब का हास्य)*।

"ज्ञान-प्राप्ति के बाद फिर कहाँ से 'मैं' आ ही जाता है! स्वप्न में बाघ देखते हो। तत्पश्चात् जागने पर भी तुम्हारी छाती धड़कती रहती है।

जीव का 'मैं' लेकर ही तो जितनी समस्त यन्त्रणा है। बैल 'हम्बा' (मैं)- 'हम्बा' (मैं) करता है तभी तो इतना कष्ट है। हल में जुतता है; धूप, वर्षा शरीर पर पड़ती है और फिर कसाई काटता है— चमड़े का जूता बनता है, ढोल बनता है, तब खूब पिटता है। *(हास्य)*।

''फिर भी निस्तार नहीं होता। अन्त में पेट की नाड़ी से ताँत तैयार होती है। उस ताँत से धुनिये का यन्त्र बनता है। तब फिर 'मैं' नहीं कहता, तब बोलता है 'तुँहूँ'-'तुँहूँ' (अर्थात् 'तुम'-'तुम')। जब 'तुम'-'तुम' कहता है, तब निस्तार। हे ईश्वर! मैं दास हूँ, तुम प्रभु हो; मैं पुत्र हूँ, तुम माँ हो।

''राम ने पूछा, हनुमान! तुम मुझे किस भाव से देखते हो? हनुमान बोले, राम! जब 'मैं' कहने से मुझे बोध रहता है, तब देखता हूँ, तुम पूर्ण हो, मैं अंश हूँ; तुम प्रभु, मैं दास। और राम! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब देखता हूँ, तुम ही मैं हूँ, मैं ही तुम हो।

''सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा है। 'मैं' तो जाने वाला नहीं है। तो फिर रहे साला 'दास मैं' बन कर।''

(विद्यासागर को शिक्षा— 'मैं' और 'मेरा' अज्ञान है)

'' 'मैं' और 'मेरा'— ये दोनों ही अज्ञान हैं। 'मेरा घर', 'मेरा रुपया', 'मेरी विद्या', 'मेरा यह समस्त ऐश्वर्य'— ये जो भाव है, वह अज्ञान से होता है। ''हे ईश्वर! तुम कर्त्ता हो और ये सब तुम्हारी वस्तुएँ हैं— घर-परिवार, लड़के-बच्चे, स्वजन, बन्धु-बान्धव— ये सब तुम्हारी चीजें हैं— यह भाव ज्ञान से होता है।

''मृत्यु को सर्वदा स्मरण रखना उचित। मरने पर कुछ भी नहीं रहेगा। यहाँ पर कुछ कर्म करने के लिए आना हुआ है। जैसे देहात में घर हो और कलकत्ता कर्म करने के लिए आना। बड़े व्यक्ति के बागान को यदि कोई देखने आता है, तो बागान का गुमाश्ता कहता है, 'यह बागान हमारा है', 'यह तालाब हमारा है।' किन्तु कोई दोष देखकर यदि मालिक गुमाश्ते को हटा दे

तो आम की लकड़ी के सन्दूक को भी ले जाने का अधिकार उसे नहीं रहता। मालिक दरबान के द्वारा सन्दूक भेज देता है। *(हास्य)*।

"भगवान दो बातों पर हँसते हैं। कविराज जब रोगी की माँ से कहता है, 'माँ, भय क्या? मैं तुम्हारे लड़के को अच्छा (चंगा) कर दूँगा'— तब एक बार हँसते हैं कि मैं तो मार रहा हूँ और यह कहता है कि मैं बचाऊँगा। कविराज सोचता है, मैं कर्त्ता हूँ। ईश्वर जो कर्त्ता हैं, यह बात भूल गया है। और फिर जब दो भाई रस्सी लेकर जगह का भाग करते हैं और कहते हैं, 'इस तरफ की मेरी है, उस तरफ की तेरी है', तब ईश्वर और एक बार हँसते हैं। यह सोचकर हँसते हैं, 'जगत-ब्रह्माण्ड मेरा है किन्तु ये कहते हैं— यह जगह मेरी और यह तेरी है'।"

(उपाय— विश्वास और भक्ति)

"उन्हें क्या विचार करके जाना जाता है? उनका दास होकर, उनके शरणागत होकर उन्हें पुकारो।"

(विद्यासागर के प्रति सहास्य)— "अच्छा, तुम्हारा क्या भाव है?"

विद्यासागर मृदु-मृदु हँसते हैं। कहते हैं,

"अच्छा, यह बात आपको अकेले में एक दिन बताऊँगा।" *(सबका हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उनको पाण्डित्य द्वारा विचार करके नहीं जाना जाता।

यह कहकर ठाकुर प्रेमोन्मत्त होकर गाना गाने लगे—

ईश्वर अगम्य और अपार

के जाने काली केमन।
षड़दर्शने ना पाय दर्शन॥
मूलाधारे सहस्रारे सदा योगी करे मनन।
काली पद्मबने हंस सने, हंसी रूपे करे रमण॥

आत्मारामेर आत्मा काली प्रमाण प्रणवेर मतन।
तिनि घटे-घटे विराज करेन इच्छामयीर इच्छा जेमन॥
मायेर उदरे ब्रह्माण्ड भाण्ड प्रकाण्ड ता जानो केमन।
महाकाल जेनेछेन कालीर मर्म, अन्य केबा जाने तेमन॥
प्रसाद भासे लोके हासे, सन्तरणे सिन्धु तरण।
आमार मन बुझेछे प्राण बुझे ना धरबे शशी होये बामन॥

[भावार्थ— कौन जानता है कि काली कैसी है! षड्दर्शन में भी उनका दर्शन नहीं मिलता। मूलाधार और सहस्रार में योगी सदा ध्यान करते हैं। काली रूप पद्मवन में वे हंस के संग हंसी के रूप में रमण करती हैं। आत्माराम की आत्मा काली हैं, प्रमाण प्रणव ('ॐ') के जैसा है। वे घट-घट में वास करती हैं, इच्छामयी की जैसी इच्छा होती है। माँ के पेट में ब्रह्माण्ड रूप भाण्ड है। उसकी प्रकाण्डता जानते हो, कैसी है? महाकाल शिव जैसा काली का मर्म जानते हैं, अन्य कौन वैसा जान पाता है? 'प्रसाद' तैर रहा है। लोग हँसते हैं कि समुद्र को तैरकर पार करना चाहता है। मेरे मन ने तो समझा है किन्तु प्राण नहीं समझता, वामन (नाटा) होकर शशी को पकड़ना चाहता है।]

"देखा, काली के उदर में ब्रह्माण्ड भाण्ड प्रकाण्ड है। उसे कैसे जानोगे! और कहते हैं 'षड़दर्शने ना पाय दरशन'— पाण्डित्य से उनको नहीं प्राप्त किया जाता।"

(विश्वास का जोर— ईश्वर में विश्वास और महापातक)

"विश्वास और भक्ति चाहिए। विश्वास का कितना जोर है, सुनो। एक व्यक्ति लंका से समुद्र पार करेगा। विभीषण ने कहा, 'यह वस्तु धोती के छोर में बाँध लो। तो फिर निर्विघ्न चले जाओगे। जल के ऊपर से जा सकोगे। किन्तु खोलकर मत देखना। खोलकर देखने लगते ही डूब जाओगे।' वह व्यक्ति समुद्र के ऊपर से अच्छे-से चला जा रहा था। विश्वास का ऐसा जोर है! कुछ रास्ता चलकर सोचने लगा, विभीषण ने ऐसी क्या वस्तु बाँध दी है कि जो जल के ऊपर से चला जा सकता है। यह कहकर धोती का छोर खोलकर देखने लगा कि केवल 'राम'-नाम लिखा हुआ एक पत्ता है। तब वह सोचने लगा, बस यही चीज! ज्यों ही सोचा, त्यों ही डूब गया।

"कहते हैं हनुमान का 'राम'-नाम में इतना विश्वास था कि विश्वास के गुण से सागर-लंघन कर लिया। किन्तु स्वयं राम को सागर पार करने के लिए पुल बाँधना पड़ा।

"यदि उन पर विश्वास रहे, तो फिर पाप ही करे, या फिर महापातक ही करे, किसी में भी भय नहीं।"

यह कहकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्त का भाव आरोप करके भाव में मतवाले होकर विश्वास का माहात्म्य गाने लगे—

आमि 'दुर्गा-दुर्गा' बोले मा यदि मरि।
आखेरे ए दीने, ना तारो केमने, जाना जाबे गो शंकरी।
नाशि गो ब्राह्मण, हत्या करि भ्रूण, सुरापान आदि विनाशि नारी।
ए सब पातक, ना भावि तिलेक, ब्रह्मपद निते पारि।*

षष्ठ परिच्छेद

(ईश्वर को प्यार करना जीवन का उद्देश्य the end of life)

श्रीरामकृष्ण— विश्वास और भक्ति। उन्हें भक्ति से सहज में पाया जाता है। वे भाव का विषय हैं।

यह बात कहते-कहते ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने फिर और गाना पकड़ लिया—

मन कि तत्व करो ताँरे जेनो उन्मत्त आँधार घरे
शे जे भावेर विषय भाव व्यतीत, अभावे के धरते पारे॥

---

* दुर्गा-दुर्गा अगर जपूँ मैं, जब मेरे निकलेंगे प्राण।
देखूँ कैसे नहीं तारती हो तुम करुणा की खान॥
गो-ब्राह्मण की हत्या करके, करके भी मदिरा का पान।
ज़रा नहीं परवाह पापों की, लूँगा निश्चय पद निर्वाण॥
— 'निराला'

अग्रे शशि वशीभूत करो तब शक्ति सारे।
ओरे कोठार भीतर चोर कुठरी, भोर होले से लुकाबे रे॥

षड़दर्शने ना पाय दर्शन, आगम निगम तन्त्र सारे।
से जे भक्ति रसेर रसिक, सदानन्दे विराज करे पूरे॥

से भाव लागि परम योगि, योग करे युगयुगान्तरे।
होले भावेर उदय लय से जेमन, लोहा के चुम्बके धरे॥

प्रसाद बोले मातृ भावे आमि तत्व करि जाँरे।
सेटा चातरे कि भांगवो हाँड़ि, बोझो ना रे मन ठारे ठोरे॥

[भावार्थ— हे मन, तुम उनके लिए जो विचार कर रहे हो, वह तो मानो अन्धेरे कमरे में उन्मत्त की भाँति फिरना है। वे तो भाव के विषय हैं, उन्हें भाव बिना अभाव में क्या ग्रहण कर सकते हो? अपनी सामर्थ्य के अनुसार पहले शशी को वशीभूत करो। वह तो कोठे के भीतर चोर कोठरी में है, भोर होते ही छिप जाएगा। उसका दर्शन तो षड्दर्शन, वेद, तन्त्र कोई भी नहीं पाता। वह तो भक्ति-रस का रसिक सदानन्द अन्तर में निवास करता है। उसके भाव के लिए युग-युगान्तर से योगीजन योग कर रहे हैं। भाव का उदय हो जाने पर वह ऐसे ही लय कर लेता है जैसे चुम्बक लोहे को पकड़ लेता है। प्रसाद कहते हैं, मैं जिसका मातृभाव में ध्यान करता हूँ, उस भेद को हे मन! क्या मैं सबके सामने चबूतरे पर खोल दूँ? हे मन, इशारा समझो।]

(ठाकुर समाधिमन्दिर में)

गाना गाते-गाते ठाकुर समाधिस्थ हो गए। हाथ अञ्जलिबद्ध! देह उन्नत और स्थिर! नेत्रद्वय स्पन्दहीन! उसी बेंच पर पश्चिमास्य होकर पाँव फैला कर बैठे हैं। सब उदग्रीव होकर वह अद्भुत अवस्था देख रहे हैं। पण्डित विद्यासागर भी निस्तब्ध होकर एक दृष्टि से देखते हैं।

ठाकुर प्रकृतिस्थ हो गए। दीर्घ नि:श्वास छोड़कर और फिर सहास्य बातें करते हैं—

"भावभक्ति, इसका अर्थ है— उनको प्यार करना। जो ब्रह्म हैं, उनको ही 'माँ' कहकर पुकारते हैं।

"प्रसाद कहते हैं, मातृ-भाव में मैं जिस तत्त्व को यथार्थ जानता हूँ, उस तत्त्व की हण्डी क्या मैं चबूतरे पर फोड़ूँगा? हे मन, इशारा समझो।

''रामप्रसाद मन को कहते हैं, इशारा समझो। वे यह समझने को कह रहे हैं कि वेद में जिन्हें ब्रह्म कहा है— उनको ही मैं माँ कहकर पुकारता हूँ। जो निर्गुण हैं, वे ही सगुण हैं; जो ब्रह्म हैं, वे ही शक्ति हैं। जब 'निष्क्रिय रूप में' बोध होते हैं, तब उनको 'ब्रह्म' कहता हूँ। जब सोचता हूँ 'सृष्टि-स्थिति-प्रलय करते हैं', उनको 'आद्याशक्ति' कहता हूँ, 'काली' कहता हूँ।

''ब्रह्म और शक्ति अभेद। जैसे अग्नि और दाहिका शक्ति। अग्नि कहते ही दाहिका शक्ति समझी जाती है, दाहिका शक्ति कहते ही अग्नि समझी जाती है। एक को मान लेने से ही और एक को भी मानना हो जाता है।

''उनको ही 'माँ' कहकर पुकारा जाता है। 'माँ' बहुत प्यार की वस्तु है कि ना! ईश्वर को प्यार कर सकने से ही उनको प्राप्त किया जाता है। भाव, भक्ति, प्यार और विश्वास! और एक गाना सुनो—

(उपाय— पहले विश्वास, तत्पश्चात् भक्ति)

''भाविले भावेर उदय होय।
(ओ से) जेमन भाव, तेमनि लाभ मूल शे प्रत्यय॥
कालिपद सुधाह्रदे, चित्त यदि रय (यदि चित्त डूबे रय)।
तबे पूजा-होम-याग-यज्ञ, किछुइ किछु नय॥*

''चित्त तद्गत (उनमें जाना) हो जाना, उनको खूब प्यार करना। वे हैं 'सुधाह्रद' अर्थात् अमृत का सरोवर। उसमें डूबने से मनुष्य मरता नहीं। अमर हो जाता है। कोई-कोई सोचता है कि ज्यादा ईश्वर-ईश्वर करने से माथा बिगड़ जाता है पर ऐसा नहीं है। यह तो सुधाह्रद है, अमृत का सागर है। वेदों में उसे अमृत कहा है। इसमें डूब जाने से मरता नहीं, अमर हो जाता है।''

* चिन्तन से 'भाव' का उदय होता है। अरे जैसा भाव, वैसा लाभ, मूल है वही प्रत्यय (विश्वास)। काली-चरण रूपी सुधा-सरोवर में चित्त यदि रमे (यदि चित्त डूबा रहे) तो पूजा-होम-याग-यज्ञ कुछ भी नहीं है।

(निष्काम कर्म वा कर्मयोग और 'जगत का उपकार'
Shri Ramakrishna and the European ideal of work)

''पूजा, होम, याग, यज्ञ कुछ भी कुछ नहीं है। यदि उनके ऊपर प्यार आ जाता है तो फिर और सब कर्मों का अधिक प्रयोजन नहीं रहता। जब तक हवा नहीं चलती, तब तक ही पंखे का प्रयोजन है। यदि दक्षिणी पवन स्वयं ही आती है तो पंखा रख दिया जाता है। फिर पंखे का क्या प्रयोजन ?

''तुम जो ये सब कार्य कर रहे हो, ये सब सत्कर्म हैं। यदि 'मैं कर्ता' यह अहंकार त्याग करके निष्काम भाव से कर सको, तब तो फिर बहुत ही अच्छा है। ऐसा निष्काम कर्म करते-करते ईश्वर में भक्ति-प्यार आता है। इसी प्रकार निष्काम कर्म करते-करते ईश्वर-लाभ होता है।

''किन्तु जितना उनके ऊपर भक्ति और प्यार आएगा, उतना ही तुम्हारा कर्म कम हो जाएगा। गृहस्थ की बहू के पेट में जब बच्चा होता है, सास उसका कर्म कम कर देती है। जितने ही महीने बढ़ते हैं, सास कर्म कम करती जाती है। दस महीने होने पर बिल्कुल कर्म करने नहीं देती, बच्चे को कहीं पीछे हानि न हो, प्रसव में कोई व्यवधान न हो। *(हास्य)*। तुम जो ये सब कर्म कर रहे हो, इससे तुम्हारा अपना उपकार है। निष्काम भाव में कर्म कर सकने पर चित्त-शुद्धि होगी, ईश्वर के ऊपर तुम्हारा प्यार आएगा। प्यार आने पर ही उनको प्राप्त कर सकोगे। जगत का उपकार मनुष्य नहीं करता, वे ही करते हैं; जिन्होंने चन्द्र-सूर्य बनाए हैं, जिन्होंने माँ-बाप का स्नेह, जिन्होंने बड़ों के भीतर दया, जिन्होंने साधु-भक्त के भीतर भक्ति दी है। जो व्यक्ति कामना-शून्य होकर कर्म करेगा, वह निज का ही मंगल करेगा।''

निष्काम कर्म का उद्देश्य ईश्वर-दर्शन

''अन्तर में सोना है, अभी भी खबर नहीं लगी है। थोड़ी-सी मिट्टी से ढका हुआ है। यदि एक बार सन्धान मिल जाए तो अन्य काज कम हो जाएँगे। गृहस्थ की बहू के बच्चा हो जाने पर वह उसे ही लिए रहती है, उसी को लेकर लगी रहती है, गृहस्थी का कार्य सास करने नहीं देती। *(सबका हास्य)*।

"और आगे बढ़ो। लकड़हारा लकड़ी काटने गया था— ब्रह्मचारी ने कहा, 'आगे आओ।' उसने आगे जाकर चन्दन के वृक्ष देखे। फिर और कुछ दिन बाद सोचा, 'ब्रह्मचारी ने आगे जाने को कहा था, चन्दन के वृक्षों तक ही तो जाने को नहीं कहा था'। आगे जाकर देखता है चाँदी की खान। और फिर कुछ दिन पश्चात् और आगे जाकर देखता है, सोने की खान। तत्पश्चात् केवल हीरा, माणिक। यह सब लेकर बहुत धनवान हो गया।

"निष्काम कर्म कर सकने पर ईश्वर से प्यार होता है, क्रमशः उनकी कृपा से उनकी प्राप्ति हो जाती है। ईश्वर को देखा जाता है, उनके साथ बातें की जाती हैं, जैसे मैं तुम्हारे संग बातें कर रहा हूँ।" *(सब निःशब्द)*।

सप्तम परिच्छेद

(ठाकुर अहेतुक कृपा-सिन्धु)

सब अवाक् और निस्तब्ध होकर ये सब बातें सुनते हैं। मानो साक्षात् वाग्वादिनी (सरस्वती) श्रीरामकृष्ण की जिह्वा पर अवतीर्ण होकर विद्यासागर को उपलक्ष्य करके जीव के मंगल के लिए बातें कह रही हैं। रात्रि हो गई, नौ बजे हैं। ठाकुर अब विदा लेंगे।

श्रीरामकृष्ण *(विद्यासागर के प्रति सहास्य)*— यह जो मैंने कहा है, कहना ही व्यर्थ है, आप सब जानते हैं— तथापि खबर नहीं है। *(सबका हास्य)*। वरुण के भण्डार में कितने, कैसे रत्न हैं— वरुण राजा को खबर नहीं।

विद्यासागर *(सहास्य)*— वह आप कह सकते हैं!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ जी, अनेक बाबू नौकरों-चाकरों के नाम नहीं जानते *(सबका हास्य)*— घर में कहाँ पर क्या दामी वस्तु है— यह भी नहीं जानते।

कथावार्ता सुनकर सब आनन्दित हैं। सब थोड़ी देर चुप रहे। ठाकुर फिर विद्यासागर को सम्बोधन करके बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— एक बार बागान देखने आइए, रासमणि का बागान। बड़ी सुन्दर जगह है।

विद्यासागर— आऊँगा! जरूर। आप आए हैं, फिर मैं नहीं आऊँगा!

श्रीरामकृष्ण— मेरे पास! छी! छी!!

विद्यासागर— वह क्या! ऐसी बात क्यों कहते हैं? मुझे समझा दें।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हम! जैलेडिंगि *(सब का हास्य)*। नहर, टोबा या बड़ी नदी में जा सकते हैं। किन्तु आप जहाज हैं। क्या पता, जाने पर वहाँ रेत में फँस जाए। *(सब का हास्य)*।

विद्यासागर सहास्यवदन, चुप हैं। ठाकुर हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उसमें इस समय जहाज भी जा सकते हैं।

विद्यासागर *(सहास्य)*— हाँ, यह तो वर्षा-काल ही है। *(सब का हास्य)*।

मास्टर *(स्वगत)*— नवानुराग की वर्षा, नवानुराग के समय मान-अपमान का बोध नहीं रहता!

ठाकुर उठे भक्तों के संग। विद्यासागर आत्मीयजनों के संग खड़े हो गए। ठाकुर को गाड़ी में बिठा देंगे।

श्रीरामकृष्ण क्यों अब भी खड़े हुए हैं! मूलमन्त्र हाथ पर जप रहे हैं, जपते-जपते भावाविष्ट हो रहे हैं! अहेतुक कृपा-सिन्धु! शायद जाते समय महात्मा विद्यासागर के आध्यात्मिक मंगल के लिए माँ के निकट प्रार्थना कर रहे हैं।

ठाकुर भक्तों के संग सीढ़ी उतर रहे हैं। एक भक्त का हाथ पकड़ा हुआ है। विद्यासागर स्वजनों के संग आगे-आगे जा रहे हैं— हाथ में बत्ती है, पथ दिखाते हुए आगे-आगे जा रहे हैं। श्रावण कृष्णा षष्ठी, अभी तक चाँद नहीं निकला। तमसावृत उद्यान-भूमि के बीच में से सब लोग बत्ती के क्षीण प्रकाश को देखते हुए फाटक की ओर आ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग फाटक के निकट ज्यों ही पहुँचे, त्योंही सभी एक सुन्दर दृश्य देखकर खड़े के खड़े रह गए। सम्मुख देखा— बंगाली वस्त्रधारी एक गौरवर्ण दाढ़ीवाला पुरुष! आयु लगभग 36-37,

सिर पर सिखों जैसी सफेद पगड़ी, बदन पर धोती–कुरता, मौजा। चादर नहीं। वे पुरुष श्रीरामकृष्ण के दर्शन करते ही पगड़ी समेत धरती पर सिर रखकर भूमिष्ठ हो गए हैं। उनके खड़े होने पर ठाकुर बोले,

''बलराम तुम? इतनी रात को?''

बलराम *(सहास्य)*— मैं बहुत देर से आकर यहाँ पर खड़ा हुआ हूँ।

श्रीरामकृष्ण— भीतर क्यों नहीं गए?

बलराम— जी, सब लोग आपकी कथावार्ता सुन रहे थे, बीच में जाकर विरक्त (शान्ति–भंग) करना। *(यह कहकर बलराम हँसने लगे।)*

ठाकुर भक्तों के साथ गाड़ी में बैठते हैं।

विद्यासागर *(मास्टर के प्रति मृदु स्वर में)*— भाड़ा क्या दूँ?

मास्टर— जी नहीं, वह हो गया है।

विद्यासागर और अन्यान्य सबने ठाकुर को प्रणाम किया।

गाड़ी उत्तराभिमुख हाँक दी। गाड़ी दक्षिणेश्वर–कालीबाड़ी में जाएगी। अब भी सब खड़े हुए गाड़ी की ओर देखते हैं। लगता है, सोच रहे हैं, यह महापुरुष कौन हैं जो ईश्वर को इतना प्यार करते हैं, और जो जीवों के घर–घर में फिरते हैं, और कहते हैं ईश्वर को प्यार करना ही जीवन का उद्देश्य है!

द्वितीय खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(कामिनी-काञ्चन ही योग में व्याघात— साधना और योग-तत्त्व)

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग में रह रहे हैं। बृहस्पतिवार, श्रावण शुक्ला दशमी तिथि, 24 अगस्त, 1882 ईसवी।

आजकल ठाकुर के पास हाजरा महाशय, रामलाल, राखाल आदि रहते हैं। श्रीयुक्त रामलाल ठाकुर के भतीजे हैं— काली-मन्दिर में पूजा करते हैं। मास्टर (श्री म) ने आकर देखा कि उत्तर-पूर्व के लम्बे बरामदे में ठाकुर हाजरा के निकट खड़े हुए बातें कर रहे हैं। उन्होंने (श्री म ने) आकर भूमिष्ठ होकर ठाकुर की श्रीचरण-वन्दना की।

ठाकुर सहास्यवदन! मास्टर से कहते हैं— "और दो-एक बार ईश्वर विद्यासागर को मिलने का प्रयोजन है। (दुर्गा-पूजा के समय तैयार किया हुआ) चलचित्र एक बार रफ (कच्चा) अंकित करके फिर बैठकर रंग लगाया जाता है। मूर्ति पहले एक बार मिट्टी की बनती है, फिर तब खड़िया मिट्टी, तत्पश्चात् रंग— एक के पश्चात् एक करना होता है। ईश्वर विद्यासागर का सब तैयार है, केवल ढका हुआ है। कितने सारे सत्काम किए हैं— किन्तु अन्तर में क्या है, जानता नहीं। अन्तर में सोना ढका हुआ है। अन्तर में ईश्वर हैं, जान सकने पर सब काम छोड़कर, व्याकुल होकर उन्हें पुकारने की इच्छा होती है।

ठाकुर खड़े होकर मास्टर के साथ बातें करते हैं, और फिर कभी-कभी बरामदे में टहलते हैं।

(साधना— कामिनी-काञ्चन का झड़-तूफान काटने के लिए)

श्रीरामकृष्ण— अन्तर में क्या है, जानने के लिए थोड़ा साधन चाहिए।

मास्टर— साधन क्या सर्वदा करना चाहिए?

श्रीरामकृष्ण— नहीं, पहले तो थोड़ा उठ पड़ लगना चाहिए। फिर और अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। जितनी देर तरंग, आँधी-तूफान और टेढ़े-मेढ़े स्थान के पास से जाना होता है, उतनी देर ही माँझी को खड़े होकर पतवार पकड़नी होती है— उतना-सा पार हो जाने पर, फिर और नहीं। यदि मोड़ पार हो जाए और अनुकूल हवा बहे, तब माँझी आराम से बैठ जाता है, पतवार पर हाथ ही रखे रहता है। फिर पाल टाँगने का बन्दोबस्त करके तम्बाकू तैयार करने बैठ जाता है। कामिनी-काञ्चन का झड़-तूफान कटने पर ही तब शान्ति।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और योग-तत्त्व— योग-भ्रष्ट, योगावस्था— 'निवात-निष्कम्पमिव प्रदीपम्'— योग का व्याघात)

''किसी-किसी में योगी का लक्षण दिखाई देता है। किन्तु उन्हें भी सावधान होना उचित है। कामिनी-काञ्चन ही योग का व्याघात है। योग-भ्रष्ट होकर संसार में आकर गिर जाता है— शायद भोग की वासना कुछ थी। वह पूरी हो जाने पर फिर दोबारा ईश्वर की ओर आएगा, फिर वही योग की अवस्था। सठका कल जानते हो?

मास्टर— जी नहीं, देखी नहीं।

श्रीरामकृष्ण— उस देश में होती है। बाँस को आगे को मोड़कर रखते हैं। उस में वंशी लगाकर रस्सी बन्धी हुई रहती है। वंशी में चारा (खाद्यपदार्थ) लगा रहता है। मछली ज्यों ही चारा खाती है, त्यों ही तड़ाक करके बाँस उठ जाता है। जैसे ऊपर ऊँचे की ओर बाँस का मुख था, उसी प्रकार ही हो जाता है।

''निक्ति (छोटी तराजू) में एक ओर भार पड़ने से नीचे का काँटा ऊपर के काँटे के संग एक हो जाता है। नीचे का काँटा मन है— ऊपर का काँटा ईश्वर है। नीचे के काँटे का ऊपर के काँटे के साथ एक होने का नाम है योग।

''मन स्थिर न हो तो योग नहीं होता। संसार-हवा मन रूप दीप को सर्वदा चञ्चल करती रहती है। वह दीप यदि बिल्कुल भी न हिले तो फिर ठीक योग की अवस्था हो जाती है।

''कामिनी-काञ्चन ही योग का व्याघात है। वस्तु-विचार करोगे। स्त्री के शरीर में क्या है! रक्त, मांस, चर्बी, आँतें, कृमि, मूत्र, विष्ठा— यही सब। ऐसे शरीर के ऊपर प्यार क्यों!

''मैं राजसिक भाव का आरोप किया करता था— त्याग करने के लिए। साध (कामना) हुई, सुच्ची जरी की पोशाक पहनूँ, उँगली में अँगूठी डालूँ, नल द्वारा हुक्के में तम्बाकू पीऊँ। सुच्ची जरी की पोशाक पहनी। इन्होंने (मथुरबाबू ने) ला दी। कुछ क्षण बाद मन से कहा— मन, इसका नाम है सुच्ची जरी की पोशाक! तब उसे उतार कर फेंक दिया। फिर अधिक अच्छी नहीं लगी। कहा, मन! इसी का नाम है शाल, इसी का नाम है अँगूठी, इसी का नाम है नल द्वारा हुक्के में तम्बाकू पीना। उन सब को जब फेंक दिया तो फिर मन नहीं चला।''

सन्ध्या आगत प्राय:। घर के दक्षिण-पूर्व के बरामदे में, कमरे के द्वार के निकट ठाकुर मणि के साथ अकेले में बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— योगी का मन सर्वदा ही ईश्वर में रहता है, सर्वदा ही आत्मस्थ। चक्षु आश्चर्यचकित, देखते ही पता लग जाता है। जैसे पक्षी अण्डे सेता है— सारे का सारा मन उसी अण्डे की ओर। ऊपर नाम मात्र को देख रहा है! अच्छा, मुझे वह छवि दिखला सकते हो?

मणि— जी, अच्छा। मैं चेष्टा करूँगा यदि कहीं पाऊँ।

द्वितीय परिच्छेद

(गुरु-शिष्य संवाद— गुह्य कथा)

सन्ध्या हो गई। फरास (फर्राश, लैम्प आदि जलाने वाले सेवक) ने श्रीकाली-मन्दिर और श्रीराधाकान्त-मन्दिर और अन्य कमरों, स्थानों पर बत्तियाँ जला दीं। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हुए जगन्माता का चिन्तन और तत्पश्चात् ईश्वर का नाम कर रहे हैं। घर में धूप-धूना दे दिया गया है। एक ओर एक लैम्प-स्टैण्ड पर प्रदीप रखा हुआ है। कुछ क्षण पश्चात् शंख-घण्टा बज उठा। श्रीकाली- मन्दिर में आरती हो रही है। शुक्ला दशमी तिथि, चारों ओर चाँद का आलोक है।

आरती के कुछ क्षणों पश्चात् श्रीरामकृष्ण छोटी खाट पर बैठे हुए मणि के साथ एकाकी नाना विषयों पर बातें करते हैं। मणि फर्श पर बैठे हैं।

(कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन)

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— निष्काम कर्म करोगे। ईश्वर विद्यासागर जो कर्म कर रहा है, वह अच्छा काज है; निष्काम कर्म करने की चेष्टा कर रहा है।

मणि— जी हाँ, अच्छा! जहाँ पर कर्म है, वहाँ पर क्या ईश्वर मिलते हैं? राम और काम क्या एक संग में होते हैं? हिन्दी में उस दिन एक बात पढ़ी थी : ''जहाँ राम तहाँ काम नहीं, जहाँ काम तहाँ नाहीं राम।''

श्रीरामकृष्ण— कर्म सब ही करते हैं। उनका नाम-गुणगान करना— यह भी कर्म है। सोऽहंवादियों का 'मैं ही वह हूँ'— यह चिन्तन भी कर्म है। नि:श्वास छोड़ना— यह भी कर्म। कर्म-त्याग तो किया ही नहीं जाता। तभी, कर्म तो करेगा, किन्तु फल ईश्वर में समर्पण करेगा।

मणि— जी, जिससे धन अधिक हो— यह चेष्टा क्या कर सकता है?

श्रीरामकृष्ण— विद्या के संसार के लिए किया जा सकता है। अधिक कमाने की चेष्टा करोगे किन्तु सदुपाय से। उपार्जन करना तो उद्देश्य नहीं है। ईश्वर

की सेवा करना ही उद्देश्य है। रुपये से यदि ईश्वर की सेवा होती है तो उस सेवा में दोष नहीं है।

मणि— अच्छा जी, परिवार वालों के प्रति कर्त्तव्य कब तक है?

श्रीरामकृष्ण— उनको खाने-पहनने का कष्ट न रहे। किन्तु सन्तान के स्वयं समर्थ हो जाने पर फिर उनका भार लेने का प्रयोजन नहीं। पक्षी का बच्चा जब स्वयं खोज कर खाना सीख लेता है, फिर माँ के पास खाने के लिए आने पर माँ चोंच मारती है।

मणि— कर्म कब तक करना होगा?

श्रीरामकृष्ण— फल प्राप्त हो जाने पर फिर फूल नहीं रहता। ईश्वर प्राप्त हो जाने पर फिर कर्म करना नहीं पड़ता, मन भी नहीं लगता।

"मतवाला अधिक मद पी लेने पर होश नहीं रख सकता। दो आना पी लेने पर काज-कर्म चल सकता है। ईश्वर की ओर जितना ही बढ़ेंगे, उतना ही वे कर्म कम कर देंगे। भय नहीं है। गृहस्थ की बहू के गर्भवती होने पर सास क्रमशः कर्म कम कर देती है। दस महीने हो जाने पर बिल्कुल भी कर्म नहीं करने देती। बच्चा हो जाने पर उसी को लिए व्यस्त रहती है।

"जो कुछ कर्म हैं, उनके समाप्त हो जाने पर ही निश्चिन्ती है। गृहिणी घर का पकाना-बाँटना तथा और काज-कर्म समाप्त करके जब नहाने जाती है, तब फिर लौटती नहीं; तब पुकारने पर भी नहीं आएगी।"

(ईश्वर-लाभ और ईश्वर-दर्शन क्या है? उपाय क्या?)

मणि— जी, 'ईश्वर-लाभ'— इसके क्या अर्थ हैं? और 'ईश्वर-दर्शन' किसे कहते हैं? और कैसे होता है?

श्रीरामकृष्ण— वैष्णव कहते हैं ईश्वर के मार्ग पर जो चल रहे हैं, और जिन्होंने उनको प्राप्त कर लिया है, उनकी श्रेणियाँ हैं— प्रवर्त्तक, साधक, सिद्ध और सिद्धों का सिद्ध।

जो अभी-अभी पथ पर चलने लगा है, उसे **प्रवर्त्तक** कहते हैं।

जो साधन-भजन करता है— पूजा, जप, ध्यान, नाम-कीर्त्तन करता है, वह व्यक्ति **साधक** है।

जिस व्यक्ति ने 'ईश्वर हैं', यह बोधे-बोध कर लिया है, उसको **सिद्ध** कहते हैं। जैसे वेदान्त की उपमा है— अन्धेरे कमरे में बाबू लेटे हुए हैं। बाबू को एक व्यक्ति टटोलते-टटोलते खोजता है। एक काउच पर हाथ लगाकर कहता है, 'यह नहीं'; खिड़की पर हाथ लगने पर कहता है, 'यह नहीं'; दरवाजे पर हाथ लगाकर कहता है, 'यह नहीं'। नेति, नेति, नेति! अन्त में बाबू की देह पर हाथ पड़ जाता है। तब कहता है, 'यहाँ पर, यही बाबू है'— अर्थात् 'अस्ति' का बोध हो गया। बाबू तो प्राप्त हो गया किन्तु विशेष रूप में नहीं पता लगा।

"एक और श्रेणी है, जिसे कहते हैं **सिद्धों का सिद्ध**। बाबू के साथ यदि विशेष आलाप हो जाए तो फिर और एक प्रकार की अवस्था होती है, यदि ईश्वर के संग प्रेम-भक्ति द्वारा विशेष आलाप होता है।

जो सिद्ध है उसने ईश्वर को चाहे पा तो लिया है, किन्तु जो सिद्धों का सिद्ध है, उसने ईश्वर के संग में विशेष रूप से आलाप किया है।

"किन्तु उन्हें लाभ करने के लिए एक विशेष भाव का आश्रय करना चाहिए। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य अथवा मधुर।

"शान्त— ऋषियों का था। उनकी अन्य कुछ भोग करने की वासना नहीं थी। जैसी पत्नी की पति के ऊपर निष्ठा होती है, वह जानती है मेरा पति कन्दर्प है।

"दास्य— जैसे हनुमान का। राम का काम करने के लिए सिंह-तुल्य। स्त्री का दास्य भाव होता है— पति की प्राणपन से सेवा करना। माँ का कुछ-कुछ होता है— यशोदा का था।

"सख्य— मित्र का भाव— आओ, आओ, निकट आकर बैठो। श्रीदाम आदि कृष्ण को कभी झूठे फल खिलाते, कभी कन्धे पर चढ़ते।

"वात्सल्य— जैसे यशोदा का। पत्नी का भी कुछ होता है— पति को

प्राण चीर कर खिलाती है। लड़का पेट भर कर खा लेता है, तभी माँ सन्तुष्ट होती है। यशोदा, 'कृष्ण खाएगा' इसलिए मक्खन हाथ में लेकर फिरती रहती है।

"मधुर— जैसे श्रीमती का। पत्नी का भी मधुर भाव होता है। इस भाव के भीतर सब भाव ही हैं— शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य।"

मणि— ईश्वर का दर्शन क्या इन्हीं चक्षुओं से होता है ?

श्रीरामकृष्ण— उनको चर्मचक्षु से नहीं देखा जाता। साधना करते-करते विशेष एक प्रेम का शरीर हो जाता है। उसके प्रेम के चक्षु, प्रेम के कर्ण होते हैं। उसी चक्षु से उनको देखता है, उसी कान से उनकी वाणी सुनाई देती है। और फिर प्रेम के लिंग-योनि होते हैं।

यह बात सुनकर मणि हो-हो करके हँसने लगे। ठाकुर विरक्त नहीं हुए और फिर कहने लगे।

श्रीरामकृष्ण— इसी प्रेम के शरीर से आत्मा के साथ रमण होता है।

मणि फिर गम्भीर हो गए।

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर के प्रति खूब प्यार न आए, तो होता नहीं। खूब प्यार होने पर ही तो चारों ओर ईश्वरमय दिखता है। पाण्डु-रोग अधिक होने पर ही तो चारों ओर पीला दिखाई देगा।

"और फिर तब 'वे ही मैं हूँ' यह विशेष बोध होगा। मतवाले को अधिक नशा होने पर वह कहता है, 'मैं ही काली हूँ।'

"गोपियाँ प्रेमोन्मत्त होकर कहने लगीं, 'मैं ही कृष्ण हूँ'।

"उनका रात-दिन चिन्तन करने पर उनको चारों ओर देखता है— जैसे प्रदीप की शिखा की ओर एकटक देखते रहें, तो फिर थोड़ी देर पीछे चारों ओर शिखामय दिखाई देता है।"

(ईश्वर-दर्शन क्या मस्तिष्क की भूल है ? 'संशयात्मा विनश्यति')

मणि सोचते हैं कि यह शिक्षा तो वास्तविक शिक्षा नहीं है।

ठाकुर अन्तर्यामी, कहते हैं—

''चैतन्य का चिन्तन करने पर अचैतन्य नहीं होता। शिवनाथ ने कहा था, ईश्वर का एक सौ बार चिन्तन करने से सिर घूम जाता है। मैंने उससे कहा, चैतन्य का चिन्तन करने से क्या अचैतन्य होता है ?

मणि— जी, समझा। यह तो अनित्य के किसी विषय का चिन्तन नहीं ? जो नित्य चैतन्य स्वरूप हैं, उनमें मन लगाने पर मनुष्य अचैतन्य क्यों होगा ?

श्रीरामकृष्ण *(प्रसन्न होकर)*— यही तो है उनकी कृपा ! उनकी कृपा न हो तो सन्देह-भंजन नहीं होता।

''आत्मा का साक्षत्कार बिना हुए सन्देह-भंजन नहीं होता।

''उनकी कृपा होने पर फिर भय नहीं रहता। बाप का हाथ पकड़ कर जाने पर भी चाहे लड़का गिर सकता है। किन्तु लड़के का हाथ यदि बाप पकड़ ले तो फिर भय नहीं। वे कृपा करके यदि सन्देह-भंजन कर दें और दर्शन दे दें, तो और कष्ट नहीं रहता। तब भी उनको पाने के लिए खूब व्याकुल होकर पुकारते-पुकारते, साधना करते-करते तब फिर कृपा होती है। बच्चे को बहुत भाग-दौड़ करता देखकर ही माँ की दया होती है। माँ छिपी हुई थी, सामने आकर दर्शन दे देती है।''

मणि सोचते हैं वे भाग-दौड़ क्यों करवाते हैं ? ठाकुर झट कहते हैं,

''उनकी इच्छा है कि कुछ भाग-दौड़ हो; तभी तो आमोद होता है। उन्होंने लीला के लिए इस संसार की रचना की है। इसी का नाम है महामाया। तभी उसी शक्तिरूपिणी माँ के शरणागत होना चाहिए। माया-पाश में बाँध रखा है। इस पाश का छेदन कर सकने पर ही तब ईश्वर-दर्शन हो सकता है।''

(आद्याशक्ति, महामाया और शक्ति-साधना)

श्रीरामकृष्ण— उनकी कृपा पाने के लिए आद्याशक्ति-रूपिणी उनको प्रसन्न रखना चाहिए। वे ही माहामाया हैं। जगत को मुग्ध करके सृष्टि, स्थिति, प्रलय करती हैं। उन्होंने बेहोश करके रखा हुआ है। वही महामाया जब द्वार छोड़ देती हैं, तब अन्दर जाया जाता है। बाहर पड़े रहने पर बाहर की ही वस्तु केवल दिखाई देती है। उस नित्य सच्चिदानन्द पुरुष को नहीं जाना जा सकता। तभी तो पुराण में कथा है— चण्डी में मधुकैटभ*-वध के समय ब्रह्मा आदि देवता महामाया का स्तव करते हैं।

"शक्ति ही जगत की मूलाधार हैं। उसी आद्याशक्ति के भीतर विद्या और अविद्या दोनों हैं।

"अविद्या मुग्ध करती है। अविद्या— जिससे कामिनी-काञ्चन होते हैं, जो मुग्ध करते हैं।

"विद्या— जिससे भक्ति-दया-ज्ञान-प्रेम होता है, जो ईश्वर के पथ पर ले जाती है।

"उस अविद्या को प्रसन्न करना होगा। इसीलिए शक्ति की पूजा-पद्धति है।

"उनको प्रसन्न करने के लिए नाना भावों में पूजा है। दासी भाव, वीर भाव, सन्तान-भाव। वीर-भाव— अर्थात् रमण द्वारा उनको प्रसन्न करना।

"शक्ति-साधना— समस्त ही बहुत अधिक उत्कट साधना थी, चालाकी नहीं।

"मैं माँ के दासी-भाव में, सखी-भाव में दो वर्ष था। मेरा किन्तु सन्तान-भाव है। स्त्रियों के स्तन मातृ-स्तन सोचता हूँ।

"एक-एक स्त्री शक्ति का रूप है। पश्चिम में (बंगाल के पश्चिम में उत्तर प्रदेश आदि) विवाह के समय वर के हाथ में छुरी रहती है, बंगाल में सरौता रहता है; अर्थात् उसी शक्तिरूपा कन्या की सहायता से वर मायापाश-

---

* त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कार स्वरात्मिका।
सुधात्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता॥ — चण्डी— मधुकैटभ-वध

छेदन करेगा। यह है वीर-भाव। मैंने वीर-भाव से पूजा नहीं की। मेरा सन्तान-भाव है।

"कन्या शक्तिरूपा है। विवाह के समय देखा नहीं! वर बुद्धु-जैसा पीछे बैठा रहता है, कन्या किन्तु नि:शंक होती है।"

(दर्शन के पश्चात् ऐश्वर्य भूल जाता है, नाना ज्ञान, अपरा विद्या 'Religion and Science'— सात्त्विक और राजसिक ज्ञान)

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर-लाभ कर लेने पर उनका बाहरी ऐश्वर्य, उनका जगत का ऐश्वर्य भूल जाता है। उनको देख लेने पर उनका ऐश्वर्य स्मरण नहीं रहता। ईश्वर के आनन्द में मग्न होने पर भक्त का फिर और हिसाब नहीं रहता। नरेन्द्र को देख लेने पर, 'तेरा नाम क्या है, तेरा घर कहाँ है'— इन सब बातों के पूछने की आवश्यकता नहीं रहती। पूछने का अवसर ही कहाँ? हनुमान को एक व्यक्ति ने पूछा था, आज कौन-सी तिथि है? हनुमान ने कहा— भाई, मैं वार, तिथि, नक्षत्र— ये सब कुछ नहीं जानता, मैं तो केवल 'राम'-चिन्तन करता हूँ।

तृतीय खण्ड

श्रीरामकृष्ण श्रीविजया के दिन भक्तों के संग दक्षिणेश्वर में

प्रथम परिच्छेद

(चिन्मयी मूर्ति-ध्यान— मातृ-ध्यान)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में विराजमान हैं। समय 9 का होगा। छोटी खाट पर विश्राम कर रहे हैं। फर्श पर मणि बैठे हैं। उनके साथ बातें कर रहे हैं।

आज विजया। रविवार, 22 अक्तूबर, 1882 ईसवी। आश्विन शुक्ला, दशमी तिथि। आजकल राखाल ठाकुर के पास हैं। नरेन्द्र, भवनाथ बीच-बीच में यातायात करते हैं। ठाकुर के संग उनका भतीजा श्रीयुक्त रामलाल और हाजरा महाशय वास करते हैं। राम, मनोमोहन, सुरेश, मास्टर, बलराम— ये लोग भी प्राय: प्रति सप्ताह ठाकुर का दर्शन कर जाते हैं। बाबूराम ने अभी दो-एक बार दर्शन किया है।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारी पूजा की छुट्टियाँ हुई हैं ?

मणि— जी, हाँ। मैं सप्तमी, अष्टमी और नवमी-पूजा के दिन केशवसेन के घर नित्य गया था।

श्रीरामकृष्ण— कहते क्या हो जी!

मणि— मैंने दुर्गा-पूजा की सुन्दर व्याख्या सुनी है।

श्रीरामकृष्ण— क्या सुना ? बताओ, मैं सुनूँ ज़रा।

मणि— केशवसेन के घर रोज सुबह उपासना होती रही है, दस-ग्यारह बजे तक। उसी उपासना के समय उन्होंने दुर्गा-पूजा की व्याख्या की। उन्होंने कहा, 'यदि माँ को पा लिया जाए— यदि माँ दुर्गा को कोई हृदय-मन्दिर में ला सके— तो फिर तो लक्ष्मी, सरस्वती, कार्त्तिक, गणेश अपने-आप आ जाते हैं। लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य, सरस्वती अर्थात् ज्ञान, कार्त्तिक अर्थात् विक्रम, गणेश अर्थात् सिद्धि— ये समस्त अपने-आप ही आ जाते हैं, माँ यदि आ जाती हैं।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण के नरेन्द्रादि अन्तरंग)

श्रीयुक्त ठाकुर ने सारा विवरण सुन लिया और बीच-बीच में केशव की उपासना के सम्बन्ध में प्रश्न करते रहे। अन्त में कहने लगे—

"तुम यहाँ-वहाँ न जाओ, यहाँ पर ही आओगे।

"जो अन्तरंग हैं, वे केवल यहाँ पर ही आएँगे। नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल— ये मेरे अन्तरंग हैं। ये लोग सामान्य नहीं। तुम एक दिन इन्हें खिलाना। नरेन्द्र तुम्हें कैसा लगता है?"

मणि— जी, बहुत अच्छा।

श्रीरामकृष्ण— देखो, नरेन्द्र में कितने गुण हैं! गाना, बजाना, विद्या में (निपुण) और फिर जितेन्द्रिय है। कहता है— 'विवाह नहीं करूँगा'। बचपन से ही ईश्वर में मन है।

ठाकुर मणि के साथ और बातें करते हैं।

(साकार या निराकार—चिन्मयी मूर्ति-ध्यान— मातृ-ध्यान)

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारा आजकल ईश्वर-चिन्तन कैसा हो रहा है? तुम्हें साकार अच्छा लगता है, या निराकार?

मणि— जी, साकार में अभी मन नहीं जाता। और फिर किन्तु निराकार में मन स्थिर नहीं कर सकता।

श्रीरामकृष्ण— देख लिया! निराकार में एकदम मन स्थिर नहीं होता। प्रथम-प्रथम साकार ही ठीक है।

मणि— मिट्टी की इन मूर्तियों का चिन्तन करना?

श्रीरामकृष्ण— क्यों! चिन्मयी मूर्ति।

मणि— जी, वैसा हो भी, तो हाथ-पाँव की कल्पना करनी होगी? किन्तु यह भी सोचता हूँ कि प्रथमावस्था में रूप-चिन्तन किए बिना मन स्थिर नहीं होगा, आपने कह दिया है। अच्छा, वे तो नानारूप धारण कर सकती हैं। अपनी माँ का रूप-ध्यान किया जा सकता है?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वे (माँ) गुरु— ब्रह्ममयी स्वरूपा।

मणि चुप हैं। कुछ क्षण बाद फिर और जिज्ञासा ठाकुर से करते हैं—

मणि— जी, निराकार में किस प्रकार दिखाई देता है? वह क्या वर्णन किया जा सकता है?

श्रीरामकृष्ण *(कुछ सोचकर)*— वह किस प्रकार है, जानते हो!

यह बात कहकर ठाकुर थोड़ा चुप रहे। तत्पश्चात् साकार-निराकार-दर्शन की किस प्रकार से अनुभूति होती है— एक विशेष कथा बतला दी। और फिर ठाकुर चुप रहे।

श्रीरामकृष्ण— बात है, इसको विशेष ठीक तरह से जानने के लिए साधना चाहिए। कमरे के भीतर के रत्न यदि देखना चाहो, और लेना चाहो, तो फिर परिश्रम करके चाबी लाकर दरवाजों का ताला खोलना होगा। तब फिर रत्न बाहर निकालकर लाने चाहिएँ। वैसा न करो तो फिर ताला लगा हुआ कमरा है— द्वार के निकट खड़ा हुआ सोचता हूँ, 'यह मैंने दरवाजा खोल लिया, सन्दूक का ताला तोड़ लिया, यह रत्न बाहर निकाल लिया।' केवल खड़े-खड़े सोचने से तो होता नहीं। साधना करनी चाहिए।

द्वितीय परिच्छेद

ठाकुर अनन्त और अनन्त ईश्वर— सब ही पन्थ— श्रीवृन्दावन-दर्शन

(ज्ञानी के मत में असंख्य अवतार— कुटीचक— तीर्थ क्यों ?)

श्रीरामकृष्ण— ज्ञानीगण निराकार-चिन्तन करते हैं। वे अवतार नहीं मानते। अर्जुन श्रीकृष्ण का स्तव करते हैं, 'तुम पूर्ण ब्रह्म हो।' कृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'मैं पूर्ण ब्रह्म हूँ कि नहीं, देखोगे ?' आओ। यह कहकर एक जगह ले जाकर बोले, 'तुम क्या देख रहे हो ?' अर्जुन ने कहा, 'मैं एक वृहत् वृक्ष देख रहा हूँ, उस पर गुच्छे के गुच्छे काले जामुन जैसा फल लगा हुआ है।' कृष्ण बोले, 'और निकट आकर देखो कि ये गुच्छे के गुच्छे काला फल नहीं है, गुच्छे के गुच्छे असंख्य कृष्ण फले हुए हैं, मेरी तरह'— अर्थात् उसी पूर्णब्रह्म रूप वृक्ष से असंख्य अवतार हुए जा रहे हैं।

"कबीरदास की निराकार के ऊपर लगन थी। कृष्ण की बात पर कबीरदास कहते, 'उनको क्या भजूँगा ? गोपियाँ तालियाँ बजातीं और वे बन्दर-नाच नाचते थे।' *(सहास्य)*। मैं साकारवादी के निकट साकार और फिर निराकारवादी के निकट निराकार।"

मणि *(सहास्य)*— जिनकी बातें हो रही हैं, वे (ईश्वर) भी जैसे अनन्त हैं, आप भी वैसे ही हैं अनन्त! आपका अन्त नहीं मिलता।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुमने समझ लिया है! बात क्या है, जानते हो ?— सब धर्म एक बार कर लेने चाहिएँ। सब पथों द्वारा चलकर आ जाना चाहिए। खेल की गोटी सारे घरों को पार किए बिना क्या पकती है ? गोटी जब पक्की हो जाती है, तब उसे कोई पकड़ नहीं सकता।

मणि— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— योगी दो प्रकार के हैं, बहूदक और कुटीचक। जो साधु बहुतीर्थ करता फिरता है— जिसके मन में अभी भी शान्ति नहीं हुई, उसे बहूदक कहते हैं। जिस योगी ने सब जगह घूमकर मन स्थिर कर लिया है,

जिसको शान्ति हो गई है, वह एक जगह आसन करके बैठ गया है— फिर नहीं हिलता। उसी एक स्थान पर बैठने में ही उसे आनन्द है। उसको तीर्थ पर जाने का कोई प्रयोजन ही नहीं होता। यदि वह तीर्थ जाता भी है तो केवल उद्दीपन के लिए। इसे कुटीचक कहते हैं।

''मुझे सब धर्म एक बार कर लेने पड़े थे— हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन। और फिर शाक्त, वैष्णव, वेदान्त आदि इन सब पथों द्वारा भी आना पड़ा है। देखा, वही एक ईश्वर— उनके पास ही सब आ रहे हैं— भिन्न-भिन्न पथों द्वारा।

''तीर्थों पर गया तो एक-एक बार भारी कष्ट हुआ। काशी में सेजोबाबुओं (मथुरबाबू-परिवार) के संग राजा-बाबुओं की बैठक में गया। वहाँ पर देखा, वे लोग विषय की बातें कर रहे हैं— रुपया, जमीन इत्यादि की बातें। बातें सुनकर मैं रोने लगा। बोला, 'माँ, कहाँ पर ले आई हो! दक्षिणेश्वर में तो मैं अच्छा था।' प्रयाग में देखा— वही तालाब, वही दूर्वा, वही वृक्ष, वही इमली के पत्ते! केवल अन्तर— पश्चिम (उत्तर प्रदेश, बंगाल के पश्चिम) के लोगों का भूसी की तरह बाह्य। *(ठाकुर और मणि का हास्य)*।''

''तथापि तीर्थ पर उद्दीपन तो चाहे होता ही है। मथुरबाबू के संग वृन्दावन गया। मथुरबाबू के घर की स्त्रियाँ भी थीं, हृदय भी था। कालीय-दमन घाट देखने मात्र से ही उद्दीपन हो जाता, मैं विह्वल हो जाया करता। हृदे मुझे यमुना के उसी घाट पर बच्चे की भाँति नहलाता।

''यमुना के तीर पर सन्ध्या के समय टहलने जाता। यमुना की रेती से उस समय चरागाह (चौने) से गउएँ लौटती हुई आतीं। देखने मात्र से ही मुझे कृष्ण का उद्दीपन हुआ, उन्मत्त की न्यायीं मैं दौड़ने लगा, 'कृष्ण कहाँ, कृष्ण कहाँ'— यह बोलते-बोलते।

''पालकी द्वारा श्यामकुण्ड, राधाकुण्ड के मार्ग से जा रहा था। गोवर्धन को देखते ही उतर गया। उसे देखते ही एकदम विह्वल होकर, दौड़कर गोवर्धन के ऊपर जाकर खड़ा हो गया और बेहोश हो गया। तब ब्रजवासी मुझे उतार लाए। श्यामकुण्ड, राधाकुण्ड के मार्ग के वे ही मैदान, पेड़-पौधे,

हिरण!— समस्त देखकर विह्वल हो गया। चक्षुओं के जल से कपड़े भीगने लगे। मन में होने लगा 'ओ कृष्ण, सब कुछ ही है, केवल तुझे ही नहीं देख पा रहा हूँ।' पालकी के अन्दर बैठा रहा, किन्तु एक बार भी एक भी बात कहने की शक्ति नहीं रही, चुप बैठा रहा! हृदय पालकी के पीछे आ रहा था। कहारों से कह दिया था 'खूब होशियार' रहें।

"गंगामायी बड़ा यत्न करती थी। बहुत उमर थी। निधुबन के निकट कुटीर में अकेली रहती थी। मेरी अवस्था और भाव देखकर कहती— ये साक्षात् राधा देह धारण करके आई हैं। मुझे 'दुलाली' कहकर पुकारती! उसको पा लेने पर मेरा खाना-पीना, वासस्थान पर लौटना आदि भूल जाता। हृदय कभी-कभी वासस्थान से आहार लाकर खिला जाता। वह भी खाने की चीजें तैयार करके खिलाती।

"गंगामायी को भाव होता। भाव देखने के लिए लोगों का मेला लग जाता। भाव में एक दिन हृदय के कन्धे पर चढ़ गई थी।

"गंगामायी के पास से देश आने की मेरी इच्छा नहीं थी। सब ठीक हो गया था। मैं सिद्ध चावलों का भात खाऊँगा, गंगामायी का बिछौना कमरे के इस ओर होगा, मेरा बिस्तर उस ओर होगा। सब ठीक हो गया था। हृदय ने तब कहा, 'तुम्हारे पेट में इतनी तकलीफ है, कौन देखेगा?' गंगामायी बोली, 'क्यों, मैं देखूँगी, मैं सेवा करूँगी।' हृदय एक हाथ पकड़ कर खींच रहा था और गंगामायी एक हाथ पकड़ कर खींच रही थी— ऐसे समय माँ की स्मृति आ गई। माँ तो अकेली वहाँ दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी की नहबत में हैं। फिर वहाँ रहना नहीं हुआ। तब कहा— 'नहीं, मुझे जाना ही होगा!'

"वृन्दावन का वह सुन्दर भाव था। नए यात्री के जाने पर व्रज-बालकगण कहते हैं— 'हरि बोलो, गठरी खोलो'!"

ग्यारह बजे के बाद ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने माँ काली का प्रसाद ग्रहण किया। मध्याह्न में थोड़ा विश्राम करके अपराह्न को फिर भक्तों के संग कथावार्त्ता में व्यतीत करते हैं, केवल बीच-बीच में एक-एक बार प्रणव-ध्वनि अथवा 'हा चैतन्य'— यह नाम उच्चारण करते हैं।

ठाकुर-मन्दिर में सन्ध्या-आरती हो गई। आज विजया। श्रीरामकृष्ण काली-मन्दिर में आए हैं, माँ को प्रणाम के बाद भक्तों ने उनकी पदधूलि ग्रहण की। रामलाल ने माँ काली की आरती की है। ठाकुर रामलाल को सम्बोधन करके कहते हैं, "ओ रामनेलो! कहाँ हो रे।"

माँ काली को सिद्धि निवेदन की गई है। ठाकुर उसी प्रसाद को स्पर्श करेंगे— इसलिए रामलाल को पुकार रहे हैं। और सब भक्तों को थोड़ी-थोड़ी देने के लिए कह रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर-मन्दिर में बलराम आदि के संग में— बलराम को शिक्षा। लक्षण— सत्य वाणी— सर्वधर्मसमन्वय— 'कामिनी-काञ्चन ही माया')

मंगलवार, अपराह्न, 24 अक्तूबर। समय 3-4 का होगा। ठाकुर आहार के ताख (कट्टे) के निकट खड़े हैं। बलराम और मास्टर कलकत्ता से एक गाड़ी में आए हैं और प्रणाम कर रहे हैं। प्रणाम करके बैठने पर ठाकुर हँसते-हँसते कहते हैं :

"ताख के ऊपर खाने को लेने गया था। आहार में हाथ ज्यों ही देता हूँ, त्यों ही छिपकली गिर पड़ी— और झट छोड़ दिया।" *(सब का हास्य)*

श्रीरामकृष्ण— हाँ भई, यह सब मानना चाहिए। यही देखो न, राखाल का असुख! मेरे ही हाथ-पाँव दर्द करते हैं। हुआ क्या, पता है ? मैंने बिछौने से उठने के समय 'राखाल आ रहा है', याद करके अमुक का मुख देख लिया था! *(सब का हास्य)* हाँ जी, लक्षण देखने चाहिएँ। उसी दिन नरेन्द्र एक काणा लड़का ले आया था, उसका मित्र था वह। चक्षु पूरा काणा नहीं था, जो भी हो मैंने सोचा, 'यह फिर कैसा संयोग हुआ!'

"और एक व्यक्ति आता है, मैं उसकी वस्तु खा नहीं सकता। वह ऑफिस में कर्म करता है। उसे 20 रुपये। महीना मिलता है और 20 रुपये। मिथ्या बिल (bill) से बनाता है। झूठी बात कहता है। इस कारण उसके

आने पर बहुत बातें नहीं करता। शायद दो-चार दिन ऑफिस ही नहीं जाता, यहाँ पर पड़ा रहता है। बात क्या है, जानते हो? चाहता है कि किसी से कहकर अन्य जगह कर्म मिल जाए।''

बलराम का वंश परम वैष्णव वंश है। बलराम के पिता वृद्ध हो गए हैं— परम वैष्णव हैं। सिर पर शिखा, गले में तुलसी की माला, और हाथ में सर्वदा ही हरिनाम की माला। जप करते रहते हैं। इनकी उड़ीसा में बहुत-सी जमींदारी है। और कोठार में, श्रीवृन्दावन में, और भी अन्य अनेक स्थानों पर श्री श्रीराधाकृष्ण-विग्रह की सेवा है और अतिथिशालाएँ हैं। बलराम नूतन आने लगे हैं। ठाकुर बातों ही बातों में उनको नाना उपदेश देते हैं।

श्रीरामकृष्ण— उस दिन अमुक आया था। सुना है, शायद उसी काली स्त्री का गुलाम है। ईश्वर के दर्शन क्यों नहीं होते? कारण, कामिनी-काञ्चन बीच में ओट (आवरण) बने रहते हैं और तुम्हारे सम्मुख कैसे यह बात कही कि मेरे पिता के पास एक परमहंस आए थे। पिता ने उसे मुर्गी पकाकर खिलाई। *(बलराम का हास्य)*। 'मेरी अवस्था' अब ऐसी है कि मछली का झोल माँ का प्रसाद हो तो तनिक-सा खा सकता हूँ। माँ का प्रसाद माँस अब नहीं खा सकता— तथापि उँगली से तनिक-सा चखता हूँ, पीछे माँ क्रोध न करें। *(सब का हास्य)*।

(पूर्वकथा— वर्धमान के पथ पर— देशयात्रा— नकुड़ाचार्य का गाना-श्रवण)

''अच्छा! मेरी यह कैसी अवस्था है? तनिक बताओ। वर्धमान से होकर उस देश (कामारपुकुर) को बैलगाड़ी में जा रहा था। उस समय झड़-तूफ़ान-वर्षा होने लगी और गाड़ी के साथ कहीं से लोग आकर जमा हो गए। मेरे संगी व्यक्तियों ने बताया, ये डाकू हैं। मैं तब ईश्वर का नाम करने लगा। किन्तु कभी राम-राम कहता था, कभी काली-काली, कभी हनुमान-हनुमान— सब तरह से ही कहता हूँ। यह कैसी बात है, ज़रा बताओ तो।''

ठाकुर क्या यह बात बता रहे हैं कि ईश्वर एक हैं, उनके नाम असंख्य हैं, भिन्न धर्मावलम्बी अथवा सम्प्रदाय के लोग मिथ्या विवाद करके मरते हैं ?

श्रीरामकृष्ण *(बलराम के प्रति)*— कामिनी-काञ्चन ही माया है। उसके भीतर कुछ दिन रहने से होश चली जाती है। मन में बोध होता है कि अच्छा हूँ। मेहतर गू का बर्तन उठाता है। उठाते-उठाते फिर घृणा नहीं रहती। ईश्वर का नाम-गुण-कीर्त्तन करने का अभ्यास कर लेने पर ही क्रमशः भक्ति होती है।

(मास्टर के प्रति)— उससे लज्जा नहीं करते। 'लज्जा, घृणा, भय तिन थाकते नय।' (लज्जा, घृणा, भय— इन तीन के रहते नहीं होता— ईश्वर-दर्शन, ईश्वर-लाभ)।

''उस देश में सुन्दर कीर्त्तन-गान है— खोल बजाकर कीर्त्तन होता है। नकुड़ाचार्य का गाना तो बड़ा ही सुन्दर है। तुम लोगों की वृन्दावन में सेवा है ?

बलराम— जी हाँ। एक कुञ्ज है— श्यामसुन्दर की सेवा।

श्रीरामकृष्ण— मैं वृन्दावन में गया था। निधुवन सुन्दर स्थान है।

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त 'श्री म'

(14-7-1854 — 4-6-1932)

चतुर्थ खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलकत्ता के राजपथ पर भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

श्रीरामकृष्ण गाड़ी द्वारा दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी से निकलकर कलकत्ता की ओर आ रहे हैं। संग में रामलाल और दो-एक भक्त हैं। फाटक से बाहर आते ही देखा, चार फजली आम हाथ में लिए मणि पैदल आ रहे हैं। मणि को देखकर गाड़ी थमवाने के लिए कहा। मणि ने गाड़ी के ऊपर सिर रखकर प्रणाम किया।

शनिवार, 21 जुलाई, 1883 ईसवी। आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा, समय चार का। ठाकुर अधर के घर जाएँगे, फिर श्रीयुक्त यदुमल्लिक के घर, सबके अन्त में श्री खेलात् घोष के घर जाएँगे।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति, सहास्य)*— तुम भी आ जाओ ना! हम अधर के घर जा रहे हैं।

मणि 'जो आज्ञा' कहकर गाड़ी में चढ़ गए।

मणि अंग्रेज़ी पढ़े हुए हैं, इसीलिए संस्कार नहीं मानते। किन्तु कई दिन हुए ठाकुर के पास स्वीकार कर लिया था कि अधर का संस्कार है, तभी वे उनकी इतनी भक्ति करते हैं। घर लौट कर सोच कर देखा कि संस्कार के सम्बन्ध में अब भी उनका पूर्ण विश्वास नहीं हुआ है। जभी यह बात कहने के लिए ही आज ठाकुर के दर्शन करने आए हैं। ठाकुर बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, अधर को तुम कैसा मानते हो?

मणि— जी, उनका खूब अनुराग है।

श्रीरामकृष्ण— अधर भी तुम्हारी बहुत बड़ाई करता है।

मणि कुछ क्षण चुप रहे। अब पूर्वजन्म के संस्कार की बात उठाते हैं।

(कुछ भी समझ में नहीं आता— अति गुह्य कथा)

मणि— मेरा 'पूर्वजन्म' और 'संस्कार' इत्यादि पर वैसा विश्वास नहीं है। इससे क्या मेरी भक्ति में कुछ हानि होगी?

श्रीरामकृष्ण— उनकी सृष्टि में सब कुछ हो सकता है— यह विश्वास रहने से ही हो जाता है। मैं जो सोच रहा हूँ, वही सत्य है और सब मत मिथ्या हैं— ऐसा भाव आने मत दिओ! उसके पश्चात् वे ही समझा देंगे।

"उनका काण्ड मनुष्य क्या समझेगा? अनन्त व्यापार! इसीलिए तो मैं वह समस्त समझने की ज़रा भी चेष्टा नहीं करता। सुन रखा है— उनकी सृष्टि में सब ही हो सकता है। तभी तो वैसी चिन्ता न करके केवल उनका ही चिन्तन करता हूँ। हनुमान से पूछा था, 'आज क्या तिथि है?' हनुमान ने कहा था— 'मैं तिथि-नक्षत्र नहीं जानता, केवल एक राम-चिन्तन करता हूँ।'

"उनका काण्ड क्या कुछ समझा जाता है जी! वे निकट ही हैं किन्तु पता नहीं लगता। बलराम कृष्ण को भगवान नहीं जानते थे।"

मणि— जी हाँ! आपने भीष्मदेव की जो बात बताई थी।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, हाँ, क्या बताया था? कहो तो ज़रा।

मणि— भीष्मदेव शरशय्या पर रो रहे थे। पाण्डवों ने श्रीकृष्ण से कहा, 'भाई, यह कैसा आश्चर्य है! पितामह इतने ज्ञानी हैं, अथच मृत्यु का सोचकर रो रहे हैं!' श्रीकृष्ण ने कहा, 'उनसे पूछो न कि क्यों रो रहे हैं?' भीष्मपितामह बोले, 'यह सोचकर रो रहा हूँ कि भगवान के कार्य कुछ भी समझ नहीं पाया! हे कृष्ण, तुम इन पाण्डवों के संग-संग फिर रहे हो, पद-पद पर रक्षा कर रहे हो, तो भी इनकी विपदाओं का अन्त नहीं है।'

श्रीरामकृष्ण— अपनी माया से सब ढक कर रखे हुए हैं, कुछ जानने नहीं देते। कामिनी-काञ्चन है माया। इस माया को हटाकर जो उनका दर्शन करता है, वह ही उनको देख पाता है। किसी को समझाते-समझाते (ईश्वर एक विशेष आश्चर्यपूर्ण व्यापार है) दिखला दिया, हठात् सामने देखा देश (कामारपुकुर) का एक तालाब और एक व्यक्ति ने पाना (काही) हटाकर मानो पानी पी लिया। वह जल स्फटिकवत् है। दिखलाया कि वही सच्चिदानन्द माया रूप पाना (काही) से ढका हुआ है— जो इसे हटाकर जल पीता है, वही प्राप्त करता है।

"सुन, तुम से एक अति गुह्य बात कहता हूँ। (तोमाय अति गुह्य कथा बोलछि!) झाऊतले की ओर बाह्य करते-करते देखा था— सामने चोरकोठरी के दरवाजे की भाँति एक है। कोठरी के भीतर क्या है— देख नहीं पा रहा हूँ। मैं नाखून द्वारा छिद्र करने लगा, किन्तु कर नहीं पा रहा हूँ। छेद करता हूँ, किन्तु फिर भर जाता है! तत्पश्चात् एक बार इतना बड़ा छेद हो गया।"

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने यह बात कह कर मौनावलम्बन कर लिया। अब फिर बातें करते हैं—

"ये समस्त बड़ी ऊँची बातें हैं— यह देख, मेरा मुख कोई मानो दबा-दबाकर बन्द किए जा रहा है!

"योनि में वास अपनी आँखों से देखा— कुकुर-कुकुरी के मैथुन के समय देखा था।

"उनके चैतन्य से जगत का चैतन्य है। एक-एक बार देखता हूँ, छोटी-छोटी मछलियों के भीतर वही चैतन्य किलबिल-किलबिल कर रहा है!"

गाड़ी शोभाबाजार के चौराहे दरमाहट के निकट उपस्थित हुई। ठाकुर फिर कह रहे हैं—

"एक-एक बार देखता हूँ वर्षा में जैसे पृथ्वी डूबी रहती है, उसी प्रकार इस चैतन्य में जगत डूबा हुआ है।

"इतना तो देखा हुआ है, किन्तु मुझे अभिमान नहीं होता।"

मणि *(सहास्य)*— आप! और फिर यह अभिमान!

श्रीरामकृष्ण— माइरि बोल्चि, (सौगन्ध खाकर कहता हूँ), मुझे यदि तनिक-सा भी अभिमान होता हो!

मणि— ग्रीस देश में एक व्यक्ति था। उसका नाम सोक्रेटिस (सुकरात) था। दैववाणी हुई थी कि सब व्यक्तियों में वह ही ज्ञानी है। वह व्यक्ति अवाक् हो गया था। तब निर्जन में बहुत देर चिन्तन करके समझ पाया था। तब उसने बन्धुओं से कहा कि 'मैं ही केवल समझ पाया हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता। किन्तु अन्य सब लोग कहते हैं, हमें बहुत ज्ञान हो गया है।' किन्तु वस्तुत: सब अज्ञानी हैं।

श्रीरामकृष्ण— मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि मैं क्या जानता हूँ जो इतने लोग आते हैं! वैष्णवचरण बड़ा पण्डित था। वह कहा करता था कि तुम जो-जो बातें कहते हो, वे समस्त शास्त्रों में मिलती हैं। तो भी तुम्हारे पास क्यों आता हूँ, जानते हो? तुम्हारे मुख से उन्हें सुनने आता हूँ।

मणि— जी, समस्त बातें शास्त्र के संग में मिलती हैं। नवद्वीप गोस्वामी भी उस दिन पेनेटी में यही बात ही कह रहे थे। आपने कहा था कि 'गीता-गीता' कहते-कहते 'त्यागी-त्यागी' हो जाता है। वस्तुत: तागी होता है।*

श्रीरामकृष्ण— मेरे संग में क्या फिर किसी का कुछ मिलता है? किसी पण्डित या साधु का?

मणि— आपको ईश्वर ने स्वयं अपने हाथों से गढ़ा है। अन्य लोगों को मशीन में डालकर तैयार किया है, जैसे नियम के अनुसार सारी सृष्टि होती है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, रामलाल आदि से)*— अरे, देखो क्या कहता है यह!

ठाकुर का हास्य फिर थमता नहीं है। अन्त में कहते हैं—

"कसम खाकर कहता हूँ जो मुझे तनिक-सा भी अभिमान होता हो!"

---

* जो त्यागी, वही तागी। तग् धातू से 'तागी' होता है।

मणि— विद्या से एक उपकार होता है— यह बोध हो जाता है कि मैं कुछ नहीं जानता और मैं कुछ भी नहीं हूँ।

श्रीरामकृष्ण— ठीक! ठीक! मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ— मैं कुछ भी नहीं! अच्छा तुम्हें अंग्रेज़ी-ज्योतिष में विश्वास है?

मणि— उनके नियम के अनुसार नूतन आविष्कार (discovery) हो सकता है, यूरेनस (Uranus) ग्रह की अव्यवस्थित चाल देख कर दूरबीन से खोज करके देखा है कि नूतन एक ग्रह (Neptune) झिल-मिल कर रहा है। और दोबारा ग्रहों की गणना हो सकती है।

श्रीरामकृष्ण— वैसे चाहे होता हो।

गाड़ी चल रही है,— प्राय: अधर के घर के निकट आ गई। ठाकुर मणि से कहते हैं—

''सत्य पर रहो, इससे ही ईश्वर-लाभ होगा।''

मणि— और भी एक बात आपने नवद्वीप गोस्वामी से कही थी, ''हे ईश्वर! मैं तुम्हें चाहता हूँ। देखो, जैसे अपनी भुवनमोहिनी माया के ऐश्वर्य में मुग्ध न करना! मैं तुम्हें चाहता हूँ।''

श्रीरामकृष्ण— हाँ, यही तो आन्तरिक कहना होगा।

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीयुक्त अधरसेन के घर कीर्त्तनानन्द में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण अधर के घर आए हैं। रामलाल, मास्टर, अधर और अन्य-अन्य भक्त उनके पास बैठकखाने में बैठे हुए हैं। मुहल्ले के दो-चार जन ठाकुर को मिलने आए हैं। राखाल के पिता कलकत्ता में हैं— राखाल वहीं पर ही हैं।

श्रीरामकृष्ण *(अधर के प्रति)*— क्यों, राखाल को खबर नहीं दी?

अधर— जी हाँ, उन्हें खबर दी गई है।

राखाल के लिए ठाकुर को चंचल, व्यग्र (उतावला) देखकर, अधर ने दोबारा और कुछ कहे बिना अपनी गाड़ी में राखाल को ले आने के लिए एक जन भेज दिया।

अधर ठाकुर के पास बैठ गए। आज ठाकुर के दर्शनों के लिए अधर व्याकुल हुए थे। ठाकुर के यहाँ आने की बात पहले से निश्चित नहीं थी। ईश्वर की इच्छा से वे आ गए हैं।

अधर— आप कई दिन आए नहीं। मैंने आज पुकारा था— ऐसा कि आँखों से जल बहने लगा था।

श्रीरामकृष्ण *(प्रसन्न होकर, सहास्य)*— कहते क्या हो जी!

सन्ध्या हो गई। बैठक में रोशनी कर दी गई। ठाकुर ने हाथ जोड़कर जगन्माता को प्रणाम करके नि:शब्द शायद मूल-मन्त्र जप किया। फिर मधुर-स्वर में नाम करते हैं। कह रहे हैं— 'गोविन्द, गोविन्द, सच्चिदानन्द, हरिबोल! हरिबोल!' नाम ले रहे हैं, और मानो मधु-वर्षण हो रहा है। भक्तगण अवाक् होकर वही नाम-सुधा-पान कर रहे हैं। श्रीयुक्त रामलाल अब गाना गाते हैं—

भुवन भुलाइलि मा हरमोहिनी,
मूलाधारे महोत्पले, वीणावाद्य-विनोदिनी।
शरीर शारीर यन्त्रे सुषुम्नादि त्रय तन्त्रे,
गुण भेदे महामन्त्रे, तिन ग्राम-सञ्चारिणी।
आधार भैरवाकार षड़दले श्रीराग आर,
मणिपुरेते मल्लार, बसन्ते हृद् प्रकाशिनी।
विशुद्ध हिन्दोल सुरे, कर्णाटक आज्ञापुरे,
तान-मान-लयसुरे, त्रिसप्त-सुरभेदिनी।
महामाया मोहपाशे, बद्धकर अनायासे,
तत्त्व लये तत्त्वाकाशे स्थिर आछे सौदामिनी।
श्री नन्दकुमारे कय, तत्त्व ना निश्चय होय,
तव तत्त्व गुणत्रय, काकीमुख आच्छादिनी।

[भावार्थ— माँ! हरमोहिनी, आपने ब्रह्माण्ड को भुला रखा है। माँ! आप मूलाधार महापद्म में वीणा लेकर विनोद करती रहती हो। देही रूप में शरीर रूपी यन्त्र पर अपने महामन्त्र द्वारा सुषुम्नादि तीन तारों पर तीन गुणों को भेदन करके तीनों लोकों में संचार करती रहती हो। आपका आधार (स्वाधिष्ठान) षड्दल पद्म में भैरव के आधार का है। उसे आप श्रीराग रूप में और मणिपुर पद मल्हार राग रूप में और हृदय पद को वसन्त राग रूप में प्रकाशित करती रहती हो। आप विशुद्ध पद हिन्दोल राग के सुर में और आज्ञा पद्म में कर्णाटक के रूप में तान-मानलय सुर से त्रिसप्त सुरों का भेदन करती हो। आप महामाया हो। मोहपाश में अनायास (सहज ही) बाँध लेती हो, और स्वयं तत्त्व में लीन होकर तत्त्वाकाश में सौदामिनी (विद्युत्) रूप में स्थिर रहती हो। श्री नन्दकुमार कहते हैं, इस तत्त्व का निश्चय तो नहीं होता किन्तु आप कोकिला के स्वर को आवृत्त करने वाली हो और आपका तत्त्व है गुणत्रय— सत्त्व, रज, तम।]

रामलाल ने फिर एक और गाया—

भवदारा भयहरा नाम शुनेछि तोमार,
ताइते एबार दिएछि भार तारो तारो ना तारो मा।
तुमि मा ब्रह्माण्डधारी ब्रह्माण्ड व्यापिके,
के जाने तोमारे तुमि काली कि राधिके,
घटे घटे तुमि घटे आछो गो जननी,
मूलाधार कमले थाको मा कुलकुण्डलिनी।
तदूर्ध्वेते आछे मागो नामे स्वाधिष्ठान,
चतुर्दल पद्मे तथाय आछो अधिष्ठान।
चतुर्दले थाको तुमि कुलकुण्डलिनी,
षड़दल वज्रासने बासो मा आपनि।
तदूर्ध्वेते नाभिस्थान मा मणिपुर कय,
नीलवर्णेर दशदल पद्म जे तथाय,
सुषुम्नार पथ दिये एशो गो जननी,
कमले कमले थाको कमले कामिनी।
तदूर्ध्वेते आछे मागो सुधा सरोवर,
रक्तवर्णेर द्वादशदल पद्म मनोहर,
पादपद्म दिये यदि ए पद्म प्रकाश,
(मा) हृदे आछे विभावरी तिमिर विनाश।

तदूर्ध्वे ते आछे मागो नाम कण्ठस्थल,
धूम्रवर्णेर पद्म आछे होये षोड़शदल।
सेई पद्म मध्ये आछे अम्बुज आकाश,
से आकाश रुद्ध होले सकलि आकाश।
तदूर्ध्वे ललाटे स्थान मा आछे द्विदल पद्म,
सदाय आछये मन होइये आबद्ध।
मन जे माने ना आमार मन भालो नय,
द्विदले बोसिया रंग देखये सदाय।
तदूर्ध्वे मस्तके स्थान मा अति मनोहर,
सहस्रदल पद्म आछे ताहार भितर।
तथाय परम शिव आछेन आपनि,
सेई शिवेर काछे बोशो शिवे मा आपनि।
तुमि आद्याशक्ति मा जितेन्द्रिय नारी,
योगीन्द्र मुनीन्द्र भावे नगेन्द्र कुमारी।
हर शक्ति हर शक्ति सुदनेर एबार,
येनो ना आसिते होय मा भव पारावार।
तुमि आद्याशक्ति मागो तुमि पञ्चतत्त्व,
के जाने तोमारे तुमि तुमिइ तत्त्वातीत।
ओ मा भक्त जन्य चराचरे तुमि से साकार,
पञ्चे पञ्चे लय हले तुमि निराकार।

[भावार्थ— हे भवानी, मैंने तुम्हारा भय-हरण करने वाला नाम सुना है, तभी तो इस बार भार दिया है। अब तुम चाहे तारो या न तारो। तुम माँ, ब्रह्माण्ड-धारिणी हो, ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो। कौन जाने कि तुम काली हो या राधा! हे माँ तुम घट-घट में हो। मूलाधार के चतुर्दल कमल में तुम कुल-कुण्डलिनी हो। तुम्हीं फिर सुषुम्ना के मार्ग से ऊपर उठकर स्वाधिष्ठानचक्र के षड्दल के वज्रासन पर पहुँचती हो। इसी प्रकार माँ उसके ऊपर नाभिस्थान में मणिपुर चक्र के नीलवर्ण दशदल कमल में पहुँचती हो। सुषुम्नापथ से हे जननी! कमले कामिनी! तुम ऊर्ध्वोर्ध्व कमलों में रहती हो। उसके ऊपर है माँ, सुधा-सरोवर में रक्तवर्ण द्वादशदल मनोहर पद्म। उसे अपने पादपद्म द्वारा यदि तुम विकसित कर दो तो हृदय के अज्ञानान्धकार का नाश हो जाता है। इसके ऊपर कण्ठस्थल में धूम्रवर्ण षोडशदल पद्म है, उसी कमल में है अम्बुज आकाश। उस आकाश के रुद्ध होने पर सब ही आकाश है। उसके ऊपर ललाट स्थान पर द्विदल पद्म है, वहाँ मन सदा आबद्ध है, वहीं

द्विदल में रहकर सदा मजा चखना चाहता है। उसके ऊपर मस्तक के अति मनोहर स्थान में सहस्रदल पद्म में परमशिव स्वयं विराजमान हैं। हे माँ! उसी शिव के निकट तुम आद्याशक्ति जितेन्द्रिय नारी के रूप में हो। योगीन्द्र, मुनीन्द्र नगेन्द्रकुमारी (दुर्गा)के रूप में तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम शिव की शक्ति हो। मेरी वासनाओं का नाश कर दो, ताकि इस संसार में फिर न आना हो। माँ, तुम आद्याशक्ति हो, पञ्चतत्त्व हो और तुम्हीं तत्त्वों से परे हो। भक्त के लिए तुम साकार हो, पञ्चतत्त्वों में लीन होने पर तुम निराकार हो।]

(निराकार सच्चिदानन्द-दर्शन— षट्चक्र-भेद, नाद-भेद और समाधि)

श्रीयुक्त रामलाल जब गा रहे हैं—

तदूर्ध्वेते आछे मागो नाम कण्ठस्थल,
धूम्रवर्णेर पद्म आछे होये षोडशदल,
सेइ पद्म मध्ये आछे अम्बुज आकाश,
से आकाश रुद्ध होले सकलि आकाश।

तब ठाकुर श्रीरामकृष्ण मास्टर से कहते हैं—

''यही सुन, इसका ही नाम है निराकार सच्चिदानन्द-दर्शन। विशुद्धचक्र के भेदन हो जाने पर सब ही आकाश है।''

मास्टर— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— इस माया-जीव-जगत को पार कर जाने पर ही तब नित्य में पहुँचा जाता है। नाद-भेद हो जाने पर ही तब समाधि होती है। ॐकार-साधन करते-करते नाद-भेद होता है, फिर समाधि होती है।

तृतीय परिच्छेद

(यदुमल्लिक की बाड़ी— सिंहवाहिनी के सामने— 'समाधिमन्दिर' में)

अपने घर में अधर ने ठाकुर की फल-मूल, मिठाई आदि देकर सेवा की। ठाकुर ने कहा आज यदुमल्लिक के घर जाना होगा।

ठाकुर यदुमल्लिक के घर आए हैं। आज आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा। रात्रि ज्योत्स्नामयी। जिस कमरे में सिंहवाहिनी की सेवा की है, ठाकुर

उसी कक्ष में उपस्थित हुए। माँ ने सचन्दन पुष्प और पुष्प-माला द्वारा अर्चित होकर अपूर्व श्री धारण की हुई है। सम्मुख पुरोहित बैठे हैं। प्रतिमा के सामने कमरे में ज्योति जल रही है। सांगोपांगों के मध्य एकजन को एक रुपया देकर प्रणाम करने के लिए ठाकुर ने कहा 'क्योंकि देवता के निकट आने पर कुछ प्रणामी देनी चाहिए।'

ठाकुर सिंहवाहिनी के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े हुए हैं। पीछे भक्तगण हाथ जोड़कर खड़े हैं।

ठाकुर अनेक क्षण तक दर्शन करते हैं।

कैसा आश्चर्य, दर्शन करते-करते एकदम समाधिस्थ! पत्थर की मूर्त्तिवत् निस्तब्ध भाव में खड़े हुए हैं। नयन पलकशून्य!

अनेक क्षण पश्चात् दीर्घ नि:श्वास छोड़ा। समाधि भंग हो गई। मानो नशे में मतवाले होकर कहते हैं— माँ आसि गो! (माँ, आ रहा हूँ जी!)

किन्तु चल नहीं पा रहे हैं— उसी एक भाव में खड़े हुए हैं।

तब रामलाल से कहते हैं,

''तुम वही गाओ,— तब ही मैं ठीक होऊँगा।'' रामलाल गाते हैं—

भुवन भुलाइलि माँ हरमोहिनी।

गाना समाप्त हुआ।

अब ठाकुर बैठकखाने की ओर आ रहे हैं— भक्तों के संग। आते समय बीच में एक बार कहते हैं— माँ, आमार हृदये थाको माँ! (माँ, मेरे हृदय में रहो माँ!)

श्रीयुक्त यदुमल्लिक अपने जनों के साथ बैठक में बैठे हैं। ठाकुर भाव में ही हैं, आकर गा रहे हैं—

गो आनन्दमयी होये माँ आमाय निरानन्द करो ना।
ओ माँ ओ दूटि चरण बिने आमार मन, अन्य किछु आर जाने ना॥
तपन-तनय आमाय मन्द कय कि बोलिबो ताय बोलो ना।
भवानी बोलिये भवे जाबो चले, मने छिलो एई बासना।
अकूल पाथारे डुबाबि आमारे (ओ माँ) स्वपनेओ तातो जानि ना॥

आमि अहर्निशि श्रीदुर्गा नामे भासि, तबु दुःख राशि गेलो ना।
एबार यदि मरि ओ हरसुन्दरी तोर दुर्गानाम आर केओ लोबे ना।

[भावार्थ— ओ माँ, आनन्दमयी होकर आप मुझे निरानन्द मत करो। तुम्हारे दो चरणों के बिना मेरा मन और कुछ नहीं जानता। तपन-तनय (यमराज) मुझे बुरा कहता है। मैं उसे क्या कहूँ, आप बता दो। मन में मेरे तो यही वासना थी कि भवानी कहते हुए मैं संसार, भव-सागर में चलता चलूँगा। आप मुझे अकूल में, अथाह समुद्र में डुबो देंगी— ऐसा तो माँ स्वप्न में भी नहीं जानता था। मैं रात-दिन श्रीदुर्गा-नाम में तैर रहा हूँ, तब भी दुःख-राशि नहीं गई। अब की बार यदि मैं मरता हूँ तो हे हरसुन्दरि! तेरा दुर्गा नाम फिर कोई नहीं लेगा।]

गाना समाप्त होने पर फिर और भावोन्मत्त होकर यदु से कहते हैं, ''क्यों बाबू, क्या गाऊँ? 'माँ आमि कि आटाशे छेले'— क्या इस गाने को गाऊँ?'' यह कहकर ठाकुर गाते हैं—

मा आमि कि आटाशे छेले।
आमि भय करिने चोख रांगाले॥
सम्पद आमार ओ रांगापद शिव धरेन जा हृद्‌कमले।
आमार विषय चाइते गेले बिडम्बना कतइ छले॥
शिवेर दलिल सइ रेखेछि हृदयेते तुले।
एबार करबो नालिश नाथेर आगे, डिक्रि लबो एक सओआले।
जानाइबो केमन छेले मोकद्दमाय दाँड़ाइले।
जखन गुरुदत्त दस्ताविज, गुजराइबो मिछिलो चाले॥
माये पोये मोकद्दमा, धूम होबे रामप्रसाद बोले।
आमि क्षान्त होबो जखन आमाय शान्त करे लवे कोले॥

[भावार्थ— माँ, मैं क्या अठमासा (दुर्बल) बेटा हूँ? मैं आँखें लाल करने से डरता नहीं। मेरी सम्पद तो वे लाल चरण हैं, जो शिव अपने हृदय-कमल में रखते हैं। जब मैं वह सम्पत्ति माँगता हूँ तो मुझे छल से टरका दिया जाता है। शिव की हस्ताक्षरित दलील मैंने हृदय में उठाकर रख दी है। अब की बार नाथ के आगे मुकदमा करूँगा और एक ही बात पर डिक्री लूँगा, जनवा दूँगा कि पुत्र मुकदमे में कैसे खड़ा हुआ! रामप्रसाद कहते हैं— माँ-बेटे का मुकदमा होने पर खूब धूम पड़ जाएगी। मैं तो तब शान्त होऊँगा जब मुझे शान्त करके अपने अंक में ले लोगी।]

भाव तनिक उपशम होने पर कहते हैं, ''आमि मायेर प्रसाद खाबो।''

(मैं माँ का प्रसाद खाऊँगा।)

श्री सिंहवाहिनी का प्रसाद लाकर ठाकुर को दिया गया।

श्रीयुक्त यदुमल्लिक बैठे हुए हैं। पास ही कुर्सियों पर कई बन्धु-बान्धव बैठे हुए हैं। उनमें कई मोसाहेब भी हैं।

यदुमल्लिक की ओर मुख करके ठाकुर चेयर पर बैठे हैं और सहास्य बातें कर रहे हैं। ठाकुर के संगी भक्त कोई-कोई साथ के कमरे में हैं। मास्टर और दो-एक भक्त ठाकुर के पास बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अच्छा, तुम भाँड़ (ठग) क्यों रखते हो?

यदु *(सहास्य)*— भाँड़ भी हो चाहे, तुम उद्धार नहीं करोगे?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— गंगा मदेर कुपो के पारे ना! (गंगा मद के कुप्पों को क्या नहीं तारती!)।

(सत्यवाणी और श्रीरामकृष्ण— पुरुष की एक कथा)

यदु ने ठाकुर से प्रतिज्ञा की थी कि घर में चण्डी का गाना करवाएँगे। काफी दिन हो चुके हैं किन्तु चण्डी का गाना नहीं हुआ।

श्रीरामकृष्ण— चण्डी का गाना कहाँ है जी?

यदु— बड़े काम थे। इसीलिए इतने दिन नहीं हुआ।

श्रीरामकृष्ण— से कि! पुरुष मानुषेर एक कथा! (वह क्या! पुरुष मानुष की एक वाणी [होती है]!)

यदु— पुरुष की बात, हाथी के दाँत।

श्रीरामकृष्ण— कैसे, पुरुष की एक बात! क्या कहते हो?

यदु *(सहास्य)*— वह तो है।

श्रीरामकृष्ण— तुम हिसाबी लोग हो। बड़ा हिसाब करके काम करते हो— ब्राह्मण की गाय, खाएगी कम, गोबर देगी अधिक और धारों देगी दूध *(सबका हास्य)*।

ठाकुर कुछ देर बाद यदु से कहते हैं—

समझा हूँ, तुम रामजीवनपुर के शील के जैसे हो— आधा गरम, आधा ठण्डा।

तुम्हारा ईश्वर में भी मन है, और फिर संसार में भी है।

ठाकुर ने दो-एक भक्तों के संग यदु के घर में माँ का प्रसाद— फल-मूल, मिठाई आदि खाया। अब खेलात् घोष के घर जाएँगे।

चतुर्थ परिच्छेद

(श्री खेलात् घोष के घर में शुभागमन— वैष्णव को शिक्षा)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण श्री खेलात् घोष के घर में प्रवेश कर रहे हैं। रात्रि प्रायः दस। घर और घर का बड़ा आँगन चाँद की रोशनी से रोशन हो रहा है। घर में प्रवेश करते-करते ठाकुर भावाविष्ट हो गए हैं। संग में रामलाल, मास्टर और दो-एक भक्त हैं। बड़े चौक के चारों ओर कमरे, दो मंजिल पर चढ़कर बरामदे से एकदम दक्षिण में काफी जाकर फिर पूर्व और फिर पश्चिमास्य होकर काफी आकर, अन्तःपुर की ओर जाना होता है।

उस ओर आकर लगा कि मानो घर में कोई नहीं है। केवल कुछ बड़े-बड़े कमरे और सामने दीर्घ बरामदा पड़ा है।

ठाकुर को उत्तर-पूर्व के एक कमरे में बिठाया गया। अब भी भावस्थ हैं। घर वाले भक्त को बुलाया गया। उन्होंने आकर अभ्यर्थना की। वे वैष्णव हैं— अंगों पर तिलक आदि छापे और हाथ में हरिनाम की झोली है। वह व्यक्ति प्राचीन (वृद्ध, पुराने जमाने का) है। वह खेलात् घोष का सम्बन्धी है। वे दक्षिणेश्वर जाकर कभी-कभी ठाकुर का दर्शन किया करते थे। किन्तु किसी-किसी वैष्णव का भाव अति संकीर्ण होता है। वे शाक्त अथवा ज्ञानियों की बड़ी निन्दा करते हैं। ठाकुर अब बातें करते हैं—

(ठाकुर का सर्वधर्म-समन्वय—The Religion of Love)

श्रीरामकृष्ण *(वैष्णव भक्त और अन्य भक्तों के प्रति)*— 'मेरा धर्म ठीक है और दूसरों का धर्म गलत'— यह मत ठीक नहीं है। ईश्वर एक, एक के

अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। उनको भिन्न-भिन्न नामों द्वारा भिन्न-भिन्न लोग पुकारते हैं। कोई कहता है गॉड, कोई कहता है अल्लाह, कोई कहता है कृष्ण, कोई कहता है शिव, कोई कहता है ब्रह्म। जैसे तालाब में जल है— एक घाट के लोग कहते हैं जल, और एक घाट के लोग कहते हैं वाटर, और एक घाट के लोग कहते हैं पानी। हिन्दू कहते हैं जल, क्रिश्चियन कहते हैं वाटर, मुसलमान कहते हैं पानी— किन्तु वस्तु एक। मत-पथ। एक-एक धर्म का मत एक-एक पथ है, जो ईश्वर की ओर ले जाता है— जैसे नदियाँ नाना ओर से आकर सागर-संगम में मिलित हो जाती हैं।

"वेद-पुराण-तन्त्र में प्रतिपाद्य एक ही सच्चिदानन्द है।

"वेद में सच्चिदानन्द (ब्रह्म)। पुराण में सच्चिदानन्द (कृष्ण, राम आदि)। तन्त्र में सच्चिदानन्द (शिव)। सच्चिदानन्द ब्रह्म, सच्चिदानन्द कृष्ण, सच्चिदानन्द शिव।"

सब चुप हैं।

वैष्णव भक्त— महाशय, ईश्वर का चिन्तन ही क्यों करूँ?

(वैष्णव को शिक्षा— जीवन्मुक्त कौन? उत्तम भक्त कौन? ईश्वर-दर्शन के लक्षण)

श्रीरामकृष्ण— ऐसा बोध यदि रहे तब तो वह जीवन्मुक्त है। किन्तु सबको ऐसा विश्वास नहीं होता, केवल मुख से कहता है— 'ईश्वर हैं, उनकी इच्छा से समस्त हो रहा है।' विषयीगण सुन तो रखते हैं, विश्वास नहीं करते।

"विषयियों का ईश्वर कैसा है, जानते हो? चाची-ताई के झगड़े सुनकर बच्चे जैसे झगड़ा करते हुए कहते हैं, मेरे ईश्वर हैं।

"सब ही क्या उनको धारण कर सकते हैं? उन्होंने भले लोग बनाए हैं, बुरे लोग बनाए हैं; भक्त बनाए हैं, अभक्त बनाए हैं; विश्वासी बनाए हैं, अविश्वासी बनाए हैं। उनकी लीला में सब विचित्रता है। उनकी शक्ति का कहीं पर अधिक प्रकाश है, कहीं पर कम प्रकाश है। सूर्य का प्रकाश मिट्टी

की अपेक्षा जल में अधिक पड़ता है, और फिर जल की अपेक्षा दर्पण में और अधिक प्रकाश पड़ता है।

"और फिर भक्तों की श्रेणियाँ हैं— उत्तम भक्त, मध्यम भक्त, अधम भक्त। गीता में यह सब है।"

वैष्णव— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— अधम भक्त कहता है, ईश्वर है— वहाँ आकाश के भीतर बहुत दूर है। मध्यम भक्त कहता है, ईश्वर हैं सर्वभूत में चैतन्यरूप में— प्राणरूप में। उत्तम भक्त कहता है ईश्वर ही स्वयं सब कुछ बने हुए हैं, जो कुछ देख रहा हूँ वह ईश्वर का ही एक रूप है। वे ही माया, जीव, जगत— ये सब कुछ बने हुए हैं, उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

वैष्णव भक्त— ऐसी अवस्था क्या किसी की होती है?

श्रीरामकृष्ण— उनका दर्शन बिना किए ऐसी अवस्था नहीं होती। किन्तु दर्शन किए हैं या नहीं, उसका लक्षण है। कभी वह उन्मादवत् हँसता, रोता, नाचता, गाता है। अथवा कभी बालकवत्— पाँच वर्ष के बालक की अवस्था हो जाती है— सरल, उदार, अहंकार नहीं, किसी वस्तु पर आसक्ति नहीं, किसी गुण के वश में नहीं। सदा आनन्दमय! कभी पिशाचवत्— शुचि-अशुचि भेद-बुद्धि नहीं रहती, आचार-अनाचार एक हो जाते हैं। अथवा कभी जड़वत्— मानो कुछ देख लिया है। जभी किसी प्रकार का कर्म नहीं कर सकता, किसी प्रकार की चेष्टा नहीं कर सकता।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण क्या अपनी समस्त अवस्थाएँ इंगित कर रहे हैं?

श्रीरामकृष्ण *(वैष्णव भक्त के प्रति)*— 'तुम और तुम्हारा'— यह है ज्ञान। 'मैं और मेरा'— यह है अज्ञान।

"हे ईश्वर, तुम कर्त्ता हो और मैं अकर्त्ता हूँ— यह ज्ञान है। हे ईश्वर, समस्त तुम्हारा है। देह, मन, गृह, परिवार, जीव, जगत— यह सब तुम्हारा है, मेरा कुछ नहीं— इसी का ही नाम है ज्ञान।

"जो अज्ञानी है वह कहता है, ईश्वर 'वहाँ हैं, वहाँ'— बहुत दूर। जो

ज्ञानी है वह जानता है ईश्वर 'यहाँ हैं, यहाँ'— अति निकट, हृदय के बीच अन्तर्यामी रूप में, और फिर (उन्होंने ही) अपने–आप एक–एक रूप धारण किया हुआ है।''

पञ्चम खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

मणिमोहन को शिक्षा— ब्रह्मदर्शन के लक्षण— ध्यान-योग

ठाकुर श्रीरामकृष्ण छोटी खाट पर बैठे हुए मसहरी के भीतर ध्यान कर रहे हैं। रात के 7-8 बजे होंगे। मास्टर धरती पर बैठे हुए हैं और उनके एक बन्धु हरिबाबू हैं। आज है सोमवार, 20 अगस्त, 1883 ईसवी। श्रावण की कृष्णा द्वितीया तिथि।

आजकल यहाँ पर हाजरा रहते हैं। राखाल प्रायः ही रहते हैं, कभी-कभी अधर के घर जाकर रहते हैं। नरेन्द्र, भवनाथ, अधर, बलराम, राम, मनोमोहन, मास्टर प्रभृति प्रायः प्रति सप्ताह ही आकर रहते हैं।

हृदय ने ठाकुर की खूब सेवा की थी। गाँव में उनका असुख सुनकर ठाकुर बड़े ही चिन्तित हैं। जभी एक भक्त ने श्रीयुक्त राम चैटर्जी के हाथ में आज दस रुपये। हृदय को भेजने के लिए दिए हैं। देते समय ठाकुर वहाँ पर उपस्थित नहीं थे। वे भक्त एक चुमकी घटि (गिलास, tumbler) लाए हैं,— ठाकुर ने कहा था 'यहाँ के लिए एक चुमकी घटि ले आओगे, भक्त लोग जल पिएँगे।'

मास्टर के मित्र हरिबाबू को प्रायः ग्यारह वर्ष हुए पत्नी-वियोग हुआ है। और विवाह नहीं किया। माँ, बाप, भाई, भगिनी सब हैं। उनके ऊपर स्नेह-ममता खूब है और उनकी सेवा करते हैं। आयु 28-29। भक्तों के आकर बैठ जाने पर ठाकुर मसहरी के बाहर हो गए। मास्टर

प्रभृति सभी ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर की मसहरी हटा दी गई। वे छोटी खाट पर बैठे हैं और बातें कर रहे हैं—

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— मसहरी के भीतर ध्यान कर रहा था। सोचा, केवल एक ही रूप की कल्पना ही तो वे नहीं हैं, जभी अच्छा नहीं लगा। वे दप करके दिखला दें तो होता है। और फिर सोचा कि कौन ध्यान करता है, किसका ध्यान करता हूँ।

मास्टर— जी हाँ। आपने कहा था कि वे ही जीव-जगत इत्यादि सब बने हुए हैं— जो ध्यान करता है, वह भी वे हैं।

श्रीरामकृष्ण— और वे न करवाएँ तो फिर नहीं होगा। वे ध्यान करवाएँ तो ही ध्यान होगा। तुम क्या कहते हो?

मास्टर— जी, आप के भीतर 'आमि' (मैं) नहीं है तभी ऐसा होता है। जहाँ पर 'मैं' नहीं है वहाँ पर ऐसी अवस्था होती है।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु 'मैं दास, सेवक' इतना-सा रहना अच्छा है। जहाँ पर 'मैं सब काम कर रहा हूँ' बोध होता है, वहाँ 'मैं दास, तुम प्रभु'— यह भाव खूब अच्छा है। सब ही किया जाता है, सेव्य-सेवक भाव रहना ही ठीक है।

'परब्रह्म क्या है' मणिमोहन सर्वदा इसी का चिन्तन कर रहे हैं। ठाकुर उसको लक्ष्य करके फिर कहते हैं—

श्रीरामकृष्ण— ब्रह्म है आकाशवत्। ब्रह्म के भीतर विकार नहीं है। जैसे अग्नि का कोई रंग नहीं है। किन्तु शक्ति से वे नाना रूप बन गए हैं। सत्त्व, रज, तम— ये तीनों गुण ही शक्ति के गुण हैं। आग में यदि सफेद रंग डाल दें तो सफेद दिखेगी। यदि लाल रंग डाल दो तो लाल दिखलाई देगी। यदि काला रंग डालें तो आग काली दिखलाई देगी। ब्रह्म— सत्त्व-रज-तम, तीनों गुणों के अतीत हैं। 'वे क्या हैं', मुख से नहीं कहा जाता। वे वाक्य के अतीत हैं। 'नेति-नेति' करते-करते जो बाकी रह जाता है और जहाँ आनन्द है, वही है ब्रह्म।

''एक कन्या के स्वामी आए हैं। दूसरे समवयस्क छोकरों के साथ बाहर के कमरे में बैठे हैं। इधर वह कन्या और उसकी समवयस्का सखियाँ जंगले में

से देख रही हैं। वे वर को पहचानती नहीं, वे कन्या से पूछती हैं— वही हैं क्या तुम्हारे वर? तब वह कुछ हँसकर कहती है, ना। दूसरे एक जन को दिखाकर कहती हैं— वही हैं क्या तुम्हारे वर? वह फिर कहती है— ना। अन्त में उसके स्वामी को लक्ष्य करके जिज्ञासा की— वही तुम्हारे वर? तब वह 'हाँ' भी नहीं बोली, 'ना' भी नहीं बोली, केवल 'फिक्' करके हँसकर चुप किए रही। तब समवयस्काओं ने समझा कि वही हैं उसके स्वामी। जहाँ ठीक ब्रह्मज्ञान है, वहाँ सब चुप।''

(सत्संग— गृही का कर्त्तव्य)

(मणि के प्रति)— ''अच्छा, मैं क्यों बोलता हूँ?''

मणि— आप जैसे कहते हैं, उबलते घी में यदि फिर कच्ची पूरी पड़ती है तो वह फिर छैं-छैं करके कल-कल करता है। भक्तों को चैतन्य होने के लिए आप बातें करते हैं।

ठाकुर मास्टर के साथ हाजरा महाराज की बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— सन्त-सज्जन का कैसा स्वभाव होता है, जानते हो? वह किसी को भी कष्ट नहीं देता, परेशान नहीं करता। निमन्त्रण पर जाता है। किसी-किसी का ऐसा स्वभाव होता है कि शायद कह देता है— मैं अलग बैठूँगा। ईश्वर पर सच्ची भक्ति रहने से पाँव बेताल नहीं पड़ता— किसी को मिथ्या कष्ट नहीं देता।

''फिर असज्जन का संग अच्छा नहीं। उनसे कुछ दूर रहना चाहिए। अपने को बचाकर चलना चाहिए। *(मणि के प्रति)* तुम क्या कहते हो?''

मणि— जी, असज्जन के संग मन बड़ा नीचे गिर जाता है। किन्तु आपने कहा था कि वीर की बात अलग है।

श्रीरामकृष्ण— कैसे?

मणि— कम आग में थोड़ी-सी लकड़ी सरका देने पर आग बुझ जाती है। आग जब धूँ-धूँ करके जल रही हो तब केले का पेड़ फेंक देने पर भी कुछ

नहीं होता। केले का वृक्ष जलकर भस्म हो जाता है।

ठाकुर मास्टर के मित्र हरिबाबू की बात पूछते हैं।

मास्टर— ये आप का दर्शन करने आए हैं। इनकी पत्नी बहुत दिन हुए चल बसी हैं।

श्रीरामकृष्ण— तुम क्या करते हो जी?

मास्टर— एक प्रकार से कुछ नहीं करते। किन्तु घर में भाई-बहन, बाप-माँ हैं। उनकी खूब सेवा करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— यह क्या? तुम तो 'कुमड़ोकाटा बड़े ठाकुर' (कद्दू काटने वाले ताऊजी) हो गए। तुम न संसारी, न हरिभक्त। यह ठीक नहीं। किसी-किसी घर में एक पुरुष रहता है— लड़के-लड़कियाँ लेकर रात-दिन रहता है, और बाहर के कमरे में बैठा गुड़-गुड़ करके हुक्का पीता रहता है। निष्कर्म बैठा रहता है। किन्तु अन्दर घर में जाकर कभी-कभी कद्दू काट देता है। औरतें कद्दू नहीं काटतीं, इसलिए लड़कों द्वारा बुलवा लेती हैं कि बड़े ताऊजी को बुला ला। वे कद्दू के दो टुकड़े कर देंगे। तब वह कद्दू के दो टुकड़े कर देता है, उस पुरुष का बस इतना ही काम है। जभी तो नाम ही हो गया है 'कद्दू काटने वाले ताऊजी'।

"तुम यह भी करो— वह भी करो। ईश्वर के पादपद्मों में मन रखकर संसार का कार्य करो। और जब अकेले रहो तो भक्ति-शास्त्र पढ़ो— 'श्रीमद्भागवत' या 'चैतन्य-चरितामृत' इत्यादि।"

रात के प्राय: दस बज गए हैं। अभी भी श्री काली-मन्दिर बन्द नहीं हुआ। मास्टर ने बड़े आँगन में से राय चैटर्जी महाशय के संग बातें करते-करते जाकर पहले श्री राधाकान्त के मन्दिर में, फिर माँ काली के मन्दिर में प्रणाम किया। चाँद उदित हुआ, श्रावण की कृष्णा द्वितीया— प्रांगण, मन्दिर-शीर्ष, अति सुन्दर दिखाई दे रहा है।

ठाकुर के कमरे में लौट कर मास्टर ने देखा— ठाकुर खाने के लिए बैठ रहे हैं। दक्षिणास्य बैठे। आहार में थोड़ी-सी सूजी का पायस और

दो-एक पूरियाँ हैं। कुछ देर बाद मास्टर और उनके मित्र ने ठाकुर को प्रणाम करके विदा ली। आज ही कलकत्ता लौटेंगे।

द्वितीय परिच्छेद

(गुरु-शिष्य-संवाद— गुह्य कथा)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण अपने उसी पूर्वपरिचित कक्ष में छोटी खाट पर बैठे मणि के साथ अकेले में बातें कर रहे हैं। मणि फर्श पर बैठे हैं। आज शुक्रवार, 7 सितम्बर, 1883 ईसवी, भ्राद्र शुक्ल षष्ठी तिथि, रात के लगभग साढ़े सात बजे हैं।

श्रीरामकृष्ण— उस दिन कलकत्ता गया था। गाड़ी में जाते-जाते देखा, जीव सब निम्नदृष्टि! सब को ही पेट की चिन्ता! सब पेट के लिए दौड़ रहे हैं! सबका ही मन है कामिनी-काञ्चन में! किन्तु दो-एक को देखा ऊर्ध्वदृष्टि— ईश्वर की ओर मन है।

मणि— आजकल पेट की चिन्ता और बढ़ा रहे हैं। अंग्रेज़ों का अनुकरण करने से लोगों का विलास की ओर और भी मन हो गया है। जभी अभाव बढ़ गया है।

श्रीरामकृष्ण— उनका ईश्वर के सम्बन्ध में क्या मत है ?

मणि— वे निराकारवादी हैं।

[पूर्वकथा— श्रीरामकृष्ण का ब्रह्मज्ञान की अवस्था में अभेददर्शन— अंग्रेज़, हिन्दु, अन्त्यज जाति (depressed classes) पशु, कीट, विष्ठा, मूत्र— सर्वभूतों में एक चैतन्य-दर्शन]

श्रीरामकृष्ण— हमारे यहाँ पर भी वही मत है।

कुछ काल दोनों जन ही चुप रहे। ठाकुर अब अपने ब्रह्मज्ञान की अवस्था का वर्णन करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— मैंने एक दिन देखा, एक चैतन्य— अभेद। प्रथम दिखाया बहुत से मनुष्य, जीव, जन्तु हैं— उनके भीतर बाबू भी है, अंग्रेज़, मुसलमान, मैं स्वयं, चण्डाल (शव जलाने वाला), कुत्ता, एक लम्बी दाढ़ी वाले मुसलमान के हाथ में एक प्लेट (सानकि) है, उसमें भात है। उसने उसी सानकि का भात सबके मुख में थोड़ा-थोड़ा-सा दिया, मैंने भी तनिक-सा चखा!

"और एक दिन दिखाया— विष्ठा, मूत्र, अन्न, व्यंजन सब प्रकार की खाने की वस्तुएँ— सब पड़ी हैं। हठात् भीतर से एक जीवात्मा ने बाहर निकल कर अग्निशिखा की भाँति सब चख लिया! मानो जिह्वा से लक्-लक् करते हुए सब वस्तुओं का एक बार स्वाद ले लिया— विष्ठा, मूत्र सब चख लिया! दिखाया सब एक— अभेद!"

(पूर्वकथा— पार्षदगण-दर्शन— ठाकुर क्या अवतार?)

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— और फिर एक बार दिखाया कि यहाँ के ये सब भक्त हैं, पार्षद— अपने जन। जयोंहि आरती का शंख, घण्टा बज उठता त्योंहि कोठी की छत के ऊपर चढ़कर व्याकुल होकर चीत्कार करके कहता, 'ओ रे तुम लोग कौन कहाँ पर हो, आओ! तुम लोगों को देखने के लिए मेरा प्राण जा रहा है।'

"अच्छा, मेरे इन सब दर्शन आदि के विषय में तुम्हें कैसा लगता है?"

मणि— आप हो उनके विलास का स्थान! यही समझा हूँ— आप यन्त्र हैं, वे यन्त्री, सब जीवों को मानो उन्होंने कल (मशीन) में डालकर तैयार किया है, किन्तु आप को उन्होंने निज हाथों से गढ़ा है।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, हाजरा कहता है, दर्शन के पश्चात् षड़ैश्वर्य होता है।

मणि— जो शुद्ध भक्ति चाहते हैं, वे ऐश्वर्य देखना नहीं चाहते।

श्रीरामकृष्ण— बोध होता है कि हाजरा और जन्म में दरिद्र था, जभी इतना ऐश्वर्य देखना चाहता है। हाजरा अब और भी कहता है, रसोइये के साथ मैं

क्या बात करूँ! और कहता है, मैं खजान्ची से कहकर तुम्हें वे सब चीजें दिलवा दूँगा! *(मणि का उच्च हास्य)*।

(सहास्य)— ''वह ऐसी ही सब बातें कहता रहता है और मैं चुप किए रहता हूँ।''

(मनुष्य अवतार, भक्त की सहज धारणा होती है— ऐश्वर्य और माधुर्य)

मणि— आपने तो अनेक बार कह दिया है, जो शुद्ध भक्त है वह ऐश्वर्य देखना नहीं चाहता। जो शुद्ध भक्त है, वह ईश्वर का गोपालभाव देखना चाहता है। पहले ईश्वर चुम्बक पत्थर होते हैं और भक्त सूई होता है। अन्त में भक्त ही चुम्बक पत्थर हो जाता है और ईश्वर सूई बन जाते हैं अर्थात् भक्त के निकट ईश्वर छोटे हो जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण— जैसे ठीक सूर्योदय के समय का सूर्य। उस सूर्य को अनायास देख सकता है। चक्षु झुलसते नहीं, वरन् चक्षु की तृप्ति होती है। भक्त के लिए भगवान का नरम भाव हो जाता है, वे ऐश्वर्य-त्याग करके भक्त के पास आते हैं।

दोनों जने फिर चुप रहे।

मणि— ये सब दर्शन, सोचता हूँ, क्यों सत्य नहीं होंगे? यदि ये सब असत्य हैं तब तो यह संसार और भी असत्य है। क्योंकि यन्त्र मन तो एक ही है। वे सब दर्शन शुद्ध मन में हो रहे हैं और संसार की वस्तु इसी मन से दिखाई दे रही है।

श्रीरामकृष्ण— अब देख रहा हूँ, तुम्हें खूब अनित्य-बोध हो गया है! अच्छा बताओ हाजरा कैसा है?

मणि— वह एक प्रकार का व्यक्ति है! *(ठाकुर का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, मेरे संग और कोई मिलता है?

मणि— जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण— किसी परमहंस के संग में?

मणि— जी नहीं। आपकी तुलना नहीं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— 'अचीने गाछ' सुना है?

मणि— जी, नहीं।

श्रीरामकृष्ण— वह एक प्रकार का वृक्ष है, उसको कोई देखकर पहचान नहीं सकता।

मणि— जी, आपको भी पहचाना नहीं जाता। आपको जो जितना समझेगा, वह उतना ही उन्नत होगा!

मणि चुपचाप सोच रहे हैं— ठाकुर ने 'सूर्योदय का सूर्य' और 'अचीने गाछ', ये सब बातें जो कही हैं क्या इसी का नाम है अवतार? क्या इसी का नाम है 'नरलीला'? ठाकुर क्या अवतार हैं? तभी पार्षदों को देखने के लिए व्याकुल होकर कोठी की छत पर खड़े होकर पुकारते थे— "ओ रे तोरा के कोथाय आछिस् आय?" (ओ रे तुम सब कहाँ हो? आओ ना!)

षष्ठ खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में रतन प्रभृति भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण की एक चिन्ता और एक वाणी— ईश्वर-सा चातुरी चातुरी)

श्रीरामकृष्ण श्री कालीबाड़ी के उसी पूर्वपरिचित कक्ष में छोटी खाट पर बैठे हैं। सहास्यवदन! भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं। उनका आहार हो गया है। समय एक-दो का होगा।

आज रविवार, 9 सितम्बर, 1883 ईसवी। भाद्र शुक्ला सप्तमी। कमरे की फर्श पर राखाल, मास्टर, रतन बैठे हुए हैं। श्रीयुक्त रामलाल, श्रीयुक्त राम चैटर्जी, श्रीयुक्त हाजरा बीच-बीच में आते हैं और बैठते हैं। रतन श्रीयुक्त यदुमल्लिक के बाग का प्रबन्ध करते हैं। ठाकुर की भक्ति करते हैं और कभी-कभी आकर दर्शन करते हैं। रतन कहते हैं, यदुमल्लिक के कलकत्ता के घर में नीलकण्ठ की गीतिनाटिका (जात्रा*) होगी।

रतन— आपको चलना होगा। उन्होंने कहलवाया है कि अमुक दिन 'यात्रा' (नाटक)[1] होगी।

श्रीरामकृष्ण— बहुत सुन्दर! मेरी भी जाने की इच्छा है। आहा! कैसा

* जात्रा— स्टेज के बीच में और स्टेज के चारों ओर दर्शक। साँग (स्वाँग) भी शायद इसी तरह होता है।

भक्तिपूर्ण गान नीलकण्ठ का!

एकजन भक्त— जी हाँ!

श्रीरामकृष्ण— गाना गाते-गाते वह चक्षुओं के जल में डूब जाता है। *(रतन के प्रति)* मन में हो रहा है रात में रह जाऊँ!

रतन— वह तो बड़ा अच्छा है।

राम चटर्जी आदि कइयों ने खड़ाऊँ-चोरी की बात पूछी।

रतन— यदु बाबू के घर से देवता की सोने की खड़ाऊँ चोरी हो गई हैं। उसके लिए घर में कोलाहल हो रहा है। थाली चलाई जाएगी। सब बैठे रहेंगे, जिसने ली है उसकी ओर थाली चल जाएगी।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— थाली कैसे चलती है? अपने-आप चलती है?

रतन— ना, हाथ से दबाई हुई होती है।

भक्त— हाथ का कोई एक ऐसा कौशल है— हाथ की चतुराई है।

श्रीरामकृष्ण— जिस चातुरी से भगवान को प्राप्त किया जाता है, वह चातुरी ही चातुरी है— सा चातुरी चातुरी।

द्वितीय परिच्छेद

तान्त्रिक साधन और ठाकुर श्रीरामकृष्ण का सन्तान-भाव

कथावार्त्ता चल रही है। इस समय कुछ बंगाली सज्जनों ने कमरे में आकर ठाकुर को प्रणाम किया और आसन ग्रहण किया। उनमें से एक जन ठाकुर के पूर्वपरिचित हैं। ये तन्त्र-मत से साधन करते हैं— पञ्चमकार-साधन*। ठाकुर हैं अन्तर्यामी, उनका समस्त भाव जान लिया है। उनमें से एक धर्म का नाम करके पापाचरण करते हैं— यह भी सुना हुआ है। उस व्यक्ति ने किसी बड़े मनुष्य के भाई की विधवा के साथ अवैध प्रणय किया है और धर्म का नाम करके उसके साथ पञ्चमकार-साधना करते

---

* पञ्चमकार-साधन=मद्य, माँस, मछली, मुद्रा, मैथुन।

हैं— यह भी सुना हुआ है।

श्रीरामकृष्ण का सन्तान-भाव है। प्रत्येक स्त्री को माँ मानते हैं— वेश्या तक को! और भगवती का एक-एक रूप देखते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अचलानन्द कहाँ पर हैं? कालीकिंकर उस दिन आया था। और एक जन था— क्या सिंगी?

(मास्टर आदि के प्रति) अचलानन्द और उसके शिष्यों का भाव अलग है। मेरा सन्तान-भाव है।

आगन्तुक बाबू लोग चुप हैं, मुख से कोई बात नहीं।

(पूर्वकथा— अचलानन्द की तान्त्रिक साधना)

श्रीरामकृष्ण— मेरा सन्तान-भाव है। अचलानन्द यहाँ पर आकर बीच-बीच में रहा करता था। खूब कारण (मदिरा) पिया करता था। मेरा सन्तान-भाव सुनकर बाद में हठ करके कहने लगा— "स्त्री को लेकर तुम वीर-भाव में साधन क्यों नहीं मानते? शिव की कलम को नहीं मानते? शिव तन्त्र लिख गए हैं। उसमें सब भावों का साधन है— वीर-भाव का भी साधन है।

"मैंने कहा, कौन जाने भाई! वैसा मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मेरा सन्तान-भाव है।"

(पिता का कर्त्तव्य— सिद्धाई और पञ्चमकार की निन्दा)

"अचलानन्द लड़कों-बच्चों की खबर नहीं लेता। मुझ से कहा करता, 'बच्चों को ईश्वर देखेंगे— यह ईश्वर की इच्छा है!' मैं सुनकर चुप रहता। कहता हूँ, बच्चे कौन पालन करेगा? बच्चे-स्त्री त्याग करके शायद रुपया कमाने का एक ढंग कर लिया है। लोग सोचेंगे, इन्होंने सर्वत्याग किया है, फिर बहुत रुपया आ पड़ेगा।

" 'मुकदमा जीतूँगा, खूब रुपया होगा। मुकदमा जितवा दूँगा, विषय दिलवा दूँगा'— इसके लिए साधन करना? यह बड़ी हीनबुद्धि की बात है।

"पैसे से खाना-पीना होता है, रहने को एक स्थान हो जाता है, देव-सेवा होती है, साधु-भक्तों की सेवा होती है, सामने कोई गरीब आ पड़े तो उसका उपकार होता है। रुपये का यह सद्व्यवहार है। ऐश्वर्य-भोग के लिए पैसा नहीं, देह के सुख के लिए पैसा नहीं, लोकमान्य (नाम-यश) के लिए पैसा नहीं।

"सिद्धाई के लिए लोग तन्त्रमत में पंचमकार की साधना करते हैं। किन्तु कैसी हीनबुद्धि! कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, 'भाई! अष्टसिद्धियों में से एक भी सिद्धि होने पर तुम्हारी थोड़ी-सी शक्ति बढ़ सकती है, किन्तु मुझे नहीं पाओगे।' सिद्धाई के रहने पर माया नहीं जाती। माया के रहने पर फिर और अहंकार होता है। कैसी हीनबुद्धि! घृणा के स्थान से तीन टोसा (घूँट) मदिरा पीने से लाभ क्या? या मुकदमा जीतना!"

(दीर्घायु होने के लिए हठयोग का क्या प्रयोजन ?)

"शरीर, रुपया इत्यादि सब अनित्य हैं। इसके लिए, इतना क्यों? हठयोगियों की दशा देखो ना! 'शरीर कैसे दीर्घायु होगा'— इस ओर ही नजर है। ईश्वर की ओर लक्ष्य नहीं। नेति, धौति— केवल पेट साफ करते हैं। नल द्वारा दूध ग्रहण करते हैं!

"एक सुनार था। उसकी जीभ उलट कर तालु पर चिपक गई, तब वह जड़समाधि जैसा हो गया। अब हिलता-जुलता नहीं। बहुत दिन उसी भाव में रहा। सब आकर पूजा करने लगे। कई वर्ष पश्चात् उसकी जीभ हठात् सीधी हो गई। तब पहले की भाँति उसे होश आ गई, और फिर सुनार का काम करने लगा। *(सबका हास्य)*।

"ये सब शरीर के कार्य हैं। उससे प्राय: ईश्वर के संग सम्बन्ध नहीं रहता। शालग्राम के भाई का बंशलोचन का कारोबार था। बयासी प्रकार के आसन जानता था और अपनी योगसमाधि की बातें बताता था! किन्तु भीतर ही भीतर कामिनी-काञ्चन पर मन है। दीवान मदन भट्ट का कितने हजार रुपये का एक नोट पड़ा हुआ था! पैसे के लोभ में वह गप से खा गया, निगल

गया— पीछे किसी प्रकार निकाल लेगा! किन्तु उससे नोट वसूल हो गया। अन्त में तीन वर्ष की जेल हुई। मैं सरल बुद्धि से सोचता था, 'शायद वह आगे बढ़ गया है,— सौगन्ध खाकर कहता हूँ'!''

(पूर्वकथा— महेन्द्रपाल का रुपया लौटाना, भगवती तेलिन, कर्ताभजा मत में औरतों को लेकर साधना की निन्दा)

''यहाँ सींथि का महेन्द्रपाल पाँच रुपये दे गया था— रामलाल के पास। उसके चले जाने पर रामलाल ने मुझसे कहा। मैंने पूछा, 'क्यों दे गया है?' रामलाल बोला, 'यहाँ के लिए दे गया है।' तब मन में अया कि दूध का देना रह गया है। चलो, कुछ उधार उतर जाएगा। ओ माँ, रात को लेटा हुआ था, हठात् उठ बैठा! एकदम छाती के भीतर बिल्ली पंजे मारने लगी! तब जाकर रामलाल से कहा, 'किसको दिए हैं? तेरी चाची को दिए हैं क्या?' रामलाल ने कहा, 'नहीं, आपके लिए दिए हैं।' तब मैं बोला— 'नहीं, अभी ये रुपये लौटा आ, नहीं तो मुझे शान्ति नहीं होगी।' रामलाल भोर में उठकर रुपये वापस दे आया। तो हुआ।

''उस गाँव में कर्ताभजाओं के दल की भगि (भगवती) तेलिन थी। उनकी वहीं औरतों के साथ साधना होती है। एक पुरुष के बिना औरत का साधन-भजन नहीं होता। उस पुरुष को कहते हैं 'रागकृष्ण'। तीन बार पूछता है, 'कृष्ण पा लिया है?' वह स्त्री तीन बार कहती है, 'पा लिया है'!

''भगि शूद्र तेलिन थी। सब जाकर उसके पाँव की धूल लेकर नमस्कार किया करते। तब जमींदार को बड़ा क्रोध आया। मैंने उसे देखा हुआ है। जमींदार ने एक दुष्ट व्यक्ति भेज दिया। उसके पल्ले पड़कर उसके पेट से फिर लड़का हुआ।

''एक दिन एक बड़ा मनुष्य आया था। मुझ से कहा, 'महाशय यह मुकदमा मैं किसी तरह जीत जाऊँ— आप ऐसा कर दें। आपका नाम सुनकर आया हूँ।' मैं बोला, 'भाई, वह मैं नहीं हूँ— तुम्हारी भूल हुई है। वह अचलानन्द है।'

"जिसकी ठीक-ठीक ईश्वर पर भक्ति है, वह शरीर, रुपया इत्यादि ग्रहण नहीं करता। वह विचार करता है कि वह देह-सुख के लिए है या लोकमान्य के लिए है या रुपये के लिए है। और फिर जप-तप क्या है? यह सब अनित्य है, केवल दो-तीन दिन के लिए है।"

आगन्तुक बाबू अब उठे और नमस्कार करके बोले, तो हम चलें। वे चले गए। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ईषत् हास्य कर रहे हैं और मास्टर से कह रहे हैं, 'चौरा ना शुने धर्मेर काहिनी।' (चोर धर्म की कहानी नहीं सुनता) *(सबका हास्य)*।

तृतीय परिच्छेद

(अपने ऊपर श्रद्धा का मूल है ईश्वर पर विश्वास)

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति, सहास्य)*— अच्छा, नरेन्द्र कैसा है!

मणि— जी, खूब भला।

श्रीरामकृष्ण— देख, उसकी जैसी विद्या तैसी बुद्धि! और फिर गाने-बजाने में भी। इधर जितेन्द्रिय है, कहता है, विवाह नहीं करेगा।

मणि— आपने कहा है, जो पाप-पाप सोचता रहता है, वही पापी हो जाता है। फिर उठ नहीं सकता। 'मैं ईश्वर का बेटा'— ऐसा विश्वास रहने से शीघ्र-शीघ्र उन्नति होती है।

(पूर्वकथा— कृष्णकिशोर का विश्वास— हलधारी के पिता का विश्वास)

श्रीरामकृष्ण— हाँ, विश्वास!

"कृष्णकिशोर का कैसा विश्वास! कहता था, 'एक बार उनका नाम किया है, मेरा फिर और पाप क्या? मैं शुद्ध निर्मल हो गया हूँ।' हलधारी ने कहा था, 'अजामिल फिर नारायण की तपस्या के लिए गए थे, तपस्या बिना किए क्या उनकी कृपा मिलती है? केवल एक बार नारायण कहने से क्या

होगा?' वह बात सुनकर कृष्णकिशोर को कैसा जो क्रोध! इस बाग में फूल तोड़ने आया था, हलधारी के मुख की ओर आँख से देखा भी नहीं।

"हलधारी का पिता बड़ा भारी भक्त था। स्नान के समय कमर भर जल में जाकर मन्त्र उच्चारण करता— 'रक्तवर्णम् चतुर्मुखम्' का ध्यान करता तो चक्षुओं से प्रेमाश्रु गिरते।

"एक दिन एँड़ेदा के घाट पर एक साधु आया था। हम देखने जाएँगे— यह बात हुई। हलधारी ने कहा, 'उस पंचभूत के खोल को देखने से क्या होगा?' उसके पश्चात् यह बात कृष्णकिशोर ने सुनकर कहा था, 'क्या! साधु के दर्शन करने से क्या होगा' ऐसी बात कही! जो कृष्ण-नाम लेता है, अथवा राम-नाम लेता है, उसकी चिन्मय देह होती है। और वह सब चिन्मय देखता है— 'चिन्मय श्याम चिन्मय धाम'। कहा था, 'एक बार कृष्ण-नाम या एक बार राम-नाम कर लेने पर सौ बार सन्ध्या करने का फल मिलता है।' उसका एक लड़का जब मरा था, प्राण जाते समय राम-नाम बोला था। कृष्णकिशोर ने कहा था, 'वह 'राम' बोला था, उसकी फिर चिन्ता क्या! किन्तु बीच-बीच में एक-एक बार रोता था। पुत्रशोक!'

"वृन्दावन में प्यास लगी, मोची से कहा, तू बोल 'शिव'! उसने 'शिव' नाम करके जल निकाल दिया। ऐसा आचारी ब्राह्मण! वही जल पी गया। कैसा विश्वास!

"विश्वास तो नहीं है, किन्तु पूजा, जप, सन्ध्यादि कर्म करता है— उससे कुछ भी नहीं होता! क्या कहते हो?"

मणि— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— देखा है, गंगा के घाट पर नहाने आए हैं। सब दुनिया भर की बातें होती हैं! विधवा बुआ कहती है— 'माँ, दुर्गा-पूजा मेरे बिना नहीं होती— देवी-मूर्ति गढ़ने तक! घर में विवाह का काज होने पर सब मुझे करना पड़ता है माँ, तभी होता है— फूल-शय्या*, कत्थे के बाग तक!'

---

* फूल-शय्या= फूलों का बिछौना, विवाह की तीसरी रात को दम्पति के प्रथम शयन के लिए। बंगाल की रीति।

मणि— जी, इन लोगों का फिर दोष भी क्या? क्या लेकर रहें!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— छत के ऊपर पूजा-घर है, नारायण-पूजा हो रही है। पूजा का नैवेद्य, चन्दन घिसना इत्यादि हो रहा है। किन्तु ईश्वर की बात एक भी नहीं। 'क्या राँधना होगा, आज बाजार में कुछ अच्छा नहीं मिला। कल अमुक व्यंजन बढ़िया बना था! वह लड़का मेरा चचेरा भाई लगता है। हाँ रे, तेरा वही काम है ना?— फिर मैं कैसी हूँ! मेरा हरि नहीं है' इत्यादि— ऐसी ही बातें होती हैं।

"देखो तो ज़रा, पूजा-घर में पूजा के समय भी ऐसी ही दुनिया भर की बात-चीत!"

मणि— जी, अधिकांश ऐसा ही है। आप जैसे कहते हैं, ईश्वर पर जिसका अनुराग है, उसे क्या अधिक दिन पूजा-सन्ध्या करनी पड़ती है!

चतुर्थ परिच्छेद

(चिन्मय रूप क्या— ब्रह्म-ज्ञान के बाद विज्ञान— ईश्वर ही वस्तु)

ठाकुर मणि के साथ अकेले बातें कर रहे हैं।

मणि— जी, वे ही यदि सब कुछ बने हुए हैं, तो फिर ऐसे नाना भाव क्यों हैं?

श्रीरामकृष्ण— विष्णुरूप में वे सर्वभूतों में हैं, किन्तु शक्ति विशेष होती है। कहीं विद्याशक्ति, कहीं अविद्याशक्ति; कहीं पर अधिक शक्ति, कहीं पर फिर कम शक्ति। देखते नहीं, मनुष्य के भीतर ठग-जुआरी हैं, और फिर बाघ जैसा भयानक व्यक्ति भी है। मैं कहता हूँ, 'ठग नारायण', 'बाघ नारायण'।

मणि *(सहास्य)*— जी, उन्हें दूर से नमस्कार करना चाहिए। 'बाघ नारायण' को निकट लाकर आलिंगन करने से खा लेगा।

श्रीरामकृष्ण— वे और उनकी शक्ति। ब्रह्म और शक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। नारद रामचन्द्र का स्तव करते-करते बोले, 'हे राम! तुम्हीं शिव, सीता भगवती; तुम्हीं ब्रह्मा, सीता ब्रह्माणी; तुम इन्द्र, सीता इन्द्राणी; तुम्हीं

नारायण, सीता लक्ष्मी। पुरुषवाचक जो कुछ है सब तुम हो, स्त्रीवाचक सब सीता।'

मणि— और चिन्मय रूप?

श्रीरामकृष्ण थोड़ा सोच रहे हैं। धीरे-धीरे कहते हैं,

''किस प्रकार है, जानते हो— जैसे जल का— यह सब साधना करने से जाना जाता है।

''तुम 'रूप' में विश्वास करते हो? ब्रह्मज्ञान हो जाने पर तब अभेद— ब्रह्म और शक्ति अभेद। जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। अग्नि का सोचते ही दाहिका शक्ति सोचनी पड़ती है, और दाहिका शक्ति का सोचते ही अग्नि सोचनी पड़ती है। दूध और दूध का धवलत्व, जल और उसकी हिम शक्ति।

''किन्तु ब्रह्म-ज्ञान के पश्चात् भी है। ज्ञान के बाद विज्ञान। जिसको ज्ञान है, बोध हो गया है, उसको अज्ञान भी है। वसिष्ठ सौ पुत्रों के शोक में कातर हो गए। लक्ष्मण के पूछने पर राम बोले, 'भाई! ज्ञान-अज्ञान के पार हो जाओ। जिसका ज्ञान है, उसका अज्ञान भी है। पैर में यदि काँटा चुभ जाए, तो और एक काँटा संग्रह करके उस काँटे को निकाल देना चाहिए। तत्पश्चात् दूसरा काँटा भी फेंक दिया जाता है।

मणि— अज्ञान-ज्ञान, दोनों को फेंक देना चाहिए?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, इसलिए विज्ञान का प्रयोजन है!

''देखो ना, जिसे प्रकाश-ज्ञान है, उसे अन्धकार-ज्ञान है। जिसे सुख-बोध है, उसे दुख-बोध है; जिसे पुण्य-बोध है, उसे पाप-बोध है; जिसे भला-बोध है, उसे मन्दा-बोध है; जिसे शुचि-बोध है, उसे अशुचि-बोध है; जिसे 'मैं'-बोध है, उसे 'तुम'-बोध भी है।

''विज्ञान— अर्थात् उनको विशेष रूप में जानना। 'काठ में अग्नि है'— इस बोध, इस विश्वास का नाम है ज्ञान। इस आग से भात पकाना, खाना, खाकर हृष्ट-पुष्ट होने का नाम है विज्ञान। 'ईश्वर हैं'— यही है बोधे

बोध। इसका नाम है ज्ञान। उनके साथ आलाप, उनको लेकर आनन्द करना— वात्सल्य-भाव में, सख्य-भाव में, दास-भाव में, मधुर-भाव में— इसी का नाम है विज्ञान। जीव-जगत वे ही बने हैं— यही दर्शन करने का नाम है विज्ञान।

"एक मत में दर्शन नहीं होता— कौन किस का दर्शन करे? आप ही अपने को देखता है। काले पानी में जहाज जाने पर लौटता नहीं— फिर लौट कर खबर देता नहीं।"

मणि— जैसे आप कहते हैं मौन्युमैण्ट के ऊपर चढ़ने पर फिर नीचे की खबर नहीं रहती,— गाड़ी-घोड़ा, मेम-साहेब, बाड़ी, घर, द्वार, दुकान, ऑफिस इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, आजकल काली-मन्दिर में नहीं जाता, कुछ अपराध होगा क्या? नरेन्द्र कहता था, ये अब भी काली-मन्दिर जाते हैं।

मणि— जी, आपकी नूतन-नूतन अवस्था है— आप का फिर अपराध क्या?

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, हृदय के लिए सेन को उन लोगों ने कहा था, 'हृदय को बड़ा असुख है, आप उसके लिए दो धोती, दो कुरते लाना, हम उसके लिए गाँव (शिओड़) भेज देंगे।' सेन लाया था दो रुपये! अच्छा, बताओ न, यह क्या है ज़रा? इतना रुपया है! किन्तु यही देना! बोलो ना!

मणि— जी, जो ईश्वर को जानने के लिए घूमते हैं, वे इस प्रकार नहीं कर सकते;— जिनका ज्ञान-लाभ उद्देश्य है।

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु।

सप्तम खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण का कलकत्ता में निमन्त्रण

प्रथम परिच्छेद

(श्रीयुक्त ईशान मुखोपाध्याय की बाड़ी में शुभागमन)

दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में मंगल आरती का मधुर शब्द सुनाई दे रहा है। उसी के संग प्रभाती राग में रोशनचौकी बज रही है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण उठकर खड़े होकर मधुर स्वर से नाम कर रहे हैं। घर में जितनी भी देवी-देवियों की मूर्तियाँ पट पर चित्रित थीं, एक-एक करके प्रणाम किया। पश्चिम के कमरे के गोल बरामदे में जाकर भागीरथी-दर्शन किया और प्रणाम किया। भक्त कोई-कोई वहाँ हैं। उन्होंने प्रात:कृत्य समापन करके क्रमश: आकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

राखाल ठाकुर के संग अब यहाँ पर हैं। बाबूराम गत रात्रि में आए हैं। मणि ठाकुर के पास आज चौदह दिन से हैं।

आज बृहस्पतिवार है। अग्रहायण कृष्णपक्ष की त्रयोदशी तिथि, 27 दिसम्बर, 1883 ईसवी। आज सुबह-सुबह स्नान आदि करके ठाकुर कलकत्ता जाने का उद्योग (की तैयारी) कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण ने मणि को बुलाकर कहा, "आज ईशान अपने घर आने के लिए कह गया है। बाबूराम जाएगा, तुम भी मेरे संग चलोगे।"

मणि चलने के लिए तैयार होने लगे।

शीतकाल। आठ बजे, नहबत के निकट आकर गाड़ी खड़ी हो गई। ठाकुर को ले जाएगी। चारों ओर पुष्प-वृक्ष, सामने भागीरथी, सब दिशाएँ

प्रसन्न, श्रीरामकृष्ण ने देवताओं के चित्रों के निकट खड़े होकर प्रणाम किया और माँ का नाम करते-करते यात्रा के लिए गाड़ी में बैठ गए। संग में बाबूराम, मणि। उन्होंने ठाकुर के शरीर की बनात, बनात की कानों को ढकने वाली टोपी और मसाले की थैली संग में ले ली है, क्योंकि शीतकाल है। सन्ध्या के समय ठाकुर शरीर पर गरम कपड़ा ओढ़ेंगे।

ठाकुर सहास्यवदन। सारे रास्ते आनन्द करते-करते आ रहे हैं। समय नौ का। गाड़ी कलकत्ता में प्रवेश करके श्यामबाजार होकर क्रमश: मछुआ बाजार के चौराहे पर आ उपस्थित हुई। मणि ईशान की बाड़ी जानते हैं। चौराहे पर गाड़ी का मोड़ फिरा कर ईशान के घर के सामने लाकर खड़ी करने के लिए कहा।

ईशान आत्मीयजनों के साथ सहास्यवदन ठाकुर की सादर अभ्यर्थना करके नीचे के बैठकखाने में ले गए। ठाकुर ने भक्तों के संग आसन ग्रहण किया।

परस्पर कुशल-प्रश्न के पश्चात् ठाकुर ईशान के पुत्र श्रीश के साथ बातें करते हैं। श्रीश एम०ए०, बी०एल० पास करके अलीपुर में वकालत करते हैं। एन्ट्रेन्स और एफ०ए० की परीक्षाओं में यूनिवर्सिटी में फर्स्ट हुए थे अर्थात् परीक्षा में प्रथम स्थान अधिकार किया था। अब उनकी वयस् प्राय: तीस वर्ष होगी। जैसा पाण्डित्य है वैसी ही विनय है, बाहर से देखने में लगता है कि ये कुछ भी नहीं जानते। हाथ जोड़कर श्रीश ने ठाकुर को प्रणाम किया। मणि ने ठाकुर को श्रीश का परिचय दिया और बताया कि ऐसी शान्त प्रकृति का व्यक्ति नहीं देखा।

(कर्म-बन्धन की महौषध और पाप-कर्म— कर्मयोग)

श्रीरामकृष्ण *(श्रीश के प्रति)*— तुम क्या करते हो जी?

श्रीश— जी, मैं अलीपुर में जाता हूँ। वकालत करता हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— ऐसा व्यक्ति भी वकालत करता है! *(श्रीश के प्रति)* अच्छा, तुम्हें कुछ पूछना है?

"संसार में अनासक्त होकर रहना कैसे है?"

श्रीश— किन्तु कार्य करते हुए संसार में कितना अनुचित करना पड़ता है! कोई पाप-कर्म करता है, कोई पुण्य-कर्म। ये सब क्या पूर्व कर्मों का फल है— इसलिए करना ही पड़ेगा?

श्रीरामकृष्ण— कर्म कितने दिन! जितने दिन उनको प्राप्त नहीं किया जाता। उनको प्राप्त करने पर सब हो जाता है। तब पाप-पुण्य के पार हो जाता है।

"फल दिखाई दे जाने पर फूल चला जाता है। फल होने के लिए फूल दिखाई देता है।

"सन्ध्यादि कर्म कितने दिन? जितने दिन ईश्वर का नाम करते हुए रोमाञ्च नहीं होता और आँखों से जल नहीं आता। ये समस्त अवस्थाएँ ईश्वर-लाभ के लक्षण हैं, ईश्वर में शुद्धाभक्ति की प्राप्ति के लक्षण हैं। उनको जान लेने पर पाप-पुण्य के पार हो जाता है।

"प्रसाद बोले भुक्ति मुक्ति उभय माथाय रेखेछि,
आमि काली ब्रह्म जेने मर्म धर्माधर्म सब छेड़ेछि।*

"उनकी ओर जितना बढ़ोगे, उतना ही वे कर्म कम कर देंगे। गृहस्थी की बहू के गर्भवती हो जाने पर सास धीरे-धीरे उसके काम कम कर देती है। जब दसवाँ मास लगता है, तब काम एकदम कम कर देती है। सन्तान हो जाने पर वह उसे ही लेकर हिलाती-डुलाती रहती है, उसी को लेकर आनन्द करती है।"

श्रीश— गृहस्थ में रहते हुए उनकी ओर जाना बड़ा कठिन है।

(गृहस्थ-संसारी को शिक्षा—अभ्यासयोग और निर्जन में साधन)

श्रीरामकृष्ण— क्यों? अभ्यासयोग? उस देश (गाँव) में बढ़इयों की स्त्रियाँ चिड़वा बेचती हैं। वे कितनी ओर सम्भालकर (कितनी तरफ ध्यान रखकर) काम करती हैं, सुनो। ढेंकी का पाट पड़ता है, हाथ से धानों को ठेलती जाती हैं, और एक हाथ से लड़के को गोद में लेकर स्तन पिलाती हैं। और फिर

* प्रसाद कहते हैं मैंने भुक्ति और मुक्ति दोनों को सिर पर रखा हुआ है। मैंने काली और ब्रह्म का मर्म जानकर धर्म-अधर्म सब छोड़ दिया है।

खरीदार आया है, ढेंकी इधर पड़ रही है और खरीदार के साथ बातें भी चलती हैं। खरीदार को कहती है, तो फिर तुम्हारे पास जो कितने पैसे उधार हैं, वे सब पैसे दे जाना, और चीज ले जाना।

"देखो— बच्चे को दूध पिलाना; ढेंकी पड़ रही है, धान ठेलते जाना; चावलों में से पतला चोकर निकलाकर संग्रह करना; और फिर खरीदार से बातें— सब एक साथ करती है। इसी का नाम है अभ्यासयोग। किन्तु उसका पँद्रह आना मन ढेंकी के पाट की ओर रहता है, कहीं हाथ पर न पड़ जाए! और एक आने में लड़के को स्तनपान करवाना और खरीदार के संग बातें करना। वैसे ही जो गृहस्थ (संसार) में हैं, उन्हें पन्द्रह आने मन भगवान में देना उचित है। बिना दिए सर्वनाश— काल के हाथ में पड़ना होगा। और एक आने से अन्य-अन्य कर्म करो।

"ज्ञान के पश्चात् संसार (गृहस्थ) में रहा जाता है। किन्तु पहले ज्ञान प्राप्त करना होगा। संसार-रूपी जल में मन-रूपी दूध रखने से मिल जाएगा। तभी मन-रूपी दूध को दही जमाकर निर्जन में मन्थन करके, माखन निकाल कर, संसार रूपी जल में रखना चाहिए।

"इतना होने पर ही हो जाता है। साधना का प्रयोजन है। प्रथम अवस्था में निर्जन में रहना बड़ा आवश्यक है। अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष जब पौधा होता है तब घेरा देना चाहिए, नहीं तो बकरी, गाय खा लेंगी। किन्तु तना मोटा होने पर घेरा हटा दिया जाता है। यहाँ तक कि हाथी बाँध देने पर भी वृक्ष को कुछ नहीं होता।

"जभी तो प्रथम अवस्था में बीच-बीच में निर्जन में चले जाना चाहिए। साधना का प्रयोजन है। भात खाना है। बैठे-बैठे कहते हो कि लकड़ी में आग है, उसी आग पर भात पकाया जाता है— ऐसा कहने से ही क्या भात तैयार होता है? फिर एक लकड़ी लाकर लकड़ी से लकड़ी रगड़नी चाहिए। तब आग निकलती है।

"भाँग खाने पर नशा हो जाता है, आनन्द आता है। खाए ना, कुछ भी करे ना, बैठे-बैठे कहे 'भाँग-भाँग'। उससे क्या नशा होता है, आनन्द आता है?"

(ईश्वर-लाभ— जीवन का उद्देश्य— परा और अपरा विद्या— दूध पीना)

"हजार लिखना-पढ़ना सीखो, ईश्वर में भक्ति बिना रहे, उनको प्राप्त करने की इच्छा बिना रहे— सब मिथ्या है। कोरा पण्डित, विवेक-वैराग्य नहीं जिसे, उसकी कामिनी-काञ्चन पर नज़र रहती है। गिद्ध बहुत ऊँचे उड़ता है, किन्तु नज़र मरघट पर।

"जिस विद्या को प्राप्त करने से उनको जान लिया जाता है, वही विद्या है, और सब मिथ्या।

"अच्छा, तुम्हारी ईश्वर के विषय में क्या धारणा है ?"

श्रीश— जी, इतना-सा ही बोध हुआ है— एक ज्ञानमय पुरुष हैं, उनकी सृष्टि देखने से उनके ज्ञान का परिचय मिलता है। यही एक बात कहता हूँ— शीतप्रधान देश में मछली तथा अन्य जलजन्तु बचाने के लिए उनका कौशल। जितनी ठण्ड होती है, जल के आयतन (विस्तार) का संकोच हो जाता है। किन्तु आश्चर्य, बरफ बनने से ज़रा पहले जल हल्का हो जाता है और जल का आयतन बढ़ जाता है! तालाब के जल में अनायास ही खूब शीत में मछली रह सकती है। जल के ऊपरी भाग में सारी बरफ बन जाती है किन्तु नीचे जल है, ज्यों का त्यों। यदि खूब ठण्डी हवा बहती है तो वह हवा बरफ के ऊपर लगती है। नीचे का जल गरम रहता है।

श्रीरामकृष्ण— वे हैं, जगत देखकर समझ में आ जाता है। किन्तु उनके विषय में सुनना एक, उनको देखना एक, उनके संग आलाप करना और ही एक है। किसी ने दूध की बात सुनी है, किसी ने दूध-देखा है, किसी ने दूध पीया है। देखने से तो आनन्द होगा, पी लेने पर फिर बल होगा, व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट होगा। भगवान के दर्शन करने पर ही तो शान्ति होगी, उनके संग आलाप करने पर तब ही फिर आनन्द प्राप्त होगा, शक्ति बढ़ेगी।

(मुमुक्षुत्व वा ईश्वर के लिए व्याकुलता— समयसापेक्ष)

श्रीश— उनको पुकारने का समय नहीं मिलता।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वह तो है। समय बिना हुए कुछ नहीं होता। एक

लड़के ने सोने के समय माँ से कहा, माँ मुझे जब टट्टी आवे मुझे उठा दियो। माँ ने कहा, बेटा, टट्टी ही तुम्हें उठा देगी; मुझे उठाना नहीं होगा।

"जिसको जो देना है, उनका सब निश्चित किया हुआ है। कसोरे के माप से सास बहुओं को भात दिया करती थी। उससे भात कुछ कम पड़ता था। एक दिन कसोरा टूट जाने पर बहुएँ खुश हुईं। तब सास ने कहा, 'नाचो-कूदो री बहुओ, मेरे हाथ को तो अटकल (अन्दाज) है'।"

(आम मुखत्यारी वा बकलमा दे दो)

श्रीश के प्रति— क्या करोगे? उनके चरणों में सब समर्पण करो, उनको आम मुखत्यारी दे दो। वे जो भला हो, करें। बड़े व्यक्ति के ऊपर यदि भार दिया जाए तो वह व्यक्ति कभी भी बुरा नहीं करेगा।

"साधना का प्रयोजन तो निश्चय ही है। किन्तु दो प्रकार के साधक हैं। एक प्रकार का साधक बन्दर के बच्चे के स्वभाव का और एक प्रकार का साधक बिल्ली के बच्चे के स्वभाव का होता है। बन्दर का बच्चा निज तो किसी तरह से करके माँ को पकड़े रहता है। उसी प्रकार कोई-कोई साधक सोचता है, इतना जप करना होगा, इतना ध्यान करना होगा, इतनी तपस्या करनी होगी, तभी भगवान प्राप्त होंगे। यह साधक अपनी चेष्टा करके भगवान को पकड़ने जाता है।

"किन्तु बिल्ली का बच्चा स्वयं माँ को नहीं पकड़ सकता। वह पड़ा हुआ केवल मिऊँ-मिऊँ कह कर पुकारता है। माँ जो भी करे। माँ कभी बिस्तर के ऊपर, कभी छत के ऊपर लकड़ी की ओट में रख देती है। माँ उसको मुख में पकड़ कर यहाँ-वहाँ ले जाकर रख देती है, वह माँ को पकड़ना नहीं जानता। उसी प्रकार कोई-कोई साधक स्वयं हिसाब करके कोई साधना नहीं कर सकता, इतना जप करूँगा, इतना ध्यान करूँगा इत्यादि। वह केवल व्याकुल होकर, रो-रोकर उनको पुकारता है। वे उसका क्रन्दन सुनकर फिर ठहर नहीं सकते, आकर दर्शन देते हैं।"

द्वितीय परिच्छेद

समय अधिक हो गया है। गृहस्वामी अन्न–व्यंजन (आहार) तैयार करवाकर ठाकुर को खिलाएँगे। इसलिए बड़े परेशान हैं। वे अन्दर घर में गए हैं और आहार की तैयारी और व्यवस्था कर रहे हैं।

समय हो गया है, तभी ठाकुर घबराए हुए–से हैं। वे कमरे में थोड़ा टहल रहे हैं, किन्तु सहास्यवदन हैं। केशव कीर्त्तनिया के साथ बीच–बीच में बातें कर रहे हैं।

[ईश्वर कर्त्ता— अथच कर्म के लिए जीव का दायित्व (responsibility)]

केशव कीर्त्तनिया— तब तो वे ही 'करण'–'कारण' हैं। दुर्योधन ने कहा था, 'त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि'। (हे हृषीकेश, तुम हृदय में स्थित होकर जैसा मुझे नियुक्त करते हो, मैं वैसा ही करता हूँ।)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, वे सब करवा रहे हैं। वे ही कर्त्ता हैं, मनुष्य यन्त्र के स्वरूप है।

"और फिर यह ठीक है कि कर्म–फल तो है ही। लाल मिर्च खाने से ही पेट में जलन करेगी। उन्होंने ही कह दिया है कि खाने से पेट में जलन करेगी। पाप करने से ही उसका फल पाना पड़ेगा।

"जिस व्यक्ति ने उन्हें प्राप्त कर लिया है, जिसने ईश्वर–दर्शन कर लिया है, वह फिर पाप नहीं कर सकता। जिसका गला सधा हुआ है, उसके स्वर में सा, रे गा, मा ही निकल पड़ता है।"

अन्न प्रस्तुत हो गया। ठाकुर भक्तों के संग भीतर घर में गए और आसन ग्रहण किया। ब्राह्मण के घर में कई प्रकार के व्यञ्जन बने हैं, और नाना प्रकार की उपादेय मिठाइयों का आयोजन हुआ है।

समय तीन का हो गया है। आहार के पश्चात् ठाकुर श्रीरामकृष्ण ईशान की बैठक में आकर बैठ गए हैं। पास श्रीश और मास्टर बैठे हैं। ठाकुर श्रीश के संग में अब फिर बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारा क्या भाव है? 'सोऽहं' या 'सेव्य–सेवक'?

(गृहस्थ का ज्ञानयोग अथवा भक्तियोग)

''संसारी के लिए सेव्य-सेवक भाव खूब भला है। सब किया जाता है, उस अवस्था में 'मैं ही वह हूँ' यह भाव कैसे आ सकता है? जो कहता है, 'मैं ही वही हूँ', उसके लिए तो जगत स्वप्नवत् है, उसकी अपनी देह-मन भी स्वप्नवत् है, उसका 'मैं' तक भी स्वप्नवत् है, इसीलिए तो गृहस्थी का काम वह नहीं कर सकता। जभी सेवक-भाव, दास-भाव खूब अच्छा है।

''हनुमान का दास-भाव था। राम से हनुमान ने कहा था, 'राम! कभी सोचता हूँ, तुम पूर्ण हो, मैं अंश हूँ; तुम प्रभु हो, मैं दास हूँ; और जब तत्त्वज्ञान हो जाता है, तब देखता हूँ, तुम ही मैं हूँ, मैं ही तुम हो।

''तत्त्वज्ञान के समय सोऽहम् हो सकता है, किन्तु वह दूर की बात है।''

श्रीश— जी हाँ, दास-भाव में मनुष्य निश्चिन्त हो जाता है— प्रभु के ऊपर सम्पूर्ण निर्भर। जैसे कुत्ता है बड़ा प्रभु-भक्त, जभी प्रभु के ऊपर निर्भर करके निश्चिन्त रहता है।

(जो साकार वे ही निराकार— नाम-माहात्म्य)

श्रीरामकृष्ण— अच्छा! तुम्हें क्या अच्छा लगता है— साकार अथवा निराकार? बात क्या है, जानते हो? जो निराकार हैं, वे ही साकार हैं। भक्त की दृष्टि में वे साकार रूप में दर्शन देते हैं। जैसे अनन्त जल-राशि। महासमुद्र— कूल-किनारा नहीं। उसी जल के किसी-किसी स्थान पर बरफ जमी हुई है— अधिक ठण्ड में बरफ बन जाती है। ठीक उसी प्रकार भक्ति-हिम में साकार रूप दर्शन होते हैं। और फिर जैसे सूर्य उदय होने पर बरफ गल जाती है— फिर जैसा का तैसा जल। ठीक उसी प्रकार ज्ञान-पथ, विचार-पथ द्वारा जाने पर साकार रूप फिर नहीं दिखाई देता। और फिर सब निराकार। ज्ञान-सूर्य उदय होने पर साकार बरफ गल गई।

''किन्तु देखो, जिसका निराकार, उसका ही है साकार।''

सन्ध्या हुई, ठाकुर उठे। अब दक्षिणेश्वर लौटेंगे। बैठक के दक्षिण में जो

खुला चबूतरा है, उसके ऊपर ही खड़े होकर ठाकुर ईशान के साथ बातें करते हैं। यहाँ पर ही कोई कह रहे हैं कि

भगवान का नाम लेने से ही जो सर्वदा फल होगा, ऐसा तो नहीं दिखाई देता।

ईशान कहते हैं,

यह कैसी बात! अश्वत्थ का बीज इतना नन्हा तो चाहे है, किन्तु उसके भीतर बड़े से बड़ा वृक्ष है! वह वृक्ष देर में दिखाई देता है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ-हाँ, देर में फल होता है।

(ईशान निर्लिप्त संसारी— परमहंस-अवस्था)

ईशान का घर ईशान के श्वसुर श्री क्षेत्रनाथ चाटुर्ज्ये (चैटर्जी) के घर के पूर्व में है। दोनों घरों के मध्य आने-जाने का पथ है। चैटर्जी महाशय के घर के फाटक पर ठाकुर आकर खड़े हो गए। ईशान सबान्धव ठाकुर को गाड़ी पर बिठाने के लिए आ गए हैं।

ठाकुर ईशान से कहते हैं,

''तुम जो संसार में हो, ठीक पांकाल मछली की भाँति हो। तालाब के कीचड़ (पंक) में वह रहती है, किन्तु शरीर पर कीचड़ नहीं लगता।

''इस माया के संसार में विद्या-अविद्या दोनों ही हैं। परमहंस किसे कहता हूँ? जो हंस की भाँति दूध में जल मिला रहने पर भी जल को छोड़कर दूध ही दूध ले सकता है, चींटी की तरह चीनी और रेत एक साथ मिले रहने पर भी रेत छोड़कर चीनी-चीनी ग्रहण कर सकता है।''

तृतीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण का धर्म-समन्वय— ईश्वरकोटि का अपराध नहीं होता)

सन्ध्या हो गई है। भक्त श्रीयुक्त रामचन्द्र दत्त के घर में ठाकुर आए हैं। यहाँ से होकर तब दक्षिणेश्वर जाएँगे।

राम के बैठकखाने को आलोकित करते हुए ठाकुर भक्तों के संग में बैठे हैं। श्रीयुक्त महेन्द्र गोस्वामी के संग बातें कर रहे हैं। गोस्वामी की बाड़ी उसी मुहल्ले में है। ठाकुर उन्हें प्यार करते हैं। जब वे राम के घर आते हैं तो गोस्वामी आकर प्राय: ही उनसे मिलते हैं।

श्रीरामकृष्ण— वैष्णव, शाक्त सब के ही पहुँचने का स्थान एक है; किन्तु पथ अलग हैं। ठीक-ठीक वैष्णव शक्ति की निन्दा नहीं करते।

गोस्वामी *(सहास्य)*— हर-पार्वती हमारे बाप-माँ हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— थैंक यू, (Thank you), 'बाप-माँ'।

गोस्वामी— इसके अतिरिक्त किसी की निन्दा करना, विशेषत: वैष्णव द्वारा निन्दा करने से अपराध होता है— वैष्णवापराध। सब अपराधों की क्षमा है, वैष्णवापराध की माफी नहीं।

श्रीरामकृष्ण— अपराध सब का नहीं होता। ईश्वरकोटि का अपराध नहीं होता। जैसे चैतन्यदेव की भाँति अवतार का।

''लड़का यदि बाप को पकड़कर मेंढ़ के ऊपर चलता है, तो हो सकता है पोखरे में गिर जाए। किन्तु बाप यदि बेटे का हाथ पकड़ ले, तो वह लड़का कभी भी गिर नहीं सकता।

''सुनो, मैंने माँ से शुद्धा भक्ति माँगी थी। माँ से कहा था,
''यह लो अपना धर्म, यह लो अपना अधर्म; मुझे शुद्धा भक्ति दो। ''यह लो अपनी शुचि, यह लो अपनी अशुचि; मुझे शुद्धा भक्ति दो।
''यह लो अपना पाप, यह लो अपना पुण्य; मुझे शुद्धा भक्ति दो''

गोस्वामी— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— सब मतों को नमस्कार करोगे। किन्तु एक है **निष्ठाभक्ति**। सब को प्रणाम तो करो चाहे, किन्तु विशेष एक के ऊपर प्राण देकर प्यार करने का नाम है निष्ठा।

''राम-रूप के अतिरिक्त हनुमान को कोई और रूप अच्छा नहीं लगता था।

''गोपियों की इतनी निष्ठा थी कि उन्होंने द्वारका के पगड़ी-बाँधे कृष्ण

को देखना भी नहीं चाहा।

"पत्नी देवर–जेठ इत्यादि की पाँव धोने के जल, आसन आदि द्वारा सेवा करती है, किन्तु पति की जिस प्रकार से सेवा करती है, वैसी सेवा और किसी की भी नहीं करती। पति के साथ में सम्बन्ध अलग है।"

राम ने कुछ मिठाई आदि द्वारा ठाकुर की पूजा की।

ठाकुर अब दक्षिणेश्वर जाएँगे। मणि से बनात (शॉल) और टोपी लेकर पहन ली। बनात की कान ढकने वाली टोपी है। ठाकुर भक्तों के संग गाड़ी पर बैठ रहे हैं। राम आदि भक्तगण उन्हें बिठा रहे हैं। मणि भी गाड़ी में चढ़ गए, दक्षिणेश्वर लौट रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द
(12-1-1863 — 4-7-1902)

अष्टम खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर-मन्दिर में नरेन्द्रादि भक्तों के संग में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण काली-मन्दिर के उसी पूर्वपरिचित कमरे में छोटी खाट पर बैठे गाना सुन रहे हैं। ब्राह्मसमाज के श्रीयुक्त त्रैलोक्य सान्याल गाना गा रहे हैं।

आज रविवार, 20वाँ फाल्गुन; शुक्ला पञ्चमी तिथि। 1290 (बं० साल); 2 मार्च, 1884 ईसवी। फर्श पर भक्तगण बैठे हैं और गाना सुन रहे हैं। नरेन्द्र, सुरेन्द्र (मित्र), मास्टर, त्रैलोक्य आदि अनेक बैठे हैं।

श्रीयुक्त नरेन्द्र के पिता बड़ी अदालत में वकील थे। उनके परलोक-गमन से परिवार-वर्ग के लोग बड़े ही कष्ट में पड़ गए हैं। यहाँ तक कि बीच-बीच में खाने को भी कुछ नहीं रहता। नरेन्द्र इन समस्त चिन्ताओं से अति कष्ट में हैं।

ठाकुर का शरीर, हाथ टूटने की अवधि से अभी तक भी ठीक नहीं हुआ। हाथ को अनेक दिन बड़े यत्न से रखा गया।

त्रैलोक्य माँ का गाना गा रहे हैं। गाने में कह रहे हैं, माँ अपने अंक में लेकर आँचल से ढक कर मुझे छाती से लगाकर रखो—

तोर कोले लुकाये थाकि (मा)।
चेये चेये मुखपाने मा मा मा बोले डाकि।
डूबे चिदानन्दरसे, महायोग निद्रावशे,

देखि रूप अनिमेषे, नयने नयने राखि।
देखेशुने भय कोरे प्राण कैंदे उठे डरे,
राखो आमाय बुके धरे, स्नेहे अञ्चले ढाकि (मा)।

[भावार्थ— आपके अंक में छिपा रहूँ। आपके मुख को देखता-देखता 'माँ-माँ-माँ' कह उठूँ। महायोग में, निद्रा के आवेश में चिदानन्द-रस में डूब कर अपलक तुम्हारा रूप देखकर नयनों में रख लूँ। (यह जगत) देख-सुनकर डर लग रहा है। प्राण डर से रो उठता है। आप मुझे छाती से लगाकर आँचल से ढक कर रखो माँ।]

ठाकुर सुनते-सुनते प्रेमाश्रु-विसर्जन कर रहे हैं और कह रहे हैं, 'आहा! कैसा भाव!'

त्रैलोक्य फिर और गा रहे हैं—

(लोफा)

लज्जा निवारण हरि आमार।
(देखो देखो हे— जेन-मनोवाञ्छा पूर्ण होय)।
भकतेर मान, ओहे भगवान, तुमि बिना के राखिबे आर।
तुमि प्राणपति प्राणाधार, आमि चिरक्रीत दास तोमार।
(देखो देखो देखो हे)।

[भावार्थ— हे हरि, आप मेरी लज्जा-निवारक हैं। देखो-देखो-देखो हे— जैसे मेरी इच्छा पूर्ण हो! हे भगवान! भक्त का मान आपके बिना और कौन रखेगा? आप प्राणपति, प्राणाधार हो। मैं आपका चिरक्रीत (सदा के लिए खरीदा हुआ) दास हूँ।]

(बड़ा दशकशी)

तुया पद सार करि, जाति कुल परिहरि, लाज भये दिनु जलाञ्जलि
(एखन कोथा बा जाइ हे पथेर पथिक होये)
आब हाम तोर लागि, होइनु कलंकभागी,
गंजे लोके कतो मन्द बोलि। (कतो निन्दा कोरे हे,)
(तोमाय भालोबासि बोले) (घरे परे गंजना हे)
सरम भरम मोर, अबहिं सकल तोर,

राखो बा ना राखो तब दाय
(दासेर माने तोमारि मान हरि),
तुमि हे हृदय-स्वामी, तब माने मानी आमि,
करो नाथ जेँऊ तुहे भाय।

[भावार्थ— तुम्हारे चरणों का सार कर लिया है (आश्रय ले लिया है)। जाति, कुल को छोड़कर लज्जा-भय को जलाञ्जलि दे दी है। (अब हे प्रभु! तुम ही बताओ कि रास्ते का पथिक होकर मैं कहाँ जाऊँ?) अब मैं तेरे लिए कलंक का भागी हो गया हूँ। जगत में मुझे सब कितना बुरा कहते हैं (कितनी निन्दा करते हैं)! (तुम्हें प्यार करता हूँ, इस कारण घर में खूब भला-बुरा सुनना पड़ता है।) शर्म-भ्रम मेरा अब सब तुम्हारा है। रखो या न रखो— सब तुम्हारा दायित्व है। (दास का मान तुम्हारा ही मान है, हे हरि!) तुम ही मेरे हृदय-स्वामी हो, तुम्हारे मान में ही मेरा मान है। हे नाथ! तुम्हें जो अच्छा लगे, वही करो।]

(छोटा दशकशी)

घरेर बाहर करि, मजाइले यदि हरि,
देओ तबे श्रीचरणे स्थान,
(चिर दिनेर मत) अनुदिन प्रेममधु, पियाओ पराण बन्धु,
प्रेमदासे करो परित्राण।

[भावार्थ— घर से बाहर निकाल कर, यदि आपने मोहित कर लिया है तो हे हरि, अपने चरणों में स्थान दे दो। (सर्वदा की भाँति) रात-दिन लगातार प्रेम-मधु पिलाओ। हे प्राण-बन्धु, प्रेमदास का परित्राण करो।]

ठाकुर फिर प्रेमाश्रु-विसर्जन करते-करते फर्श पर आकर बैठ गए और रामप्रसाद के भाव में गाने लगे—

यश अपयश कुरस सुरस सकल रस तोमारि।
(ओ मा) रसे थेके रसभंग केनो रसेश्वरी॥

[भावार्थ— यश-अपयश, कुरस-सुरस— सब रस तुम्हारे ही हैं। (ओ माता), रस में रह कर रस-भंग क्यों कर रही हो, हे रसेश्वरी?]

ठाकुर त्रैलोक्य से कहते हैं,

'आहा! तुम्हारा कैसा गाना! तुम्हारा गाना ठीक-ठीक है! जो समुद्र में गया

था, वही समुद्र का जल लाकर दिखा सकता है!'

त्रैलोक्य फिर गाना गाते हैं—

(हरि) आपनि नाचो, आपनि गाओ,
आपनि बाजाओ ताले ताले,
मानुष त' साक्षी गोपाल मिछे आमार आमार बोले।
छाया बाजीर पुतुल जेमन, जीवेर जीवन तेमन,
देवता होते पारे, यदि तोमार पथे चले।
देह यन्त्रे तुमि यन्त्री, आत्मरथे तुमि रथी,
जीव केवल पापेर भागी, निज स्वाधीनतार फले।
सर्वमूलाधार तुमि, प्राणेर प्राण हृदय-स्वामी,
असाधुके साधु करो, तुमि निज पुण्यबले।

[भावार्थ— (हरि) आप स्वयं नाचते हो, आप स्वयं गाते हो, आप स्वयं ताल पर ताल देते हो। मनुष्य तो केवल साक्षी गोपालवत् झूठ ही मेरा-मेरा कहता रहता है। जीव का जीवन तो ऐसा है, जैसे जादूगर की पुतली की छाया। यदि वह तुम्हारे पथ पर चले तो देवता हो सकता है। देह-यन्त्र में तुम्हीं यन्त्री हो, आत्म-रथ में तुम्हीं रथी हो। जीव अपनी स्वाधीनता के फल से केवल पाप का ही भागी है। सब का मूल आधार, प्राण का प्राण, हृदय-स्वामी तुम हो, तुम अपने पुण्यबल से असाधु को भी साधु बना देते हो।]

(The Absolute identical with the phenomenal world— नित्यलीला-योग— पूर्णज्ञान या विज्ञान)

गाना समाप्त हो गया। ठाकुर अब बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य और अन्य भक्तों के प्रति)*— हरि ही सेव्य हैं, हरि ही सेवक है— यही भाव पूर्ण ज्ञान का लक्षण है। पहले नेति-नेति करके 'हरि ही सत्य हैं और सब मिथ्या है', ऐसा बोध होता है। तत्पश्चात् वह देखता है कि हरि ही सब कुछ बने हुए हैं— ईश्वर ही माया, जीव, जगत ये सब कुछ बने हैं। अनुलोम होने से फिर विलोम होता है। पुराणों का यही मत है। जैसे एक बेल के भीतर गूदा, बीज और खोल होता है। खोल और बीज फेंक देने पर केवल गूदा मिल जाता है, किन्तु यदि यह जानना हो कि बेल का वजन

कितना है तो खोल-बीज निकाल देने से नहीं चलेगा। जभी जीव-जगत को छोड़ कर पहले सच्चिदानन्द में पहुँचना होता है, तब फिर सच्चिदानन्द को प्राप्त करके देख लेता है कि वे ही यह समस्त जीव-जगत बने हुए हैं। गूदा जिस वस्तु का है, बीज और खोल भी उसी वस्तु से ही हुआ है— जैसे छाछ का मक्खन है और मक्खन की ही छाछ है।

''तब भी कोई कह सकता है, सच्चिदानन्द इतना कठोर कैसे हुआ! इस जगत को दबाएँ तो खूब कठोर लगता है। उसका उत्तर यह है कि शोणित, शुक्र (blood, semen) इतनी तरल वस्तु है, किन्तु उससे इतना बड़ा जीव— मनुष्य तैयार हो जाता है! उनसे सब ही हो सकता है।

''एक बार अखण्ड सच्चिदानन्द पर पहुँच कर तत्पश्चात् नीचे उतर कर यह सब देखना।''

(संसार ईश्वर बिना नहीं— योगी और भक्त का प्रभेद)

''वे ही सब होकर रह रहे हैं। संसार उनके बिना कुछ नहीं है। गुरु से वेद पढ़ कर रामचन्द्र जी को वैराग्य हो गया। वे कहने लगे, संसार यदि स्वप्नवत् है तब तो संसार छोड़ना ही अच्छा है। दशरथ को बड़ा भय हुआ। उन्होंने राम को समझाने के लिए गुरु वशिष्ठ को भेज दिया। वशिष्ठ बोले, 'राम, तुम संसार (गृहस्थ) का त्याग करने के लिए क्यों कहते हो? तुम मुझे समझा दो कि संसार ईश्वर के बिना है? यदि तुम समझा सको कि ईश्वर से संसार नहीं हुआ है तो तुम त्याग कर सकते हो।' राम तब चुप हो गए, कोई उत्तर नहीं दे पाए।

''सब तत्त्व अन्त में आकाश-तत्त्व में लीन होते हैं। और फिर सृष्टि के समय आकाश-तत्त्व से महत्-तत्त्व, महत्-तत्त्व से अहंकार, इसी क्रम से सृष्टि हुई है। अनुलोम, विलोम। भक्त सब को लेता है। भक्त अखण्ड सच्चिदानन्द को भी लेता है, और फिर जीव-जगत को भी लेता है।

''योगी का पथ किन्तु अलग है। वह परमात्मा में पहुँच जाता है और

लौटता नहीं। उसी परमात्मा के संग में योग हो जाता है।

"थोड़े-से के भीतर में जो ईश्वर को देखता है, उसका नाम खण्डज्ञानी है— वह सोचता है कि इसके उस ओर वे नहीं हैं।

"भक्त की तीन श्रेणियाँ हैं—
अधम भक्त कहता है, 'वह ईश्वर है,' अर्थात् आकाश की ओर वह दिखाई देता है।

"मध्यम भक्त कहता है कि वे हृदय के बीच अन्तर्यामी रूप में हैं। और

उत्तम भक्त कहता है, वे सब कुछ बने हुए हैं— जो कुछ देख रहा हूँ सब उनका ही एक-एक रूप है। नरेन्द्र पहले ठट्ठा (मज़ाक) किया करता था, 'वे ही सब बने हैं, तो फिर ईश्वर घटि, ईश्वर बाटी (ईश्वर लोटा, ईश्वर कटोरा।') *(सब का हास्य)*।

(ईश्वर-दर्शन से संशय जाता है— कर्मत्याग होता है— विराट शिव)

"किन्तु उनका दर्शन कर लेने पर सब संशय चले जाते हैं। सुनना एक, देखना एक। सुनने से सोलह आने विश्वास नहीं होता। साक्षात्कार हो जाने पर फिर विश्वास में कुछ बाकी नहीं रह जाता।

"ईश्वर-दर्शन कर लेने पर कर्मत्याग होता है। मेरी उस प्रकार की पूजा चली गई। काली-मन्दिर में पूजा किया करता था। हठात् दिखा दिया, सब चिन्मय— कोषा-कुषि, वेदी, घर की चौखट, सब चिन्मय! मनुष्य, जीव-जन्तु— सब चिन्मय! तब उन्मत्त की न्यायीं चारों ओर पुष्प-वर्षण करने लगा। जो देखता हूँ, उसी की पूजा करता हूँ!

"एक दिन पूजा के समय शिव के मस्तक पर वज्र (त्रिशूल का निशान) लगा रहा था, तब दिखा दिया, वह 'विराट मूर्ति' ही शिव है। तब शिव बनाकर पूजा बन्द हो गई। फूल तोड़ रहा हूँ, हठात् दिखा दिया कि फूलों का एक-एक पेड़ मानो फूलों का एक-एक गुलदस्ता है।"

(काव्य-रस और ईश्वर-दर्शन का प्रभेद— 'न कवितां वा जगदीश')

त्रैलोक्य— आहा, ईश्वर की रचना कितनी सुन्दर है!

श्रीरामकृष्ण— नहीं जी, ठीक दप् करके दिखा दिया, हिसाब करके नहीं। दिखा दिया मानो एक-एक पुष्प-वृक्ष एक-एक तोड़ा (गुलदस्ता) उसी 'विराट मूर्ति' के ऊपर सजा हुआ है। उसी दिन से फूल चुनना बन्द हो गया। मनुष्य को मैं ठीक उसी रूप से देखता हूँ। वे ही जैसे मनुष्य-शरीर लेकर हिलते-डुलते टहल रहे हैं— जैसे तरंग के ऊपर एक तकिया तैर रहा है— तकिया इधर-उधर हिलता, झूमता हुआ चला जा रहा है, किन्तु तरंग लगने से एक बार ऊँचा होता है और फिर लहर के संग में नीचे आ गिरता है।

(ठाकुर का शरीर-धारण क्यों— ठाकुर की साध)

"शरीर दो दिन के लिए है। वे ही सत्य हैं। शरीर अभी है, अभी नहीं। काफी दिन हुए जब पेट की बीमारी से इतना कष्ट भोग रहा था, हृदय ने कहा— 'माँ से एक बार कहो ना, जिससे आराम हो जाए'। रोग के ठीक होने के लिए कहते लज्जा हुई। कहा था, 'माँ सोसायटी (Asiatic Society) में मनुष्य का पिंजर (skeleton) देखा था— तार द्वारा जोड़-जोड़ कर मनुष्य आकृति बना रखी थी, माँ! उसी तरह इस शरीर को ऐसा सख्त (मजबूत) बना दो, जिससे मैं तुम्हारा नाम-गुणकीर्त्तन करूँ'।

"बचने की इच्छा क्यों? रावण-वध के बाद राम-लक्ष्मण ने लंका में प्रवेश किया। रावण के घर में जाकर देखा, रावण की माँ निकषा भागी जा रही है। लक्ष्मण ने आश्चर्य से कहा, राम! निकषा का सारा वंश-नाश हो गया है फिर भी प्राण के ऊपर इतना आकर्षण है! निकषा को पुकार कर राम ने कहा, 'तुम्हें भय नहीं। तुम क्यों भाग रही थीं'? निकषा ने कहा, 'राम! मैं इसलिए नहीं भाग रही थी। बची हुई थी, इसी कारण तुम्हारी इतनी लीला देख पाई हूँ। यदि और भी बची रहूँ तो और भी कितनी लीला देख पाऊँगी! तभी बचने की साध है'।

"वासना न रहे तो शरीर धारण नहीं होता।

(सहास्य) "मेरी एक-आधी साध थी। कहा था— 'माँ, कामिनी-काञ्चन-त्यागी का संग दो'। और कहा था, 'तेरे ज्ञानी और भक्त का संग करूँगा। इसलिए थोड़ी-सी शक्ति दे, जिससे घूम-फिर सकूँ— यहाँ-वहाँ (इधर-उधर) जा सकूँ'। वैसी घूमने-फिरने की शक्ति तो किन्तु नहीं दी!"

त्रैलोक्य *(सहास्य)*— साध क्या मिट गई?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ज़रा-सी बाकी है। *(सबका हास्य)*।

"यह शरीर तो दो दिन के लिए है। हाथ जब टूट गया था, तब माँ से कहा था, माँ बड़ा दर्द लगता है! तब दिखा दिया गाड़ी और उसका इञ्जीनियर। गाड़ी का एक-आध स्क्रू अलग हो गया है। इञ्जीनियर जिस प्रकार गाड़ी चला रहा है, गाड़ी उसी प्रकार चलती है। अपनी कोई क्षमता नहीं है।

"तो फिर देह की रक्षा का यत्न क्यों करता हूँ? ईश्वर को लेकर सम्भोग करूँगा, उनका नाम-गुण करूँगा, उनके ज्ञानी भक्तों को देखता हुआ फिरूँगा।"

द्वितीय परिच्छेद

(नरेन्द्रादि के संग में— नरेन्द्र का सुख-दुःख— देह का सुख-दुःख)

नरेन्द्र फर्श पर सम्मुख बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य और भक्तों के प्रति)*— देह का सुख-दुःख तो है ही। देखो ना नरेन्द्र को ही— बाप मर गए हैं— घर में बहुत कष्ट है, कोई उपाय ही नहीं बन पा रहा। वे कभी सुख में रखते हैं, कभी दुःख में।

त्रैलोक्य— जी, ईश्वर की (नरेन्द्र के ऊपर) दया होगी।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— फिर कब होगी! काशी में अन्नपूर्णा के घर में कोई अभुक्त (भूखा) चाहे नहीं रहता, किन्तु किसी-किसी को सन्ध्या पर्यन्त बैठे रहना पड़ता है।

"हृदय ने शम्भु मल्लिक से कहा था, मुझे कुछ रुपया दें। शम्भु मल्लिक का अंग्रेज़ी मत था। उसने कहा, तुम्हें रुपया क्यों दूँ? तुम कमा कर खा सकते हो, तुम कैसा भी हो रोज़गार करते हो। फिर भी जो कोई बहुत गरीब हो उसकी और बात है, या अन्धा, लँगड़ा, पँगु हो— इनको देने से काम होता है। तब हृदय बोला, महाशय! आप ऐसा मत कहें। मुझे रुपया नहीं चाहिए। ईश्वर करे जैसे मुझे अन्धा, पँगु, अति दरिद्र इत्यादि न होना पड़े। आप को देने की आवश्यकता नहीं, मुझे भी लेने का प्रयोजन नहीं।

(नरेन्द्र और नास्तिक मत— ईश्वर का कार्य और भीष्मदेव)

'ईश्वर नरेन्द्र पर अभी भी दया क्यों नहीं करते', मानो इसी बात पर अभिमान करके यह बात कहते हैं। ठाकुर नरेन्द्र की ओर बीच-बीच में सस्नेह देखते हैं।

नरेन्द्र— मैं नास्तिक मत पढ़ रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण— दोनों ही हैं, अस्ति और नास्ति। फिर अस्ति को ही क्यों नहीं लेते?

सुरेन्द्र— ईश्वर तो न्याय-परायण हैं। वे तो भक्त को देखेंगे।

श्रीरामकृष्ण— कानून (शास्त्र) में है, पूर्वजन्म में जिन्होंने दान-वान कर रखा है, उनके ही धन होता है! फिर भी क्या है, जानते हो? यह संसार उनकी माया है। माया के काम में बहुत-कुछ गोलमाल होता है, कुछ भी समझ में नहीं आता!

"ईश्वर का कार्य कुछ समझ में नहीं आता है। भीष्मदेव शरशय्या पर लेटे हैं। पाण्डव देखने आए। संग में कृष्ण हैं। आकर क्षण भर पश्चात् देखते हैं, भीष्मदेव रो रहे हैं। पाण्डवों ने कृष्ण से कहा, कृष्ण कैसा आश्चर्य! पितामह अष्टवसुवों में एक वसु हैं। इनके जैसा ज्ञानी दिखाई नहीं देता। ये भी मृत्यु के समय मरने पर क्रन्दन कर रहे हैं! कृष्ण ने कहा, भीष्म इसलिए नहीं रो रहे। उनसे ही पूछ कर देख लें। पूछने पर भीष्म बोले, 'कृष्ण! ईश्वर के कार्य को कुछ भी समझ न सका! मैं इसलिए रो रहा हूँ कि संग-संग

साक्षात् नारायण फिर रहे हैं किन्तु पाण्डवों की विपद का शेष नहीं! यह बात जब सोचता हूँ, देखता हूँ उनका कार्य कुछ भी समझ में आने वाला नहीं!'

(शुद्ध आत्मा एकमात्र अटल— सुमेरुवत्)

''मुझे उन्होंने दिखाया था, परमात्मा, जिसको वेद में शुद्ध आत्मा कहते हैं, वे ही केवल एकमात्र अटल सुमेरुवत् निर्लिप्त और सुख-दुःख के अतीत हैं। उनकी माया के कार्य में बड़ी गड़बड़ है। इसके बाद वह, और फिर वह होगा— यह सब नहीं कहा जा सकता।''

सुरेन्द्र *(सहास्य)*— पूर्वजन्म में दान-पुण्य करने से फिर धन होता है, तब तो फिर हमें तो दान-वान करना उचित है।

श्रीरामकृष्ण— जिसके पास रुपया है, उसको देना उचित है।
(त्रैलोक्य के प्रति) जयगोपाल सेन के पास रुपया है। उसको दान करना उचित है। वह जो नहीं करता, वही निन्दा की बात है। किसी-किसी के पास रुपया होने पर भी हिसेवी (कृपण) होता है। वह रुपया फिर कौन भोग करेगा— उसका निश्चय नहीं!

''उस दिन जयगोपाल आया था। गाड़ी में आता है। गाड़ी में टूटी लालटैन, मरघट से लौटा हुआ घोड़ा, मैडिकल कालेज के हस्पताल से लौटा हुआ दरबान, और यहाँ के लिए लेकर आया दो सड़े अनार।'' *(सब का हास्य)*।

सुरेन्द्र— जयगोपालबाबू ब्राह्मसमाज के हैं। अब लगता है केशवबाबू के ब्राह्मसमाज में वैसे व्यक्ति नहीं हैं। विजय गोस्वामी, शिवनाथ तथा और-और जनों ने साधारण ब्राह्मसमाज बना लिया है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— गोबिन्द अधिकारी यात्रा (गीतिनाटक-मण्डली) के दल में अच्छे लोग नहीं रखता था। कारण— हिस्सा देना होगा।
(सबका हास्य)।

''केशव के एक शिष्य को उस दिन देखा। केशव के घर में नाटक हो रहा थ। देखा, वह व्यक्ति लड़के को गोद में लेकर नाच रहा है! और भी

सुना, वह लैक्चर देता है। निज को कौन शिक्षा दे— इसका पता नहीं।''

त्रैलोक्य गा रहे हैं—

चिदानन्द सिन्धुनीरे प्रेमानन्देर लहरी।
(चिदानन्द रूपी समुद्र जल में प्रेम-आनन्द की लहर है।)

गाना समाप्त हो जाने पर श्रीरामकृष्ण त्रैलोक्य से कहते हैं, वही गाना तो गाओ ना भाई— 'आमाय दे मा पागल कोरे।' (मुझे पागल कर दो माँ।)

नवम खण्ड

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में पण्डित शशधर आदि भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(काली ब्रह्म— ब्रह्म और शक्ति अभेद)

श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग में अपने उसी पूर्वपरिचित कमरे में धरती पर बैठे हुए हैं। निकट शशधर पण्डित हैं। धरती पर मादुर (बारीक चटाई) बिछी हुई है। उसके ऊपर ठाकुर, पण्डित शशधर एवं कई-एक भक्त बैठे हैं। कुछ भक्त तो ज़मीन के ऊपर ही बैठे हैं। सुरेन्द्र, बाबूराम, मास्टर, हरीश, लाटु, हाजरा, मणिमल्लिक आदि भक्तगण उपस्थित हैं। ठाकुर पण्डित पद्मलोचन की बातें कर रहे हैं। पद्मलोचन वर्धमान के राजा के सभापण्डित थे। समय अपराह्न प्राय: चार।

आज सोमवार, 30 जून, 1884 ईसवी। छ: दिन हुए श्री श्रीरथयात्रा के दिन पण्डित शशधर के साथ ठाकुर का कलकत्ता में मिलन और आलाप हुआ था। आज फिर (दोबारा) पण्डित आए हैं। संग में श्रीयुक्त भूधर चट्टोपाध्याय और उनके ज्येष्ठ सहोदर हैं। कलकत्ता में उनके घर में पण्डित शशधर रह रहे हैं।

पण्डित ज्ञान-मार्ग के पन्थी हैं। ठाकुर उन्हें समझा रहे हैं— 'जिनका नित्य, उनकी ही लीला— जो अखण्ड सच्चिदानन्द, उन्होंने ही लीला के लिए नाना रूप धारण किए हैं।' ईश्वर की बात करते-करते ठाकुर 'बेहोश' हो रहे हैं। भाव में मतवाले होकर बातें कर रहे हैं।

पण्डित से कह रहे हैं— 'बापू! ब्रह्म अटल, अचल, सुमेरुवत्। किन्तु 'अचल' जिसका है, उसका 'चल' भी है'।

ठाकुर प्रेमानन्द में मस्त हो गए हैं। उसी गन्धर्व-विनिन्दित कण्ठ से गाना गाते हैं। गाने पर गाना गा रहे हैं—

के जाने काली केमन, षड़्दर्शने ना पाय दर्शन॥
मूलाधारे सहस्रारे सदा योगी करे मनन।
काली पद्म-बने हंससने हंसीरूपे करे रमण॥
आत्मारामेर आत्मा काली, प्रमाण प्रणवेर मतन।
तिनि घटे घटे विराज करेन इच्छामयीर इच्छा जेमन॥
मायेर उदरे ब्रह्माण्ड-भाण्ड प्रकाण्ड ता जानो केमन।
महाकाल जेनेछेन कालीर मर्म अन्य केवा जाने तेमन॥
प्रसाद भासे लोके हासे सन्तरणे सिन्धु तरण।
आमार मन बुझेछे प्राण बुझे ना, धरबे शशी होये बामन॥

[भावार्थ— कौन जानता है काली कैसी है, षड्दर्शनों ने भी तो उनका दर्शन नहीं पाया है। मूलाधार और सहस्रार में योगी सदा मनन करते हैं। काली पद्मबन में हंस के सहित हंसी रूप में रमण करती हैं। आत्माराम की आत्माकाली, प्रणव के प्रमाण की न्यायीं हैं। इच्छामयी की जैसी इच्छा होती है, वैसे ही वे घट-घट में विराजती हैं। माँ के पेट में प्रकाण्ड ब्रह्माण्ड-बर्तन जानते हो कैसे है! महाकाल ने काली का मर्म जान लिया है। वैसा मर्म अन्य और कौन जान सकता है! प्रसाद तैरता है, जगत उसके सिन्धु पार करके तैरने पर हँसता है। मेरा मन तो समझ गया है किन्तु प्राण नहीं समझे हैं। वह (मन) बौना होकर शशि को पकड़ना चाहता है।]

मा कि एमनि मायेर मेये।
जार नाम जपिये महेश बाँचेन हलाहल खाइये॥
सृष्टि स्थिति प्रलय जार कटाक्षे हेरिये।
से जे अनन्त ब्रह्माण्ड राखे उदरे पुरिये॥
जे चरणे शरण ल'ये देवता बाँचेन दाये।
देवेर देव महादेव जाँर चरणे लुटाये॥

[भावार्थ— माँ क्या ऐसी माँ की बेटी है, जिसका नाम जप कर महेश हलाहल (विष) पीकर भी जीवित रहते हैं, जिसके एक कटाक्ष से सृष्टि-स्थिति-प्रलय होती है, जो अनन्त ब्रह्माण्ड को पेट में भरे रखती है, जिसके चरणों की शरण लेकर देवता अपने दायित्व से बचते हैं, देवों के देव महादेव जिनके चरणों में लेटे हुए हैं।]

गान— मा कि शुधुई शिवेर सती।
जाँरे कालेर काल करे प्रणति॥
न्यांगटाबेशे शत्रु नाशे महाकाल हृदये स्थिति।
बोलो देखि मन सेबा केमन, नाथेर बुके मारे लाथि॥
प्रसाद बोले मायेर लीला, सकलि जेनो डाकाति।
सावधाने मन करो जतन, होबे तोमार शुद्धमति॥

[भावार्थ— माँ क्या केवल शिव की सती हैं? उन्हें तो काल का काल भी प्रणाम करता है? नागा के वेश में शत्रु-नाश करके महाकाल के हृदय में वे स्थित हैं। हे मन, ज़रा बताओ तो वह कैसे हुआ— नाथ की छाती पर वे लात मारती हैं। प्रसाद कहते हैं, माँ की लीला को तो पूरी डकैती ही समझो। हे मन, सावधानी से यत्न करते रहो तो तुम्हारी मति शुद्ध हो जाएगी।]

गान— आमि सुरा पान करि ना, सुधा खाइ जय काली बोले,
मन-माताले माताल करे, मद-माताले माताल बोले।
गुरुदत्त बीज लये प्रवृत्ति ताय मशला दिये,
ज्ञान शुँड़ीते चोयाय माँटी, पान करे मोर मन माताले।
मूल मन्त्र यन्त्र भरा, शोधन करि बोले तारा,
प्रसाद बोले एमन सुरा पेले चतुर्वर्ग मिले।

[भावार्थ— मैं (सुरा) नहीं पीता। 'जय काली' बोलकर अमृत-सुधा पीता हूँ। मन जब मस्त हो जाता है तो मतवाला बना देता है। शराब के नशे में शराबी कहलाता है। गुरु द्वारा दिया गया बीज लेकर प्रवृत्ति का उसमें मसाला लगाकर ज्ञान कलवार द्वारा भट्ठी में चुआकर (टपकाकर) पीने से मेरा मन मतवाला हो रहा है। आज यन्त्र (शरीर) मूलमन्त्र से भरा हुआ है। मैं 'तारा' बोलकर उसको शुद्ध करता हूँ। प्रसाद कहते हैं, ऐसी सुरा पीने पर चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) मिल जाते हैं।]

गान— श्यामाधन कि सबाइ पाय,
अबोध मन बोझे ना ए कि दाय।
शिवेर इ असाध्य साधन मन मजान रांगा पाय॥

[भावार्थ— श्यामा माँ-रूप-धन क्या सबको मिलता है? यह अबोध मन समझता नहीं कि यह उत्तराधिकार में मिलने वाली सम्पत्ति नहीं। मन माँ के लाल चरणों में लगा होने पर भी शिव के द्वारा भी यह साधन असाध्य है।]

ठाकुर की भावावस्था कुछ कम हुई। उनका गाना थम गया। थोड़ी देर

चुप रहे। जाकर छोटी खाट पर बैठ गए हैं।

पण्डित गाने सुनकर मोहित हो गए हैं। वे अति विनीत भाव से ठाकुर से कहते हैं— "अब और गाना होगा क्या?"

ठाकुर थोड़ी देर बाद ही फिर और गाना गाते हैं—

श्यामापद आकाशेते मन घुड़िखाना उड़िते छिलो,
कलुषेर कुवातास पेये गोप्ता खेये पोड़े गेलो॥
माया कान्नि होल भारी, आर आमि उठाते नारि।
दारासुत कलेर दड़ि, फाँस लेगे से फेँसे गेलो॥
ज्ञान-मुण्ड गेछे छिँड़े, उठिये दिले अमनि पड़े।
माथा नाइ से आर कि उड़े, संगेर छेजन जयी होलो॥
भक्ति डोरे छिलो बाँधा, खेलते एसे लागलो धाँधा।
नरेशचन्द्रेर हासा काँदा, ना आसा एक छिलो भालो॥

[भावार्थ—श्यामा माँ के चरण रूपी आकाश में मनरूपी पतंग उड़ रही थी। पाप (दोष) की कुबातास (गन्दी हवा) लगने से गोता खाकर गिर गई। माया रूपी कन्नी भारी हो गई। मैं अब उठ नहीं सकता। स्त्री-पुत्र इस यन्त्र की रस्सी हैं, फाँसी लगने से फँस गया हूँ। ज्ञान रूपी सिर फट गया है, उठाते ही झट गिर पड़ता है। मस्तक (बुद्धि) नहीं है तो फिर कैसे उड़े? साथ वाले छः जन (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) जीत गए हैं। भक्ति की डोरी से बन्धा हुआ था, खेलने आने पर ही सब गड़बड़ हो गई है। नरेशचन्द्र का हँसना-रोना! न आते तो ही अच्छा था।]

एबार आमि भालो भेवेछि।
भालो भाबीर काछे भाव शिखेछि।
जे देशे रजनी नाइ सेइ देशेर एक लोक पेयेछि।
आमि किवा दिबा किबा सन्ध्या सन्ध्यारे वन्ध्या करेछि।

[भावार्थ— अब की बार मैंने अच्छा सोच लिया है। एक बड़े भले भाव वाले से भाव सीख लिया है। जिस देश में रजनी नहीं है, उस देश का एक जन मैंने पा लिया है। मेरे लिए अब क्या दिन और क्या रात? मैंने सन्ध्या को बाँध लिया है।]

अभय पदे प्राण सँपेछि।
आमि आर कि यमेर भय रेखेछि॥
काली नाम महामन्त्र आत्मशिरशिखाय बँधेछि।
(आमि) देह बेचे भवेर हाटे, श्रीदुर्गानाम किने एनेछि॥

[भावार्थ— मैंने अभय चरणों में प्राण सौंप दिया है। अब क्या मुझे यम का भय है? कालीनाम महामन्त्र अपने सिर की शिखा (चोटी) में बाँध लिया है। (मैं) देह को भव की हाट में बेचकर दुर्गा-नाम खरीद लाया हूँ।]

'दुर्गा-नाम किने एनेछि' यह बात सुनकर पण्डित अश्रुजल-विजर्सन कर रहे हैं। ठाकुर फिर और गाते हैं—

काली नाम कल्पतरु, हृदये रोपण कोरेछि।
एबार शमन एले हृदय खुले देखाबो ताइ बोसे आछि॥
देहेर मध्ये छ'जन कुजन, तादेर घरे दूर कोरेछि।
रामप्रसाद बोले दुर्गा बोले यात्रा कोरे बोसे आछि॥

[भावार्थ— कालीनाम-कल्पतरु मैंने हृदय में रोपण कर लिया है। अब यम के आने पर हृदय खोलकर दिखाऊँगा, इसीलिए बैठा हुआ हूँ। देह के बीच जो छः कुजन (बुरे जन) हैं, उन्हें घर से दूर कर दिया है। रामप्रसाद कहते हैं, दुर्गा-नाम लेकर जीने को तैयार हुआ हूँ।]

आपनाते आपनि थेको मन जेओनाक कारू घरे।
जा चाबि ता बोसे पाबि (ओ रे) खोँजो निजे अन्तःपुरे॥

[भावार्थ— हे मन, तुम अपने में आप रहो। कहीं किसी के घर मत जाओ। जो चाहोगे वही यहाँ बैठे-बैठे ही पा जाओगे, अपने अन्तःपुर में खोजो।]

ठाकुर इस गाने को गाकर कह रहे हैं— मुक्ति की अपेक्षा भक्ति बड़ी है—

आमि मुक्ति दिते कातर नइ,
शुद्धा भक्ति दिते कातर होइ गो।
आमार भक्ति जेबा पाय से जे सेवा पाय,
तारे केबा पाय से जे त्रिलोकजयी॥
शुद्धा भक्ति एक आछे वृन्दाबने,
गोप गोपी भिन्न अन्ये नाहि जाने।
भक्तिर कारणे नन्देर भवने
पिता ज्ञाने नन्देर बाधा माथाय बोई॥

[भावार्थ— मैं मुक्ति देता हुआ कातर नहीं होता, शुद्धा भक्ति देता हुआ कातर (भयभीत) होता हूँ, जी। मेरी भक्ति जो पा लेता है, वह तो सेवा पाता है। उस सेवा को कौन पा

सकता है ? वह तो त्रिलोकजयी हो जाता है। शुद्धा भक्ति बस केवल एक वृन्दावन में है, गोप-गोपियों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। भक्ति के कारण नन्द के भवन में पिता जानकर नन्द का जूता (बाधाएँ, कठिनाइयाँ) सिर पर वहन करता हूँ।]

द्वितीय परिच्छेद

(शास्त्रपाठ और पाण्डित्य मिथ्या, तपस्या चाहिए, विज्ञानी)

पण्डित ने वेद आदि शास्त्र पढ़े हुए हैं और ज्ञान-चर्चा करते हैं। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हुए उन्हें देख रहे हैं और बातों ही बातों में नाना उपदेश दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(पण्डित के प्रति)*— वेद आदि अनेक शास्त्र तो हैं, किन्तु साधन बिना किए, तपस्या बिना किए, ईश्वर को नहीं पाया जाता।

''षड् दर्शनों में, आगम-निगम तन्त्रों में दर्शन नहीं मिलता।

''फिर भी शास्त्रों में जो है, उस सबको जानबूझ कर उसी के अनुसार काज करना चाहिए। किसी व्यक्ति ने एक पत्र खो दिया था। याद नहीं कहाँ रख दिया था। तब वह प्रदीप लेकर खोजने लगा। दो-तीन जनों के मिलकर खोजने से वह पत्र मिल गया। उसमें लिखा हुआ था, 'पाँच सेर सन्देश और एक धोती भेज देना।' उतना-सा पढ़ लेने पर उसने फिर चिट्ठी फेंक दी। तब पत्र का प्रयोजन नहीं रहा। अब पाँच सेर सन्देश और एक धोती खरीद कर भेजने से ही काम हो जाएगा।''

(The Art of Teaching—पठन, श्रवण और दर्शन का तारतम्य)

''पढ़ने की अपेक्षा सुनना भला है, सुनने से देखना भला। गुरुमुख अथवा साधुमुख से सुनकर धारणा अधिक होती है— शास्त्र के असार भाग का फिर चिन्तन नहीं करना पड़ता।

''हनुमान ने कहा था, 'भाई, मैं तिथि-नक्षत्र— ये सब नहीं जानता।

मैं केवल राम का चिन्तन करता हूँ।'

''सुनने से देखना और भी भला है। देखने से सब सन्देह चले जाते हैं। शास्त्र में अनेक बातें होती हैं, ईश्वर का साक्षात्कार बिना हुए, उनके चरणों में भक्ति बिना हुए, चित्तशुद्धि बिना हुए— सब ही वृथा है। पञ्जिका (पञ्चाङ्ग) में बीस आड़ा* जल लिखा है। किन्तु पञ्चाङ्ग निचोड़ने पर तो एक बूँद भी (जल) नहीं गिरता! एक बूँद ही निकल जाए, वह भी तो नहीं।''

[विचार कितने दिन— ईश्वर-दर्शन पर्यन्त, विज्ञानी कौन ?]

''शास्त्रादि लेकर विचार कितने दिन ? जितने दिन ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता। भ्रमर गुन-गुन कब तक करता है ? फूल पर जब तक नहीं बैठता। फूल पर बैठ कर मधु-पान करना आरम्भ करने पर फिर शब्द नहीं।

''फिर भी एक बात है— ईश्वर के दर्शन के पश्चात् भी बातें चल सकती हैं। वे बातें केवल ईश्वर के ही आनन्द की बातें होती हैं, जैसे मतवाले का 'जय काली' बोलना। और भ्रमर फूल पर बैठ कर मधु-पान करने के पश्चात् भी 'आध-आध' स्वर में गुन-गुन करता है।

''ज्ञानी 'नेति-नेति'-विचार करता है। यह विचार करता-करता जहाँ पर आनन्द प्राप्त करता है, वही है ब्रह्म।

''ज्ञानी का स्वभाव कैसा होता है ?— ज्ञानी कानून (शास्त्र) के अनुसार चलता है।

''मुझको चानके ले गए थे। वहाँ पर कितने ही साधु देखे। कोई-कोई उनमें से सिलाई कर रहे थे। *(सब का हास्य)*। हमारे जाने पर उन्होंने सब छोड़ दिया। तब फिर पैर पर पैर रखकर बैठकर हमारे संग बातें करने लगे। *(सब का हास्य)*।

''किन्तु ईश्वरीय बातें न पूछने पर ज्ञानी ऐसी बातें नहीं करता। पहले

---

* एक विशेष माप, measure

पूछेगा, अब तुम कैसे हो? घर के सब कैसे हैं?

"किन्तु विज्ञानी का स्वभाव अलग है। उसका एलानो (उदार, खुला, फैला हुआ) स्वभाव है। शायद धोती अलग पड़ी है या बगल के भीतर है— बच्चों की भाँति।

'ईश्वर हैं'— जिसने इस बात को जान लिया है, वह है ज्ञानी। काठ में निश्चित आग है— जो यह जान गया है, वह ज्ञानी है। किन्तु काठ जलाकर पकाना, खूब पेट भर कर आहार (गले तक खाना) जिसका होता है, उसका नाम है विज्ञानी।

"किन्तु विज्ञानी का अष्टपाश* खुल जाता है— काम-कोधादि का आकार मात्र रहता है।"

पण्डित— "भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। (हृदय की संदेह की गाँठ खुल जाती है और सभी संशय दूर हो जाते हैं।)

(पूर्वकथा— कृष्णकिशोर के घर पर गमन— ठाकुर की विज्ञानी की अवस्था)

श्रीरामकृष्ण— हाँ, एक जहाज समुद्र में से जा रहा था। हठात् उसका जितना भी था लोहा-लक्कड़, कीलें, स्क्रू उखड़ने लगे। निकट ही चुम्बक का पहाड़ था। इसीलिए सब लोहा उखड़-उखड़ कर जाने लगा।

"मैं कृष्णकिशोर के घर जाया करता था। एक दिन गया। वह कहने लगा, तुम पान क्यों नहीं खाते? मैंने कहा, 'मेरी खुशी होगी पान खाऊँगा, दर्पण (आरसी) में मुख देखूँगा, हजार लड़कियों के बीच नंगा होकर नाचूँगा।' कृष्णकिशोर की पत्नी उस पर नाराज होकर कहने लगी, 'तुम किसको क्या कहते हो? रामकृष्ण को क्या कह रहे हो?'

"ऐसी अवस्था होने पर काम-क्रोधादि जल जाते हैं। शरीर का कुछ नहीं होता। देखने में अन्य व्यक्तियों की भाँति। किन्तु भीतर फाँक (खोखला,

* अष्टपाश = लज्जा, घृणा, जुगुप्सा, कुल, शील, मान, भय, शंका।

खाली) और निर्मल।''

भक्त— ईश्वर-दर्शन के पश्चात् भी शरीर रहता है?

श्रीरामकृष्ण— किसी-किसी का कुछ काम के लिए रहता है— लोकशिक्षा के लिए। गंगास्नान से पाप चला जाता है और मुक्ति होती है, किन्तु आँख का अन्धापन नहीं जाता। फिर भी पाप के लिए जो कई जन्म कर्म-भोग करने पड़ते हैं, वे कई जन्म फिर नहीं होते। जो ऐंठन दी गई है, उसी घुमाव (ऐंठन) से ही घूमना पड़ेगा। शेष घुमाव और नहीं होगा। काम-क्रोध आदि सब दग्ध हो जाते हैं— तब शरीर बस कुछ काम के लिए ही रहता है।

पण्डित— उसको ही संस्कार कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— विज्ञानी सर्वदा ईश्वर-दर्शन करता है। जभी तो ऐसा एलानो (खुला, उदार, relaxing) भाव होता है। खुली आँखों से भी दर्शन करता है। कभी नित्य से लीला में रहता है, कभी लीला से नित्य में जाता है।

पण्डित— इस बात को नहीं समझा।

श्रीरामकृष्ण— नेति-नेति विचार करके उसी नित्य अखण्ड सच्चिदानन्द में पहुँचता है। वे यही विचार करते हैं— 'वे जीव नहीं, जगत नहीं, चौबीस तत्त्व नहीं'। नित्य में पहुँचकर फिर देखता है, 'वे ही सब होकर रह रहे हैं— जीव, जगत, चौबीस तत्त्व'।

''दूध को जमाकर, मथकर मक्खन निकालना चाहिए। किन्तु मक्खन निकल जाने के पश्चात् देखता है कि छाछ का ही मक्खन है, मक्खन की ही छाछ है। खोल का ही केन्द्र (माझ, बीच, centre), केन्द्र का ही खोल है।''

पण्डित— *(भूधर के प्रति, सहास्य)*— समझे? यह समझना है बड़ा ही कठिन!

श्रीरामकृष्ण— मक्खन हुआ तो छाछ भी हुई है। मक्खन का विचार करने के साथ-साथ छाछ का भी विचार आता है, क्योंकि छाछ न हो तो मक्खन नहीं होता। तभी नित्य को मानने से लीला को भी मानना पड़ता है। अनुलोम और विलोम। साकार-निराकार-साक्षात्कार के पश्चात् यह अवस्था होती है! साकार— चिन्मय रूप; निराकार— अखण्ड सच्चिद्दानन्द।

"वे ही समस्त हुए हैं। तभी विज्ञानी के लिए 'यह संसार मजे की कुटी'। ज्ञानी के पक्ष में 'यह संसार धोखे की टट्टी'। रामप्रसाद ने 'धोखे की टट्टी' कहा था। तभी किसी ने जवाब दिया था—

एइ संसार मजार कुटि, आमि खाइ दाइ आर मजा लुटि।
ओ रे बद्यि नाहिक बुद्धि, बुझिस केवल मोटा मुटि॥
जनक राजा महातेजा तार किसेर छिलो त्रुटि।
से एदिक-ओदिक दुदिक रेखे खेयेछिलो दूधरे वाटि॥

(सबका हास्य)

[भावार्थ— यह संसार मजे की कुटिया है। मैं खाता-पीता और मौज करता हूँ। अरे बुद्धिमान, बुद्धि तो मेरी नहीं है किन्तु मैं सार समझ गया हूँ। राजा जनक बड़े तेजस्वी थे। उन्हें क्या कमी थी? वे इधर-उधर दोनों ओर रखते थे और दूध का कटोरा पीते थे।]

"विज्ञानी ने ईश्वर का आनन्द विशेषरूप से सम्भोग किया है। किसी ने दूध सुना है, किसी ने देखा है, किसी ने पिया है। विज्ञानी ने दूध पिया है और पीकर आनन्द-लाभ किया है और हृष्टपुष्ट हुआ है।"

ठाकुर तनिक चुप हो गए और पण्डित को तम्बाकू पीने के लिए कहा। पण्डित दक्षिण-पूर्व के लम्बे बरामदे में तम्बाकू पीने के लिए गए।

तृतीय परिच्छेद

(ज्ञान और विज्ञान— ठाकुर और वेदोक्त ऋषिगण)

पण्डित फिर लौटकर भक्तों के संग फर्श पर बैठ गए। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हुए फिर बातें कर रहे हैं।

श्री रामकृष्ण *(पण्डित के प्रति)*— तुम से यही कहता हूँ। आनन्द तीन प्रकार का है— विषयानन्द, भजनानन्द और ब्रह्मानन्द। जिसे सर्वदा ही लिए रहते हैं—कामिनी-काञ्चन का आनन्द, उसका नाम है विषयानन्द। ईश्वर का नाम-गुणगान करके जो आनन्द है, उसका नाम है भजनानन्द। और भगवान-दर्शन का जो आनन्द है, उसका नाम है ब्रह्मानन्द। ब्रह्मानन्द-लाभ के बाद

ऋषिगण स्वेच्छाचारी (free willed) हो जाया करते थे।

"चैतन्यदेव की तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती थीं— अन्तर्दशा, अर्धबाह्यदशा और बाह्यदशा। अन्तर्दशा में भगवान-दर्शन करके समाधिस्थ हो जाते, जड़समाधि की अवस्था हो जाती। अर्धबाह्य में थोड़ा-सा बाहर का होश रहता। बाह्यदशा में नाम-गुण-कीर्त्तन कर सकते थे।"

हाजरा *(पण्डित के प्रति)*— अब तो सब सन्देह नष्ट हो गए!

श्रीरामकृष्ण *(पण्डित के प्रति)*— समाधि किसे कहते हैं? जहाँ पर मन का लय हो जाता है। ज्ञानी की जड़समाधि होती है— 'मैं' नहीं रहता। भक्तियोग की समाधि को चेतनसमाधि कहते हैं। इसमें सेव्य-सेवक का 'मैं' रहता है— रस-रसिक का 'मैं' रहता है— रस-रसिक का 'मैं'—आस्वाद्य-आस्वादक का 'मैं'। ईश्वर सेव्य, भक्त सेवक; ईश्वर रसस्वरूप, भक्त रसिक; ईश्वर आस्वाद्य, भक्त आस्वादक। चीनी नहीं होऊँगा, चीनी खाना पसन्द करता हूँ।

पण्डित— वे यदि समस्त 'मैं' लय कर लें तो फिर क्या होगा? चीनी यदि बना लें?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अपने मन की बात खोलकर बताओ।'माँ कौशल्या, एक बार स्पष्ट करके बताओ!' *(सबका हास्य)*। तो फिर क्या नारद, सनक, सनातन, सनत, सनत्कुमार शास्त्र में नहीं हैं?

पण्डित— जी हाँ, शास्त्र में हैं।

श्रीरामकृष्ण— उन्होंने ज्ञानी होकर भी 'भक्त का मैं' रख लिया था। तुमने भागवत नहीं पढ़ा?

पण्डित— काफी सारा पढ़ा है, सम्पूर्ण नहीं।

श्रीरामकृष्ण— प्रार्थना करो। वे दयामय हैं। वे क्या भक्त की बात नहीं सुनते? वे कल्पतरु हैं। उनके पास जाकर व्यक्ति जो माँगेगा, वही मिलेगा।

पण्डित— मैंने इन सब पर इतना चिन्तन नहीं किया है। अब सब समझ रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण— ब्रह्मज्ञान के पश्चात् भी ईश्वर ज़रा-सा 'मैं' रख देते हैं। वही 'मैं'— 'भक्त का मैं', 'विद्या का मैं'। उसके द्वारा यह अनन्त लीला आस्वादन

होती है। सारा मूसल घिसने पर ज़रा-सा रहा था, और फिर उस के ही बेंत-वन में गिर जाने से कुलनाश हुआ— यदुवंश-ध्वंस हो गया। विज्ञानी जभी तो इस 'भक्त का मैं', 'विद्या का मैं' को रखे रहते हैं— आस्वादन के लिए, लोकशिक्षा के लिए।

[ऋषिगण भय व त्रास में— A new light on the Vedanta]

"ऋषिगण भयभीत। उनका भाव क्या है, जानते हो? मैं जैसे-तैसे किए जा रहा हूँ, फिर कौन आता है? 'खादि काठ' (हल्की, खोखली लकड़ी) अपने-आप तो जैसे-तैसे करके तैर जाती है, किन्तु उस पर एक पक्षी के बैठ जाने से वह डूब जाती है। नारदादि 'बहादुरी काठ' (भारी, मजबूत लकड़ी) अपने-आप भी तैर जाती है, और फिर अनेक जीव-जन्तुओं को भी ले जा सकती है। स्टीमबोट (steamer)— अपने-आप भी पार जाता है तथा औरों को भी पार करवा देता है।

"नारदादि आचार्य विज्ञानी, अन्य ऋषियों से साहसी। जैसे पक्का खिलाड़ी 'छकबाँधा खेल' खेल सकता है। क्या माँगते हो, छः कि पाँच? हर बार ही पड़ता है ठीक—ऐसा खिलाड़ी! और फिर वह बीच-बीच में मूछों पर ताव देता है।

"जो ज्ञानी हैं, वे भयभीत होते हैं। जैसे शतरंज खेलते हुए कच्चा व्यक्ति सोचता है, 'जिस किसी तरह एक बार गोटी निकले सही'। विज्ञानी को किसी से भी भय नहीं होता। उसने साकार-निराकार-साक्षात्कार किया हुआ है, ईश्वर के संग आलाप किया हुआ है, ईश्वर का आनन्द-सम्भोग किया हुआ है।

"उनका चिन्तन करके अखण्ड में है— मन लय होने पर ही आनन्द। और फिर मन के लय बिना हुए भी लीला में मन रखने पर भी आनन्द।

"खाली ज्ञानी— एकरसा (अरुचिकर, monotonous) होता है, केवल विचार करता है, 'यह नहीं-यह नहीं, यह सब स्वप्नवत् है'। मैंने दोनों

हाथ छोड़ दिए हैं, जभी सब लेता हूँ।

"कोई अपनी समधन से मिलने गई थी। समधन तब धागा तैयार कर रही थी, नाना प्रकार का रेशम का धागा। समधन को अपनी समधन देख बड़ा आनन्द हुआ। वह बोली, 'बहिन, तुम्हारे आने से मुझे जो बड़ा आनन्द हो रहा है, वह बता नहीं सकती। जाऊँ, तुम्हारे लिए जलपान लाऊँ जाकर।' वह जलपान लेने गई। इधर नाना रंगों के रेशम के धागे देखकर उस समधन को लोभ आ गया। उसने एक गुच्छा रेशम का अपनी बगल में लुका (दिया) लिया। समधन जलपान ले आई और बड़े उत्साह से उसे जलपान करवाने लगी। किन्तु धागों को देखकर वह समझ गई कि एक बण्डल धागे का समधन ने खिसका लिया है। तब उसने धागा निकलवाने के लिए एक उपाय सोचा।

"उसने कहा, बहिन! बहुत दिनों पश्चात् तुम्हारे साथ मिलन हुआ है। आज बड़े भारी आनन्द का दिन है। मेरी बड़ी इच्छा हो रही है कि हम दोनों नृत्य करें। वह बोली, 'हाँ बहिन, मुझे भी बड़ा आनन्द हुआ है।' तब दोनों समधनें नाचने लगीं। समधन ने देखा कि वह बाँह को उठाए बिना ही नृत्य कर रही है। तब उसने कहा, 'आओ बहिन, दोनों हाथ उठाकर हम नाचें, आज बड़े भारी आनन्द का दिन है।' किन्तु एक हाथ से बगल दबाए और एक हाथ उठाकर वह नाचने लगी। तब समधन ने कहा, 'बहिन यह क्या! एक हाथ उठाकर नाचना क्या! आओ दोनों हाथ उठाकर नाचें। यह देख! मैं दोनों हाथ उठाकर नाच रही हूँ।' किन्तु वह बगल दबाए हुए हँसते-हँसते एक हाथ उठाकर नाचती रही और बोली, 'जो जैसे जानता है बहिन!'

"मैं बगल में हाथ देकर दबाता नहीं,— मैंने दोनों हाथ छोड़ दिए हैं। मुझे भय नहीं। तभी तो मैं नित्य और लीला दोनों ही लेता हूँ।"

ठाकुर क्या यह कह रहे हैं कि ज्ञानी की लोकमान्य पाने की कामना, ज्ञानी की मुक्ति की कामना— ये सब रहने के कारण वह दोनों हाथ उठाकर नहीं नाच सकता? नित्य और लीला दोनों नहीं ले सकता? और ज्ञानी को भय रहता है कि कहीं पीछे बद्ध न हो जाऊँ! विज्ञानी को भय नहीं।

श्रीरामकृष्ण— केशवसेन से कहा था, 'मैं' को बिना त्यागे नहीं होगा। वह बोला, वैसा होने पर तो महाशय दल-वल नहीं रहता। तब मैंने कहा, 'कच्चा मैं', 'बज्जात मैं'-त्याग करने को कहता हूँ; किन्तु 'पक्का मैं', 'बालक का 'मैं', 'ईश्वर का दास मैं', 'विद्या का मैं'— इस में दोष नहीं। 'संसारी (गृही) का मैं', 'अविद्या का मैं' एक मोटी लाठी की न्यायीं है। सच्चिदानन्द सागर के जल को वह लाठी जैसे दो भाग करती है। किन्तु 'ईश्वर-दास का मैं', 'बालक का मैं', 'विद्या का मैं' जल के ऊपर रेखावत् है। जल एक, खूब सुन्दर दिखाई देता है— केवल बीच में एक ऐसी रेखा है, जैसे दो भाग जल। वस्तुत: एक जल दिखता है।

"शंकराचार्य ने 'विद्या का मैं' रखा था— लोकशिक्षा के लिए।"

(ब्रह्मज्ञान-लाभ के पश्चात् 'भक्त का मैं'— गोपी-भाव)

"ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति के बाद भी वे अनेकों के भीतर 'विद्या का मैं', 'भक्त का मैं' रख देते हैं। हनुमान साकार-निराकार-साक्षात्कार करने के पश्चात् सेव्य-सेवक के भाव में, भक्त के भाव में रहते थे। उन्होंने रामचन्द्र से कहा, 'राम, सोचता हूँ तुम पूर्ण, मैं अंश; कभी सोचता हूँ, तुम सेव्य, मैं सेवक; और राम, जब तत्त्वज्ञान होता है तब देखता हूँ 'तुम ही मैं, मैं ही तुम'!

"यशोदा कृष्ण-विरह में कातर होकर श्रीमती के पास गईं। उनका कष्ट देखकर श्रीमती ने उन्हें स्वरूप में दर्शन दिया, और बोलीं, 'कृष्ण चिदात्मा और मैं चित्शक्ति। माँ, तुम मुझ से वर लो।' यशोदा बोलीं, 'माँ, मुझे ब्रह्मज्ञान नहीं चाहिए। केवल यह वर दो जैसे ध्यान में गोपाल का रूप सर्वदा दर्शन हो, और कृष्णभक्त-संग जैसे सर्वदा हो, और जैसे मैं भक्तों की सेवा कर सकूँ, और उनका नाम-गुणकीर्त्तन जैसे मैं सर्वदा कर सकूँ।'

"गोपियों की इच्छा हुई थी, भगवान के ईश्वरीय रूप-दर्शन करें। कृष्ण ने उन्हें यमुना में डुबकी लगाने के लिए कहा। डुबकी देते ही तुरन्त सब ही बैकुण्ठ में उपस्थित हुईं, भगवान के उसी षडैश्वर्यपूर्ण रूप के दर्शन हुए। किन्तु अच्छा नहीं लगा। तब कृष्ण से उन्होंने कहा, 'हमारे गोपाल के

दर्शन, गोपाल की सेवा ही जैसे रहे और हम कुछ भी नहीं चाहतीं।'

"मथुरा जाने से पहले कृष्ण ने ब्रह्म-ज्ञान देने का प्रयत्न किया था। कहा था, 'मैं सर्वभूत में अन्तर-बाहर हूँ। तुम लोग क्या एक ही रूप देख रही हो?' गोपयिाँ कह उठीं, 'कृष्ण, क्या तुम फिर हमारा त्याग करके जा रहे हो, जभी हमें ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश दे रहे हो?'

"गोपियों का भाव क्या है, जानते हो? हम राई (राधा) के, राधा हमारी।"

एक भक्त— क्या यह 'भक्त का मैं' बिल्कुल नहीं जाता?

श्रीरामकृष्ण और वेदान्त
(Sri Ramakrishna and the Vedanta)

श्रीरामकृष्ण— वह 'मैं' कभी-कभी एक बार जाता है। तब ब्रह्मज्ञान होकर समाधिस्थ हो जाता है। मेरा भी जाता है। किन्तु लगातार नहीं। सा रे गा मा पा धा नि— किन्तु 'नि' पर अनेक क्षण नहीं रहा जाता, फिर दोबारा नीचे के स्वरों पर उतरना पड़ता है। मैं कहता हूँ 'माँ मुझे ब्रह्मज्ञान मत देना'। पहले साकारवादी लोग खूब आते-जाते थे। उसके पश्चात् अब ब्रह्मज्ञानियों ने आना आरम्भ किया! तब प्राय: उसी प्रकार बेहोश होकर समाधिस्थ हो जाता था और होश होने पर कहता, 'माँ, मुझे ब्रह्मज्ञान मत देना।'

पण्डित— हमारे कहने से वे सुनेंगे?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर हैं कल्पतरु। जो जिसे चाहेगा, वही पाएगा। किन्तु कल्पतरु के निकट रहकर माँगना होता है, तभी बात बनती है।

"फिर भी एक विशेष बात है— वे हैं भावग्राही। जो जैसा सोचकर साधना करता है, उसका वैसा ही होता है। जैसा भाव तैसा लाभ। कोई जादूगर राजा के सामने खेल दिखाता है और बीच-बीच में कहता है, 'राजा! रुपया दो, कपड़ा दो'। उसी समय उसकी जीभ तालु की जड़ के पास उलट गई। तुरन्त कुम्भक हो गया। फिर वाणी नहीं, शब्द नहीं, स्पन्दन नहीं! तब

सब ने ईंटों की कब्र तैयार करके उसको उसी भाव में दबा दिया! हजार वर्ष पश्चात् उसी कब्र को किसी ने खोदा। तब लोगों ने देखा कि कोई मानो समाधिस्थ हुआ बैठा है। वे उसको साधु जानकर पूजा करने लगे। उस समय हिलाते-डुलाते हुए जीभ तालु से हट गई। तब उसे होश हुआ और वह चीत्कार करके बोलने लगा— देख जादू मेरा, देख जादू! राजा, रुपया दो, कपड़ा दो।

''मैं रोता और कहता, माँ विचारबुद्धि पर वज्राघात हो जाए!''

पण्डित— तो फिर आप की भी (विचारबुद्धि) थी?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, एक बार (कभी) थी।

पण्डित— हाँ, आप बता दें, तो फिर हमारी भी जाएगी। आप की कैसे गई?

श्रीरामकृष्ण— ऐसे ही किसी तरह गई।

चतुर्थ परिच्छेद

ईश्वरदर्शन जीवन का उद्देश्य— उपाय

(ऐश्वर्य और माधुर्य— कोई-कोई ऐश्वर्य-ज्ञान नहीं चाहते)

ठाकुर कुछ देर तक चुप रहे। फिर बातें करने लगे।

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर कल्पतरु। उनके पास रहकर माँगना चाहिए। तब जो कुछ माँगता है, वही पाता है।

''ईश्वर ने क्या-क्या, कितना कुछ किया है! उनका अनन्त ब्रह्माण्ड! उनके अनन्त ऐश्वर्य के ज्ञान से मेरा क्या प्रयोजन? फिर यदि जानने की इच्छा हो तो पहले उनको प्राप्त करना चाहिए, तत्पश्चात् वे बता देंगे। यदुमल्लिक के कितने मकान, कितने कम्पनी के कागज हैं— इन सबकी मुझे क्या जरूरत? मुझे तो जरूरत है कि जो कुछ करके हो, बाबू के साथ बातचीत करना! वह नाला लाँघ कर ही (दीवार फाँद कर ही) हो! प्रार्थना करके ही

हो! अथवा दरबान के धक्के खाकर ही हो! बातचीत के बाद कितना कुछ है, एक बार पूछने पर बाबू ही बतला देता है। और फिर बाबू के संग बातचीत हो जाने पर उसके कर्मचारी भी मानते हैं। *(सबका हास्य)*।

"कोई-कोई ऐश्वर्य का ज्ञान नहीं चाहता। कलाल की दुकान पर कितने मन मद (शराब) है, मुझे इसकी क्या जरूरत है! मेरा तो (काम) एक बोतल से ही हो जाता है। ऐश्वर्य-ज्ञान क्या चाहेगा, यदि ज़रा-सी शराब पी ली है, उसी से मतवाला है!"

(ज्ञानयोग बड़ा कठिन है— अवतार आदि नित्यसिद्ध)

"भक्तियोग, ज्ञानयोग— ये सब ही पथ हैं। जिस पथ द्वारा ही जाओ, उनको पा लोगो। भक्ति का पथ है सहज पथ। ज्ञान, विचार का पथ कठिन पथ है।

"कौन-सा पथ अच्छा है— इतना विचार करने का क्या प्रयोजन? विजय के साथ अनेक दिन बातें हुई थीं। विजय से कहा था— एक व्यक्ति प्रार्थना किया करता था, 'हे ईश्वर! तुम क्या हो, कैसे हो— मुझे दिखला दो।'

"ज्ञान, विचार का पथ है कठिन। पार्वती ने गिरिराज को नाना ईश्वरीय रूपों में दर्शन देकर कहा था, 'पिता जी, यदि ब्रह्मज्ञान चाहते हो तो साधु-संग करो।'

"ब्रह्म क्या है— यह मुख से नहीं बोला जाता। राम-गीता में है, केवल तटस्थ लक्षण के द्वारा उनके विषय में बताया जाता है, जैसे गंगा के ऊपर घोष पल्ली है। गंगा के तट के ऊपर है— यह बात कहकर घोष पल्ली को व्यक्त किया जाता है।

"निराकार ब्रह्म का क्यों नहीं साक्षात्कार होगा? किन्तु है बड़ा कठिन। विषयबुद्धि का लेश रहने से नहीं होगा। इन्द्रियों के जितने विषय— रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श— सारे छूट जाने पर, मन का लय हो जाने पर, तब अनुभव में 'बोधे बोध' होता है और अस्तिमात्र जाना जाता है।"

पण्डित—अस्तीत्योपलब्धव्य* इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण—उनको पाने के लिए एक भाव का आश्रय करना चाहिए—वीर-भाव, सखी-भाव या दासी-भाव और सन्तान-भाव।

मणिमल्लिक—जभी दृढ़ता होगी।

श्रीरामकृष्ण—मैं सखी-भाव में अनेक दिन था। कहता था, "मैं आनन्दमयी, ब्रह्ममयी की दासी हूँ। अरी ओ दासियो, मुझे अपनी दासी बना लो। मैं गर्व करता हुआ चला जाऊँगा यह कहते-कहते 'मैं ब्रह्ममयी की दासी'!

"किसी-किसी को साधना बिना किए ही ईश्वर प्राप्त हो जाते हैं। उन्हें नित्यसिद्ध कहते हैं। जिन्होंने जप-तपादि साधना करके ईश्वर-लाभ किया है, उन्हें कहते हैं साधन-सिद्ध। और फिर कोई-कोई कृपा-सिद्ध हैं—जैसे हजार वर्ष का अन्धेरा कमरा, प्रदीप ले जाने पर एक क्षण में रोशन हो जाता है!

"और फिर हैं हठात् सिद्ध— जैसे गरीब का लड़का बड़े मनुष्य की नजर में पड़ गया। बाबू ने उसको बेटी ब्याह दी। उसके संग उसका घर, मकान, गाड़ी, दास-दासी सब हो गया।

"और है स्वप्न-सिद्ध— स्वप्न में दर्शन हुआ।"

सुरेन्द्र *(सहास्य)*— मैं तो अब सोता हूँ। पीछे बाबू बन जाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण *(सस्नेह)*— तुम तो बाबू हो ही। 'क' में आकार लगाने पर 'का' होता है, फिर और एक आकार देना वृथा है, देने पर वही 'का' ही होगा! *(सब का हास्य)*।

"नित्यसिद्ध अलग श्रेणी है— जैसे अरणिकाष्ठ, ज़रा-सा घिसने पर ही आग और फिर बिना घिसे भी आग होती है। ज़रा-सी साधना करने पर ही नित्यसिद्ध भगवान को प्राप्त कर लेता है, और साधना बिना किए भी पा लेता है।

"किन्तु नित्यसिद्ध भगवान-लाभ करने के पश्चात् साधना करता है। जैसे घीया-कद्दू के पौधे पर पहले फल होता है, फिर पीछे फूल।"

---

* अस्ति इति उपलब्धव्य— 'वह है' इस भाव की प्राप्ति होती है।

पण्डित 'घीया-कद्दू का फल पहले' सुनकर हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण— और नित्यसिद्ध होमा पक्षी जैसा है। उसकी माँ ऊँचे आकाश पर रहती है। जन्म (प्रसव) के बाद बच्चा धरती की ओर गिरता रहता है। गिरते-गिरते ही पंख निकल आते हैं। आँखें खुल जाती हैं। किन्तु धरती पर चोट लगने से पहले ही माँ की ओर चीत्कार करके दौड़ लगाता है— 'माँ कहाँ, माँ कहाँ!' देखो, 'क' लिखते ही प्रह्लाद की आँखों से प्रेमाश्रु-धारा!

ठाकुर नित्यसिद्ध की बात में, अरणिकाष्ठ और होमा पक्षी के दृष्टान्त द्वारा क्या निजी अवस्था को समझा रहे हैं?

ठाकुर पण्डित का विनीत भाव देखकर सन्तुष्ट हुए। पण्डित के स्वभाव के विषय में भक्तों को बता रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— इनका स्वभाव बहुत ही सुन्दर है। मिट्टी की दीवाल में कील ठोकने में कोई कष्ट नहीं होता। पत्थर में कील की चोंच टूट जाती है किन्तु पत्थर का कुछ नहीं होता। ऐसे लोग हैं कि हजार ईश्वर-कथा सुन लें, किसी प्रकार चैतन्य नहीं होता, जैसे मगरमच्छ— शरीर पर तलवार का वार नहीं लगता!

(पाण्डित्य की अपेक्षा साधना अच्छी— विवेक)

पण्डित— घड़ियाल के पेट में बरछा मारने से होता है। *(सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ढेरों शास्त्र पढ़ने से क्या होगा? फिलॉसफी (philosophy)! *(सबका हास्य)*।

पण्डित *(सहास्य)*— हाँ, फिलॉसफी ही तो!

श्रीरामकृष्ण— लम्बी-लम्बी बातें करने से क्या होगा? बाण-शिक्षा लेने के समय पहले केले के वृक्ष को दागना (निशाना लगाना) होता है, फिर सरकण्डे के वृक्ष को; फिर बत्ती पर, फिर उड़ते पक्षी पर।

"इसलिए पहले साकार पर मन स्थिर करना चाहिए।

"और फिर त्रिगुणातीत भक्त है— नित्यभक्त, जैसे नारद आदि। उस

भक्ति में चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम, चिन्मय सेवक— नित्यईश्वर, नित्यभक्त, नित्यधाम।

"जो नेति-नेति ज्ञान-विचार करते हैं, वे अवतार नहीं मानते। हाजरा सुन्दर कहता है— भक्त के लिए ही अवतार है, ज्ञानी के लिए अवतार नहीं। वे तो सोऽहम् बने बैठे हैं।"

ठाकुर और भक्तगण सब ही कुछ काल चुप किए हैं। अब पण्डित बातें करते हैं :

पण्डित— जी, कैसे यह निष्ठुर भाव जाए? हास्य देखने से मांसपेशी (muscles), स्नायु (nerves)में मन चला जाता है। शोक देखकर nervous system स्नायु मण्डल में मन चला जाता है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तभी तो नाराण शास्त्री कहता था— शास्त्र पढ़ने का दोष है, तर्क, विचार— ये सब आकर गिरा देते हैं।

पण्डित— जी, उपाय क्या कुछ भी नहीं? थोड़ा काँट-छाँट (सफाई) कर दें।

श्रीरामकृष्ण— है, विवेक। एक गाना है :

'विवेक नामे तार बेटा रे तत्वकथा ताय सुधावि।'

[उसका विवेक नाम का बेटा है, तत्त्वकथा उससे पूछना।]

"विवेक, वैराग्य, ईश्वर में अनुराग— यही उपाय है। विवेक बिना हुए बात कभी भी ठीक-ठीक नहीं होती। सामाध्यायी बहुत-सी व्याख्या के बाद बोला, 'ईश्वर नीरस!' किसी ने कहा था, 'आमादेर मामादेर एक गोयाल घोड़ा आछे।' (हमारे मामाओं के यहाँ एक गौशाला भर घोड़े हैं।) गौशाला में क्या घोड़े रहते हैं?

(सहास्य) "तुम तो छानाबड़ा (पनीर का बड़ा) हो गए हो। अब दो-चार दिन रस में पड़े रहना तुम्हारे लिए भी अच्छा है, औरों के लिए भी अच्छा! दो-चार दिन।"

पण्डित *(ईषत् हँसकर)*— छानाबड़ा जलकर कोयला हो गया है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ना, ना; तिलचट्टे (cockroach) का रंग हो गया है।

हाजरा— खूब सुन्दर तला गया है— अब रस पी लेगा बढ़िया।

(पूर्वकथा— तोतापुरी का उपदेश, गीता का अर्थ, व्याकुल हो जाओ)

श्रीरामकृष्ण— क्या जानते हो— शास्त्र अधिक पढ़ने की जरूरत नहीं। अधिक पढ़ने से तर्क, विचार आ जाता है। न्यांगटा (तोतापुरी) मुझे सिखाता था, उपदेश देता था— गीता दस बार कहने से जो बनता है गीता का सार वही है! अर्थात् 'गीता-गीता' दस बार बोलते-बोलते 'त्यागी-त्यागी' हो जाता है।

"उपाय—विवेक-वैराग्य और ईश्वर में अनुराग। कैसा अनुराग? ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल। जैसे व्याकुल होकर वत्स के पीछे गाय भागती है।"

पण्डित— वेद में ठीक ऐसे ही है, गाय जैसे वत्स के लिए डकारती है, तुम्हें हम वैसे ही पुकारते हैं।

श्रीरामकृष्ण— व्याकुलता के साथ रोना। और विवेक-वैराग्य लाकर यदि कोई सर्वत्याग कर सके, तब तो फिर साक्षात्कार हो जाएगा।

"वैसी व्याकुलता आने पर उन्माद की अवस्था हो जाती है। तब ज्ञानपथ में ही रहो, या भक्तिपथ में ही रहो। दुर्वासा को ज्ञान-उन्माद हुआ था।

"संसारी के ज्ञान में और सर्वत्यागी के ज्ञान में बड़ा अन्तर है। संसारी (गृही) का ज्ञान— दीप के प्रकाशवत्, घर के भीतर ही प्रकाश होता है। अपनी देह, घर-गृहस्थी के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझ सकता। सर्वत्यागी का ज्ञान है सूर्य के आलोकवत्! उस प्रकाश से घर के भीतर-बाहर सब दिखाई देता है। चैतन्यदेव का ज्ञान है सौरज्ञान— ज्ञानसूर्य का आलोक! और फिर उनके भीतर भक्तिचन्द्र का शीतल आलोक भी था। ब्रह्मज्ञान, भक्तिप्रेम— दोनों ही थे।"

ठाकुर क्या चैतन्यदेव की अवस्था-वर्णन करके अपनी निजी अवस्था बतला रहे हैं?

(ज्ञानयोग-भक्तियोग— कलि में नारदीय भक्ति)

"अभावमुख चैतन्य और भावमुख चैतन्य। भाव-भक्ति एक विशेष पथ है, और अभाव (नेति-नेति ज्ञान-विचार) का एक और है। तुम अभाव की बात कर रहे हो। किन्तु 'वह बड़ा कठिन ठाँव! गुरु-शिष्य देखा नहीं!' (से बड़ो कठिन ठांई गुरु-शिष्य देखा नाहिं!) जनक के पास शुकदेव ब्रह्मज्ञान-उपदेश के लिए गए। जनक बोले, 'पहले दक्षिणा देनी होगी, तुम्हारा ब्रह्मज्ञान हो जाने पर फिर दक्षिणा नहीं दोगे क्योंकि तब गुरु-शिष्य में भेद नहीं रहता।'

"भाव, अभाव सब ही हैं पथ। अनन्त मत, अनन्त पथ। किन्तु एक विशेष बात है। कलि में नारदीय भक्ति— यह विधान है। इस पथ में पहले होती है भक्ति, भक्ति पकने पर भाव, भाव की अपेक्षा उच्च है महाभाव और प्रेम। महाभाव और प्रेम जीव का नहीं होता। जिसका हो गया है, उसे वस्तु-लाभ अर्थात् ईश्वर-लाभ हो गया है।"

पण्डित— जी, बताने लगो तो बहुत बातों द्वारा समझाना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण— तुमि नेजा मुड़ो बाद दिये बोलबे हे। (तुम आदि, अन्त सब छोड़कर कहोगे।)

पञ्चम परिच्छेद

(कालीब्रह्म, ब्रह्म-शक्ति अभेद— सर्वधर्म-समन्वय)

श्रीयुक्त मणिमल्लिक के संग पण्डित बातें करते हैं। मणिमल्लिक ब्राह्मसमाज के जन हैं। पण्डित ब्राह्मसमाज के दोष-गुण लेकर घोर तर्क करते हैं। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे देख रहे हैं और हँस रहे हैं। बीच-बीच में कह रहे हैं,

"यही है सत्व का तम— वीर का भाव। ऐसा चाहिए ही। अन्याय, असत्य देख लेने पर चुप करके नहीं रहना चाहिए। कल्पना करो, बुरी स्त्री परमार्थ की हानि करने आती है, तब ऐसा वीर का भाव धारण करना चाहिए। तब

कहोगे, क्यों साली! मेरी परमार्थ–हानि करेगी? अभी तेरा शरीर चीर दूँगा।''

और फिर हँस कर कह रहे हैं,

''मणिमल्लिक का ब्राह्मसमाज का मत काफी पुराना है— उसके भीतर तुम अपना मत नहीं घुसा सकोगे। पुराना संस्कार क्या झट जाता है? कोई हिन्दु बड़ा भक्त था— सर्वदा जगदम्बा की पूजा और नाम किया करता। मुसलमानों का जब राज हुआ तब भक्त को पकड़ कर मुसलमान बना दिया, और कहा, तू अब मुसलमान हो गया है। कहो अल्लाह! केवल अल्लाह नाम का जप करो। वह काफी कष्ट से 'अल्लाह–अल्लाह' कहने लगा। किन्तु कभी–कभी मुँह से निकल जाता 'जगदम्बा'! तब मुसलमान उसे मारने गए। वह बोला, 'दुहाई, शेख जी! मुझे मारें मत, मैं तुम्हारे अल्लाह का नाम लेने की खूब चेष्टा करता हूँ, किन्तु हमारी जगदम्बा मेरे कण्ठ तक रह रही हैं, तुम्हारे अल्लाह को धक्का देती रहती हैं। *(सबका हास्य)*।

(पण्डित के प्रति, सहास्य)

''मणिमल्लिक को कुछ ना कहो!

''क्या है, जानते हो! रुचि–भेद और जिसके पेट को जो सहन हो। उन्होंने नाना धर्म, नाना मत किए हैं— अधिकारी विशेषों के लिए। सब ब्रह्मज्ञान के अधिकारी नहीं हैं, इसीलिए। और फिर, उन्होंने साकार–पूजा की व्यवस्था की है। माँ ने लड़कों के लिए घर में मछली मँगवाई। उसी मछली से झोल[1], अम्बल[2], भाजा[3] और पुलाव बना लिया। सब के पेटों को पुलाव भी सहन नहीं होता, जभी किसी–किसी के लिए मछली का झोल (रसेदार तरकारी) बना दिया है— वे पेट के रोगी हैं। और किसी की पसन्द है अम्बल (खट्टा) खाना अथवा तली मछली खाना। प्रकृति अलग–अलग है— और फिर अधिकारी–भेद है।''

सब चुप हैं। ठाकुर पण्डित से कहते हैं, ''जाओ, एक बार देव–दर्शन कर आओ, और फिर बाग में टहलो।''

---

1 झोल=तरकारी आदि का रसा। 2 अम्बल=खटाई। 3 भाजा=भुनी हुई (तली हुई)।

साढ़े पाँच बज गए हैं। पण्डित और उनके बन्धु उठे, मन्दिर देखेंगे। भक्तों में से भी कोई-कोई उनके संग गए।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर और मास्टर साथ-साथ टहलते-टहलते गंगातीर के पक्के घाट की ओर जा रहे हैं। ठाकुर मास्टर से कह रहे हैं, ''बाबूराम अब कहता है, पढ़-लिख कर क्या होगा?''

गंगातीर पर पण्डित के साथ ठाकुर फिर दोबारा मिले। ठाकुर कहते हैं, ''काली-मन्दिर में तुम जाओगे नहीं?— जभी आ गया।'' पण्डित थोड़ा घबरा कर बोले, ''जी, चलें, जाकर दर्शन कर लें।''

ठाकुर सहास्यवदन। चान्दनी के अन्दर से काली-मन्दिर की ओर जाते-जाते कह रहे हैं, ''एक गाने में है।'' यह कहकर मधुर सुर से गाते हैं—

''मा कि आमार कालो रे!
कालरूपे दिगम्बरी हृदिपद्म करे आलो रे!''

[मेरी माँ क्या काली है रे! कालरूप में यह दिगम्बरी हृदयपद्म को रोशन करती है जी!]

चान्दनी से प्रांगण में आकर फिर कहते हैं, एक गाने में है—

ज्ञानाग्नि ज्वेले घरे, ब्रह्ममयी रूप देखो ना!

[घर में ज्ञानाग्नि जल रही है, ब्रह्ममयी का रूप देखो ना!]

मन्दिर में आकर ठाकुर ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। माँ के श्री पादपद्मों में जवा-बिल्व हैं। वे त्रिनयनी भक्तों को कितने स्नेह के नेत्रों से देख रही हैं! हाथ में वराभय। माँ बनारसी साड़ी और विविध अलंकार पहने हुए हैं।

श्रीमूर्ति-दर्शन करके भूधर के दादा कहते हैं— ''सुना है, यह नवीन भास्कर का निर्माण है।''

ठाकुर कहते हैं— ''यह तो नहीं जानता। जानता हूँ, ये हैं चिन्मयी!''

भक्तों के संग ठाकुर नाट-मन्दिर में टहलते-टहलते दक्षिणास्य होकर आ रहे हैं। बलिदान का स्थान देखकर पण्डित कहते हैं— ''माँ बकरा कटते देख नहीं पातीं।'' *(सबका हास्य)*।

षष्ठ परिच्छेद

ठाकुर अब लौट रहे हैं। बाबूराम से बोले, अरे आओ! मास्टर भी संग आ गए।

सन्ध्या हो गई। कमरे के पश्चिम वाले गोल बरामदे में आकर ठाकुर बैठ गए। भावस्थ— अर्धबाह्य! निकट बाबूराम और मास्टर हैं।

आजकल ठाकुर को सेवा का कष्ट हो रहा है। राखाल आजकल नहीं रहते। कोई-कोई हैं। किन्तु वे लोग ठाकुर की सब अवस्थाओं में उन्हें छू नहीं सकते। ठाकुर संकेत करके बाबूराम से कहते हैं— "छूना-ना-रा-छू। इस अवस्था में और किसी को छूने नहीं दे सकता। तू रह, तो फिर अच्छा है।"

(ईश्वर-लाभ और कर्मत्याग— नूतन हण्डी— गृही भक्त और नष्टा स्त्री)

पण्डित मन्दिर-दर्शन करके ठाकुर के कमरे में लौट आए हैं। ठाकुर पश्चिम के गोल बरामदे में से कहते हैं, तुम थोड़ा जल पी लो। पण्डित बोले, मैंने सन्ध्या नहीं की। तुरन्त ठाकुर भाव में मतवाले होकर गाना गा रहे हैं, और खड़े हो गए—

गया गंगा प्रभासादि, काशी काञ्ची केबा चाय।
काली काली बोले आमार अजपा यदि फुराय॥
त्रिसन्ध्या जे बोले काली, पूजा सन्ध्या से कि चाय।
सन्ध्या तार सन्धाने फेरे कभु सन्धि नाहि पाय॥
पूजा होम जप यज्ञ आर किछु ना मने लय।
मदनेरइ यागयज्ञ ब्रह्ममयीर रांगा पाय॥

[भावार्थ—मेरा श्वास यदि काली-काली कहते हुए समाप्त हो जाता है तो फिर गया, गंगा, प्रभास आदि कौन माँगता है? जो तीन सन्ध्याओं के समय 'काली' कहता है, वह फिर सन्ध्या-पूजा नहीं चाहता। सन्ध्या भी उसकी खोज में मारी-मारी फिरती रहती है किन्तु कभी भी सन्धि (मेल) नहीं पाती। तब वह मनुष्य पूजा, हवन, जप, यज्ञ किसी की भी मन में इच्छा नहीं करता। मदन (कवि) का याग-यज्ञ तो ये ब्रह्ममयी के लाल (आनन्दमय) चरण हैं।]

ठाकुर प्रेमोन्मत्त होकर फिर और कह रहे हैं—

"सन्ध्या कब तक?— जब तक ॐ कहते हुए मन लीन नहीं होता।"

पण्डित— तो फिर जल पी लेता हूँ, तब फिर सन्ध्या करूँगा।

श्रीरामकृष्ण— मैं तुम्हारे स्रोत में बाधा नहीं दूँगा। समय बिना हुए त्याग ठीक नहीं। फल पक जाने पर फूल अपने-आप ही झड़ जाता है। कच्ची अवस्था में नारियल के पत्ते के साथ खेंचातानी नहीं करते, इस तरह करने पर वृक्ष खराब हो जाता है।

सुरेन्द्र घर जाने की तैयारी कर रहे हैं। मित्रों को बुला रहे हैं। उन्हें गाड़ी पर ले जाएँगे।

सुरेन्द्र— महेन्द्रबाबू, चलोगे?

ठाकुर अभी भी भावस्थ हैं, सम्पूर्ण प्रकृतिस्थ नहीं हुए। वे उसी अवस्था में ही सुरेन्द्र से कहते हैं—

"तुम्हारा घोड़ा जितना वहन कर सकता है, उससे अधिक मत लेना।"

सुरेन्द्र प्रणाम करके चले गए।

पण्डित सन्ध्या करने के लिए गए। मास्टर और बाबूराम कलकत्ता जाएँगे, ठाकुर को प्रणाम कर रहे हैं। ठाकुर अभी भी भावस्थ हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— बात समझ गए ना? ज़रा थोड़ा ठहरो।"

मास्टर बैठ गए। ठाकुर क्या आज्ञा करेंगे— इन्तजार कर रहे हैं। ठाकुर ने संकेत से बाबूराम को बैठने के लिए कहा। बाबूराम मास्टर से बोले, और थोड़ा-सा बैठो। ठाकुर बोले, ज़रा हवा करो। बाबू हवा करते हैं, मास्टर भी करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से, सस्नेह)*— अब क्यों फिर तुम उतना नहीं आते?

मास्टर— जी, विशेष कुछ कारण नहीं है। घर में काम था।

श्रीरामकृष्ण— बाबूराम का घर कौन-सा है, कल टेर (खबर) मिली। तभी तो अब भी उसको रखने के लिए इतना कह रहा हूँ। पक्षी समय जानकर अण्डा फोड़ता है। क्या है, जानते हो? ये शुद्ध आत्मा हैं। अभी तक कामिनी-काञ्चन के भीतर पड़े नहीं। क्या कहते हो?

मास्टर— जी हाँ। अभी तक कोई दाग नहीं लगा।

श्रीरामकृष्ण— नूतन हण्डी। दूध रखने से खराब नहीं होगा।

मास्टर— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— बाबूराम को यहाँ पर रखने की आवश्यकता पड़ी है। अवस्था होती है कि ना! जभी ऐसे व्यक्ति के रहने का प्रयोजन है। वह कहता है, धीरे-धीरे रहूँगा, नहीं तो घर में हंगामा होगा— घर में गड़बड़ करेंगे। मैं कहता हूँ, शनिवार-रविवार आओगे।

इधर पण्डित सन्ध्या करके आ गए हैं। उनके संग में भूधर और उन के ज्येष्ठ भाई* हैं। पण्डित अब जलपान करेंगे।

भूधर के बड़े भाई कहते हैं,

"हमारा क्या होगा; कुछ बता दें। हमारे लिए उपाय क्या है?"

श्रीरामकृष्ण— तुम तो मुमुक्षु हो। व्याकुलता होने से ही ईश्वर मिलते हैं। श्राद्ध का अन्न न खाना। गृहस्थ में नष्टा स्त्री की भाँति रहोगे। नष्टा स्त्री घर का सब काम जैसे खूब मन से करती है, किन्तु उसका मन उपपति के ऊपर रात-दिन पड़ा रहता है। संसार में काम करो, किन्तु मन सर्वदा ईश्वर के ऊपर रखो।

पण्डित जलपान कर रहे हैं। ठाकुर कहते हैं, आसन पर बैठकर खाओ।

खाने के पश्चात् पण्डित से कहते हैं —

"तुमने तो गीता पढ़ी हुई है,— जिसको सब आदर-मान देते हैं, उसमें ईश्वर की विशेष शक्ति होती है।"

पण्डित— यत् यत् विभूतिमत् सत्त्वम् श्रीमदूर्ज्जितमेव वा।

---

* भूधर के बड़े दादा ने शेष जीवन एकाकी अति पवित्र भाव में काशीधाम में काटा था। ठाकुर का सर्वदा चिन्तन करते थे।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारे भीतर अवश्य उनकी शक्ति है।

पण्डित— जी, जो व्रत लिया है, उसे अध्यवसाय के सहित करूँ क्या?

ठाकुर जैसे अनुरोध से कहते हैं, ''हाँ, होगा।'' तत्पश्चात् ही और बातों द्वारा उस बात को जैसे दबा दिया।

श्रीरामकृष्ण— शक्ति को मानना चाहिए। विद्यासागर ने कहा— ''उन्होंने क्या किसी को अधिक शक्ति दी है?''
मैंने कहा— ''तो फिर एक व्यक्ति एक सौ लोगों को कैसे मार सकता है, कुइन (क्वीन) विक्टोरिया का इतना मान-नाम क्यों है, यदि शक्ति न हो तो? मैंने कहा, तुम मानते हो कि नहीं? तब बोला, हाँ, मानता हूँ।''

पण्डित विदाई लेकर उठे और ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। संगी मित्रों ने भी प्रणाम किया।

ठाकुर कह रहे हैं, ''फिर और आना, गांजाखोर गांजाखोर को देखकर आह्लाद (हर्ष) करता है— शायद उसके साथ आलिंगन करे। दूसरा व्यक्ति देख कर मुँह छिपा लेता है। गाय अपने जन को देखकर शरीर चाटती है, अन्य को सींग से धक्का दे देती है।'' *(सब का हास्य)*।

पण्डित के चले जाने पर ठाकुर हँस कर कहते हैं— डाइल्यूटट हो गया है एक दिन में ही! देखा कैसा विनयी! और सारी बातें (मान) लेता है।

आषाढ़ शुक्ला सप्तमी तिथि। पश्चिम के बरामदे में चाँद का प्रकाश पड़ रहा है। ठाकुर वहाँ पर अभी तक बैठे हुए हैं। मास्टर प्रणाम करते हैं। ठाकुर सस्नेह कह रहे हैं, ''जाएगा?''

मास्टर— जी हाँ, तो फिर चलता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— एक दिन मन में सोचा था, सभी के घर में एक-एक बार करके जाऊँगा। तुम्हारे वहाँ पर एक बार जाऊँगा। कैसे?

मास्टर— जी, बड़ा अच्छा है।

दशम खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(संन्यासी सञ्चय नहीं करेगा— ठाकुर 'मद्‌गत-अन्तरात्मा')

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-काली-मन्दिर में हैं। वे अपने कमरे में छोटी खाट पर पूर्वास्य बैठे हैं। भक्तगण फर्श के ऊपर बैठे हैं। आज कार्तिक मास की कृष्णा सप्तमी, 25 कार्तिक, अंग्रेज़ी 9 नवम्बर, 1884 ईसवी।

प्राय: दोपहर का समय। मास्टर ने आकर देखा, भक्तगण क्रमश: आ रहे हैं। श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामी के संग कई-एक ब्राह्मभक्त आए हैं। पुजारी राम चक्रवर्ती भी हैं। क्रमश: महिमाचरण, नारायण, किशोरी आ गए। तनिक पीछे और भी कई भक्त आए।

शीत का प्रारम्भ है। ठाकुर को कुरते की जरूरत थी। मास्टर को लाने के लिए कहा था। वे लट्‌ठे के कुरते के अतिरिक्त एक जीन का कुरता भी लाए थे, किन्तु ठाकुर ने जीन का कुरता लाने के लिए नहीं कहा था।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— तुम वरन् एक ले जाओ। तुम ही पहनना। इसमें दोष नहीं है। अच्छा, तुम्हें किस प्रकार के कुरते को लाने के लिए कहा था ?

मास्टर— जी, आप ने साधारण-से कुरते की बात कही थी। जीन का कुरता

लाने के लिए नहीं कहा था।

श्रीरामकृष्ण— तो फिर वह जीन वाला ही वापस ले जाओ।

(विजय आदि के प्रति)— "देखो, द्वारिकाबाबू ने बनात दी थी। फिर मारवाड़ी जन भी ले आए। मैंने नहीं ली— (ठाकुर और भी कहने वाले थे। तब विजय बातें करने लगे।)

विजय— जी, वही तो है। जो प्रयोजनीय है, वही लेना चाहिए। किसी को तो देनी ही पड़ेगी। मनुष्य के अतिरिक्त और कौन देगा?

श्रीरामकृष्ण— देने वाला वही है, ईश्वर! सास ने कहा, आहा बहू, सब की ही सेवा करने के लिए आदमी हैं, तुम्हारे भी कोई पाँव दबा देता तो अच्छा होता। बहू बोली, अजी! मेरे पाँव हरि दबाएँगे। मुझे किसी की जरूरत नहीं। उसने भक्ति-भाव से वह बात कही थी।

"कोई फकीर अकबर बादशाह के पास कुछ रुपया लेने गया था। बादशाह तब नमाज पढ़ रहा था, और कह रहा था, 'हे खुदा! मुझे धन दो, दौलत दो।' फकीर तब वापस आने लगा। किन्तु बादशाह अकबर ने उसको बैठने का इशारा किया। नमाज के पश्चात् पूछा, 'तुम क्यों चले जा रहे थे?' वह बोला, 'आप ही कह रहे थे— धन दो, दौलत दो।' तभी सोचा, यदि माँगना ही है, तो भिखारी से क्यों, खुदा से माँगूँगा!"

विजय— गया में साधु देखा था, अपनी चेष्टा नहीं। एक दिन भक्तों को खिलाने की इच्छा हुई। देखता हूँ, कहाँ से खूब सारा मैदा, घी आ गया। फल आदि भी आए।

(सञ्चय और तीन श्रेणी के साधु)

श्रीरामकृष्ण *(विजय आदि के प्रति)*— साधु की तीन श्रेणियाँ हैं— उत्तम, मध्यम, अधम। उत्तम, जो खाने के लिए चेष्टा नहीं करते। मध्यम और अधम होते हैं जैसे दण्डी-वण्डी। मध्यम 'नमो नारायण' कह कर खड़े रहते हैं। जो अधम हैं, उन्हें न दें, तो वे झगड़ा करते हैं। *(सबका हास्य)*।

"उत्तम श्रेणी के साधु की अजगर-वृत्ति होती है। उन्हें बैठे हुए ही

खाना मिलता है। अजगर हिलता नहीं। एक छोकरा साधु— बाल ब्रह्मचारी, भिक्षा करने गया। एक लड़की ने आकर भिक्षा दी। उसकी छाती पर उठे हुए स्तन देखकर साधु ने समझा छाती पर फोड़ा हो गया है। तभी पूछा। फिर घर की औरतों ने समझा दिया कि उसके गर्भ से बच्चा होगा, तब ईश्वर स्तन से दूध देंगे। तभी ईश्वर पहले से ही उसका बन्दोबस्त कर रहे हैं। यह बात सुनकर वह छोकरा साधु तो अवाक् रह गया! तब वह बोला, 'तब तो फिर मुझे भिक्षा करने का प्रयोजन नहीं, मेरे लिए भी आहार है'।''

कोई-कोई भक्त सोचते हैं कि तब तो हम भी चेष्टा न करें तो चलेगा।

श्रीरामकृष्ण — जिसके मन में है कि चेष्टा आवश्यक है, उसको चेष्टा करनी ही पड़ेगी।

विजय— भक्तमाल में एक सुन्दर कहानी है।

श्रीरामकृष्ण— तुम बताओ ना!

विजय— आप ही बताइए ना!

श्रीरामकृष्ण — नहीं, तुम्हीं कहो। मुझे इतनी याद नहीं। पहले-पहले सुनना चाहिए। इसीलिए पहले-पहले यह सब सुना करता था।

(ठाकुर की अवस्था— एक राम-चिन्तन— पूर्णज्ञान और प्रेम का लक्षण)

श्रीरामकृष्ण — मेरी अब वह अवस्था नहीं है। हनुमान ने कहा था, मैं तिथि-नक्षत्र नहीं जानता, एक राम-चिन्तन करता हूँ।

''चातक चाहता है केवल निर्मल जल। प्यास से प्राण जाय-जाय, किन्तु ऊँचा होकर (मुख ऊँचा किए वह) आकाश का (आकाश की बूँदों का) जलपान करना चाहता है। गंगा-जमुना, सात समुद्र जल से पूर्ण हैं। वह किन्तु पृथ्वी का जल नहीं पिएगा।

''राम-लक्ष्मण पम्पा सरोवर पर गए थे। लक्ष्मण ने देखा, एक कौवा व्याकुल होकर बार-बार जल पीने जाता है, किन्तु पीता नहीं है। राम से पूछने पर वे बोले, ''भाई! यह कौवा परम भक्त है। रात-दिन 'राम-राम-जप' कर रहा है। इधर प्यास से छाती फटी जा रही है, किन्तु जल नहीं पी पा रहा।

सोचता है, पीने लगा तो फिर 'राम-नाम-जप' रह जाएगा। हलधारी को पूर्णिमा के दिन मैंने कहा, दादा! आज क्या अमावस्या है? *(सब का हास्य)*।

"*(सहास्य)* अजी,! सुना था, जब अमावस्या-पूर्णिमा में भूल हो जाती है, तब पूर्णज्ञान होता है। हलधारी उस पर विश्वास क्यों करता? हलधारी बोला, यह है कलिकाल! इसे (ठाकुर को) फिर लोग मान देते हैं, जिसे अमावस्या-पूर्णिमा-बोध भी नहीं है।"

ठाकुर यह बात कह रहे हैं, तभी महिमाचरण आ गए।

श्रीरामकृष्ण *(सादर)*— आइये,आइये! बैठिए!

(विजय आदि भक्तों के प्रति)— "ऐसी अवस्था में 'अमुक दिन' याद नहीं रहता। उस दिन वेणीपाल के बागान में उत्सव था, दिन भूल हो गया। 'अमुक दिन संक्रान्ति है, अच्छी तरह से हरि-नाम करूँगा'— ऐसी बातें निश्चित नहीं रहतीं। (कुछ क्षण सोचकर) किन्तु 'अमुक आएगा' कहने पर याद रहता है।"

(श्रीरामकृष्ण का मन-प्राण कहाँ— ईश्वर-लाभ और उद्दीपन)

"ईश्वर में सोलह आना मन जाने पर यह अवस्था होती है। राम ने पूछा, 'हनुमान, तुम सीता का सन्देश लाए हो। उसे कैसा देखा, मुझे बताओ।' हनुमान बोले, 'राम! देखा सीता का केवल शरीर पड़ा हुआ है। उसके भीतर मन-प्राण नहीं हैं। सीता ने मन-प्राण जो तुम्हारे पादपद्मों में समर्पण कर दिया है। जभी केवल शरीर पड़ा हुआ है। और काल (यम) आना-जाना कर रहा है। किन्तु क्या करे? केवल शरीर है, मन-प्राण उसमें नहीं हैं।'

"जिसकी चिन्ता करता है, उसी की सत्ता मिलती है। रात-दिन ईश्वर-चिन्तन करने से ईश्वर की सत्ता-लाभ होती है। नमक का पुतला समुद्र मापने के लिए गया, वही हो गया।

"पुस्तक अथवा शास्त्र का क्या उद्देश्य?— ईश्वर-लाभ। साधु की पोथी को किसी ने खोलकर देखा, प्रत्येक पन्ने पर केवल 'राम' लिखा हुआ,

और कुछ भी नहीं।

"ईश्वर के ऊपर प्यार आ जाने पर तनिक से ही उद्दीपन होता है। तब एक बार 'राम-नाम' करने से करोड़ों सन्ध्याओं का फल होता है।

"मेघ देखने से मोर को उद्दीपन होता है, आनन्द से पंख फैलाकर नृत्य करता है। श्रीमती को भी उसी प्रकार हुआ करता था। मेघ देखते ही कृष्ण की स्मृति मन में आ जाती।

"चैतन्य महाप्रभु मेड़ गाँव के पास से जा रहे थे। सुना, इस गाँव की मिट्टी से खोल (एक वाद्य यन्त्र) तैयार होते हैं। तुरन्त भाव में विह्वल हो उठे, क्योंकि हरि-नाम-कीर्त्तन के समय खोल बजता है।

"किसे उद्दीपन होता है ? जिसकी विषयबुद्धि का त्याग हो गया है। विषयरस जिसका सूख जाता है, उसका थोड़े से ही उद्दीपन हो जाता है। दियासलाई भीगी होने पर हज़ार घिसो, नहीं जलेगी। उसका जल यदि सूख जाता है, तो ज़रा घिसने से ही दप् करके जल उठती है।"

(ईश्वर-लाभ के पश्चात् दुःख में, मरण में स्थिरबुद्धि और आत्म-समर्पण)

"देह का सुख-दुःख तो है ही। जिसका ईश्वर-लाभ हो गया है, वह मन, प्राण, देह, आत्मा— समस्त उनको समर्पण कर देता है। पम्पा सरोवर पर स्नान के समय राम-लक्ष्मण ने सरोवर के निकट धरती में धनुष खोंस (घुसा) कर रख दिया। स्नान के पश्चात् लक्ष्मण ने उठकर देखा कि धनुष रक्ताक्त (खून से लतपथ) हुआ है। राम देखकर बोले, 'भाई, देखो-देखो, लगता है किसी जीव की हिंसा हो गई है।' लक्ष्मण ने मिट्टी खोदकर देखा, 'एक बड़ा मेंढ़क है। मुमूर्षू अवस्था है।' राम करुण स्वर से कहने लगे, 'क्यों तुमने शब्द नहीं किया ? हम तुम्हें बचाने की चेष्टा करते! जब साँप पकड़ता है तब तो खूब चीत्कार करते हो।' मेंढ़क बोला, 'राम! जब साँप पकड़ता है तब मैं यह बोलकर चीत्कार करता हूँ— 'राम रक्षा करो, राम रक्षा करो।' अब देख रहा हूँ राम ही मुझे मार रहे हैं। जभी चुप किए हुए हूँ'।"

द्वितीय परिच्छेद

(स्वस्वरूप में कैसे रहना ? ज्ञानयोग क्यों कठिन ?)

ठाकुर थोड़ा चुप रहे। महिमा आदि भक्तों को देख रहे हैं।

ठाकुर ने सुना है कि महिमाचरण गुरु नहीं मानते। अब ठाकुर फिर और बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— गुरु-वाक्य पर विश्वास करना उचित। गुरु के चरित्र की ओर देखने की आवश्यकता नहीं। 'यद्यपि आमार गुरु शुंडी बाड़ी जाय, तथापि आमार गुरु नित्यानन्द राय।' (यद्यपि मेरा गुरु शराबखाने में जाता है, तथापि मेरा गुरु नित्यानन्द राय है।)

"कोई चण्डी-भागवत सुनाता था। उसने कहा, 'झाड़ू अस्पृश्य तो चाहे है किन्तु स्थान को शुद्ध करता है'।"

महिमाचरण वेदान्त-चर्चा किया करते हैं। उद्देश्य है ब्रह्मज्ञान। ज्ञानी का पथ पकड़ा है और सर्वदा विचार करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— ज्ञानी का उद्देश्य है स्वस्वरूप को जानना। इसी का नाम है ज्ञान, इसी का नाम है मुक्ति। परब्रह्म— यह ही है निज का स्वरूप। 'मैं और परब्रह्म एक'— माया का कारण (आवरण) जानने नहीं देता।

"हरीश से कहा था, और कुछ नहीं है, सोने के ऊपर कुछ टोकरे मिट्टी पड़ी हुई है, उस मिट्टी को हटा देना, बस।

"भक्तगण 'मैं' रखते हैं, ज्ञानी नहीं रखते। किस प्रकार स्वस्वरूप में रहा जाता है— न्यांग्टा (नागा तोतापुरी) उपदेश देता था— मन का बुद्धि में लय करो, बुद्धि का आत्मा में लय करो। तभी स्वस्वरूप में रहोगे।

"किन्तु 'मैं' रहेगा ही रहेगा, जाता नहीं। जैसे अनन्त जल-राशि, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दाहिने-बायें, जल से परिपूर्ण! उसी जल के बीच एक जलपूर्ण कुम्भ है। भीतर बाहर जल, किन्तु तब भी कुम्भ भी है— 'मैं' रूप कुम्भ।

(पूर्वकथा— कालीबाड़ी में वज्रपात— ब्रह्मज्ञानी का शरीर और चरित्र)

''ज्ञानी का शरीर जैसे का तैसा ही रहता है, किन्तु ज्ञानाग्नि से काम आदि रिपु दग्ध हो जाते हैं। कालीबाड़ी में काफी दिन पहले आँधी-तूफान-वर्षा होकर फिर काली-मन्दिर में वज्रपात हुआ था। हम ने जाकर देखा था, दरवाजों को कुछ नहीं हुआ, किन्तु स्क्रुओं के सिर टूट गए थे। कपाट (दरवाजे) जैसे शरीर, काम आदि की आसक्तियाँ जैसे स्क्रु-समूह।

''ज्ञानी केवल ईश्वर की बात पसन्द करता है। विषय की बातें होने पर उसे बड़ा कष्ट होता है। विषयीगण और तरह के लोग होते हैं। उनकी अविद्या-पगड़ी नहीं खिसकती। तभी घूम-फिरकर उन्हीं विषय की बातों को ले आते हैं।

''वेद में सप्त भूमि की बात है। पञ्चम भूमि में जब चढ़ जाता है तब ईश्वर-कथा के अतिरिक्त कुछ भी सुन नहीं सकता, और बोल भी नहीं सकता। तब मुख से केवल ज्ञान-उपदेश निकलता है।''

इन समस्त बातों में क्या श्रीरामकृष्ण अपनी अवस्था का वर्णन कर रहे हैं? ठाकुर फिर और कहते हैं—

''वेद में है 'सच्चिदानन्द ब्रह्म'। ब्रह्म एक भी नहीं, दो भी नहीं। एक-दो के मध्य। अस्ति भी कहा नहीं जाता, नास्ति भी कहा नहीं जाता। किन्तु अस्ति-नास्ति के मध्य।''

(श्रीरामकृष्ण और भक्तियोग— रागभक्ति होने पर ईश्वर-लाभ)

श्रीरामकृष्ण— रागभक्ति आने पर, अर्थात् ईश्वर में प्यार आ जाने पर ही तब उन्हें प्राप्त किया जाता है। वैधीभक्ति होने में जैसी, जाने में भी वैसी। इतना जप, इतना ध्यान, इतना याग-यज्ञ-होम करेगा, इन-इन उपचारों से पूजा करेगा, पूजा के समय यह-यह मन्त्र-पाठ करेगा— इन सब का नाम है वैधीभक्ति। होने में जैसी, जाने में भी वैसी! कितने लोग कहते हैं, 'अरे भाई, कितना हविष्य किया है! कितनी बार घर में पूजा लाया हूँ! किन्तु क्या हुआ?'

"किन्तु रागभक्ति का पतन नहीं। किनकी रागभक्ति होती है?— जिनका पूर्वजन्म में बहुत कुछ किया हुआ होता है, अथवा जो हैं नित्यसिद्ध। जैसे एक भग्न घर में वन-जंगल काटते-काटते नल वाला एक फव्वारा मिल गया! मिट्टी, सुरखी आदि से ढका हुआ था। उन्हें हटा देने पर तुरन्त फर्-फर् करके जल निकलने लग गया!

"जिनकी रागभक्ति है, वे ऐसी बात नहीं कहते, 'भाई, कितना हविष्य किया है, किन्तु क्या हुआ?' जो नई-नई खेती करते हैं, उनके यदि फसल न हो तो जमीन छोड़ देते हैं। किन्तु खानदानी किसान फसल हो या न हो, फिर दोबारा खेती करेगा ही। उनके बाप-दादा किसानी करते आए हैं। वे जानते हैं कि खेती करके ही खाना होगा।

"जिन की रागभक्ति है, उनकी ही आन्तरिक होती है। ईश्वर उनका भार लेते हैं। हस्पताल में नाम लिखवा लेने से आराम बिना हुए डॉक्टर छोड़ता नहीं।

"ईश्वर जिन्हें पकड़े हुए हैं, उन्हें कोई भय नहीं। मैदान की मेंढ़ के ऊपर चलते-चलते जो लड़का बाप को पकड़े रहता है, वह पकड़ने पर भी गिर जाता है— यदि वह अन्यमनस्क होकर हाथ छोड़ दे। किन्तु बाप जिस लड़के को पकड़े रहता है, वह नहीं गिरता।"

(रागभक्ति होने पर केवल ईश्वर-कथा— संसार-त्याग और गृहस्थ)

"विश्वास से क्या नहीं हो सकता? जिसका ठीक (विश्वास) है, उसका उन सब में विश्वास होता है— साकार-निराकार, राम, कृष्ण, भगवती।

"उस देश में जाते समय रास्ते में वर्षा-तूफान आया। मैदान के बीच में तो फिर डाकुओं का भी भय होता है। तब सब ही कहने लगा— राम, कृष्ण, भगवती। और फिर बोला, हनुमान! अच्छा, सब कुछ कहने लगा— इसका क्या मतलब?

"यह कैसे है, जानते हो? जब नौकर वा दासी पैसे लेकर बाजार

जाता है, तब कह-कह कर लेता है यह आलू के पैसे, ये बैंगन के पैसे, ये मछली के पैसे। सब अलग-अलग हिसाब करके लेकर तब फिर मिला देता है।

"ईश्वर के ऊपर प्यार हो जाने पर केवल उनकी ही बातें कहने की इच्छा होती है। जो जिसको प्यार करता है, वह उसकी बातें सुनने और बोलने लगता है।

"संसारी लोगों को लड़के की बातें कहते-कहते उनके मुँह में लार टपकती है। यदि कोई लड़के की सुख्याति करता है तो झट कहेगा, ओ रे! अपने चाचा के लिए पाँव धोने के लिए जल ला।

"जो अमरूद पसन्द करते हैं, उनके निकट अमरूद की सुख्याति करने पर वे बड़े खुश होते हैं। यदि कोई अमरूद की निन्दा करे तो शायद कह उठेगा, तेरे बाप के चौदह पुरुषों ने क्या कभी अमरूद की फसल की है?"

ठाकुर महिमाचरण से ऐसा कह रहे हैं क्योंकि महिमा संसारी हैं।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— संसार का एकदम त्याग करने की क्या जरूरत है? आसक्ति जाने से ही हुआ। किन्तु साधना चाहिए। इन्द्रियों के साथ युद्ध करना पड़ता है।

"किले के भीतर रहकर ही युद्ध करने में और भी सुविधा है। किले से अनेक सहायता मिल जाती है। संसार (गृह) भोग का स्थान है, एक-एक वस्तु को भोग करके तुरन्त त्याग करना होता है। मेरी साध थी, सोने की करधनी (गोट) पहनूँ। बाद में वह मिल भी गई, सोने की करधनी पहनी। किन्तु पहनने के पश्चात् तत्क्षण खोलनी होगी।

"प्याज खा लिया और विचार करने लगा— मन! इसका नाम है प्याज। फिर मुख में एक बार इधर-उधर, एक बार सब तरफ करके फिर फेंक दिया।"

तृतीय परिच्छेद

(संकीर्त्तनानन्द में)

आज एक गायक आएँगे, सम्प्रदाय-मण्डली लेकर कीर्त्तन करेंगे।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बीच-बीच में भक्तों से पूछते हैं, "कहाँ, कीर्त्तन कहाँ है ?"

महिमा— हम लोग अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण— नहीं जी, ऐसा तो हमारा बारह मास रहता है।

नेपथ्य में कोई कहता है, " 'कीर्त्तन' आ गया है। 'कीर्त्तन' आ गया है ?"

श्रीरामकृष्ण आनन्द में भर कर बोले, "कहाँ आया ?"

कमरे के दक्षिण-पूर्व वाले लम्बे बरामदे में मादुर (चटाई) बिछा दी गई। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "थोड़ा-सा गंगाजल दो, कितने विषयी लोगों ने पाँव दिए हैं !"

बाली-निवासी प्यारी बाबू की स्त्री और लड़कियाँ काली-मन्दिर-दर्शन करने आई हैं। कीर्त्तन होने की तैयारी देखकर उनकी सुनने की इच्छा हुई। एक जन आकर ठाकुर से कहते हैं, "वे पूछती हैं कि क्या कमरे में जगह होगी, क्या वे बैठ सकतीं हैं ?" ठाकुर कीर्त्तन सुनते-सुनते ही कहते हैं, "ना-ना"। (अर्थात् कमरे में) जगह कहाँ ?

ठीक इसी समय नारायण आ उपस्थित हुए और ठाकुर को प्रणाम किया।

ठाकुर बोले, "तू क्यों आया, इतना मारा तेरे घर के लोगों ने!" नारायण ठाकुर के कमरे की ओर जा रहे हैं— देखकर ठाकुर ने बाबूराम से इशारा किया, "उसे खाने के लिए दे दो।"

नारायण कमरे में गए। हठात् ठाकुर ने उठकर कमरे में प्रवेश किया। नारायण को अपने हाथ से खिलाएँगे। खिलाने के पश्चात् फिर दोबारा आकर कीर्त्तन के स्थान पर बैठ गए।

चतुर्थ परिच्छेद

भक्तों के साथ संकीर्त्तनानन्द में

बहुत-से भक्त आए हैं। श्रीयुक्त विजय गोस्वामी, महिमाचरण, नारायण, अधर, मास्टर, छोटे गोपाल इत्यादि। राखाल, बलराम अब श्री वृन्दावन-धाम में हैं।

समय— 3-4 बज गए हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण बरामदे में कीर्त्तन सुन रहे हैं। पास आकर नारायण बैठ गए। और-और भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं।

अब अधर आ उपस्थित हुए। अधर को देख कर ठाकुर जैसे उन्मत्त-से हो गए। अधर के प्रणाम करके आसन ग्रहण कर लेने पर ठाकुर ने उनको और भी निकट बैठने का इशारा किया।

कीर्त्तनीये ने कीर्त्तन समाप्त किया। सभा भंग हुई। भक्तगण बाग में इधर-उधर टहलते हैं। कोई-कोई माँ काली के और श्री राधाकान्त के मन्दिर में आरती-दर्शन करने गए।

सन्ध्या के पश्चात् ठाकुर के कमरे में फिर भक्तगण आ गए।

ठाकुर के कमरे में फिर दोबारा कीर्त्तन की तैयारी हो रही है। ठाकुर को खूब उत्साह है, कह रहे हैं, ''इधर एक बत्ती रखो।'' डबल बत्ती जलाने से खूब प्रकाश हो गया।

ठाकुर ने विजय से कहा, ''तुम ऐसे स्थान पर क्यों बैठे हो? इधर को सरक कर बैठो।''

अब संकीर्त्तन में खूब अच्छा जोश आ गया। ठाकुर मतवाले होकर नृत्य करते हैं। भक्तगण उन्हें अच्छी तरह से घेर कर नाच रहे हैं। विजय नृत्य करते-करते दिगम्बर हो गए हैं, होश नहीं है।

कीर्त्तनान्ते विजय चाबी खोज रहे हैं, कहीं गिर गई है। ठाकुर कह रहे हैं, एखाने एकटा हरिबोल खाय। (यहाँ पर एक हरिबोल-ध्वनि खाती है)— यह कहकर हँस रहे हैं। विजय को और भी कहते हैं, ''वह सब फिर क्यों!'' (अर्थात् चाबी के संग में फिर और क्यों सम्पर्क रखना!)

किशोरी प्रणाम करके विदा लेते हैं। ठाकुर ने जैसे स्नेह से आर्द्र (तर) होकर उनकी छाती (वक्ष) पर हाथ दिया और कहा, ''तबे एसो।'' (तो फिर आना)। बातें जैसे करुणा से भरपूर हैं। कुछ क्षण पश्चात् मणि और गोपाल ने निकट आकर प्रणाम किया, वे विदा लेंगे। और फिर वही स्नेह भरी वाणी। बातों से मानो मधु झर रहा है। कहते हैं, ''कल प्रात: उठकर चले जाना, फिर और हिम (सर्दी) न लग जाए!''

(भक्तसंग— भक्त-कथा-प्रसंग में)

मणि और गोपाल का फिर जाना नहीं हुआ, वे आज रात को रहेंगे। वे तथा और भी 2-1 जन भक्त फर्श पर बैठे हैं। कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर श्रीयुक्त राम चक्रवर्ती से कहते हैं, ''राम, यहाँ पर जो और एक पापोश (पायदान) था, वह कहाँ गया?''

ठाकुर को सारे दिन अवसर नहीं मिला, तनिक-सा भी विश्राम नहीं कर पाए। भक्तों को छोड़कर कहाँ जाएँ! अब एक बार बाहर जा रहे हैं। कमरे में लौटकर देखा कि मणि रामलाल से सुनकर गाना लिख रहे हैं—

''तारो तारिणी!
एबार त्वरित करिये तपन-तनय त्रासे त्रासित''— इत्यादि।
[अब तारो शीघ्र माँ,
हे तारिणी, तपन-तनय (यमराज) के भय से बहुत त्रसित हूँ, (मैं)।]

ठाकुर मणि से पूछ रहे हैं, ''क्या लिख रहे हो?'' गाने की बात सुनकर कहते हैं, ''यह तो बड़ा भारी गाना है।''

ठाकुर रात को थोड़ी-सी सूजी की पायस (खीर) और एक या दो लुचि (पूरी) खाते हैं। ठाकुर रामलाल से कह रहे हैं, ''सूजी है क्या?''

एक दो लाइनें लिख कर मणि ने गाना लिखना बन्द कर दिया।

ठाकुर धरती पर आसन पर बैठ कर सूजी खा रहे हैं।

ठाकुर फिर दोबारा छोटी खाट पर बैठ गए। मास्टर खाट के पास रखे हुए पापोष (पायदान) के ऊपर बैठे हुए श्री ठाकुर के साथ बातें कर रहे हैं। ठाकुर नारायण की बातें करते-करते भावयुक्त हो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— आज नारायण को देखा!

मास्टर— जी हाँ, आँखें गीली! मुख देखकर रोना आया।

श्रीरामकृष्ण— उसको देखकर जैसे वात्सल्य होता है। यहाँ पर आता है— इस कारण उसे घर में मारते हैं। उसका तरफदार कोई नहीं है। 'कुब्जा तोमाय कु बुझाय। राइ पक्षे बुझाय एमन केउ नाई।'

(कुब्जा तुम्हें कौन बुझाए, समझाए? राधा की तरफ से कोई समझाए, ऐसा कोई नहीं है।)

मास्टर *(सहास्य)*— हरिपद के घर पुस्तकें रख कर पलायन।

श्रीरामकृष्ण— यह तो ठीक नहीं किया।

ठाकुर चुप रहे। कुछ क्षणों के पश्चात् फिर बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— देखो, उसकी बड़ी सत्ता है। वह न होता तो कीर्त्तन सुनते-सुनते मेरा छोड़ना! मुझे कमरे के भीतर आना पड़ा। (मेरा) कीर्त्तन छोड़कर आना— ऐसा कभी भी नहीं हुआ।

ठाकुर चुप हैं। कुछ क्षण पश्चात् बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— उससे भाव में पूछा था। तो एक बात मुझे बोला— मैं आनन्द में हूँ। *(मास्टर के प्रति)* तुम उसको कुछ खरीद कर कभी-कभी खिलाना— वात्सल्य-भाव में।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण तेजचन्द्र की बात कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— एक बार उससे पूछ कर देखना। वह मेरे विषय में एक ही बार में (एकदम) क्या कहता है! 'ज्ञानी' या कुछ और? सुना था, तेजचन्द्र ऐसी बड़ी-बड़ी बातें नहीं कहता।

(गोपाल के प्रति)— देखो, तेजचन्द्र को शनि-मंगलवार को आने के लिए कहना।

ठाकुर फर्श पर आसन के ऊपर बैठे हैं। सूजी खा रहे हैं। पास ही दीवट पर प्रदीप जल रहा है। ठाकुर के पास मास्टर बैठे हैं। ठाकुर कह रहे हैं, "कोई मिठाई है क्या?" मास्टर नए गुड़ के सन्देश लाए थे। रामलाल से कहा, सन्देश ताक (shelf- फट्टे) के ऊपर हैं।

श्रीरामकृष्ण— कहाँ है ? ला ना!

मास्टर व्यस्त होकर (घबराकर) ताक पर खोजने लगे। देखा, वहाँ सन्देश नहीं हैं। लगता है भक्तों की सेवा में खरच हो गए हैं। अप्रस्तुत (हैरान, हक्के-बक्के) होकर ठाकुर के निकट लौट कर बैठ गए। ठाकुर बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, एक बार यदि तुम्हारे स्कूल में जाकर देखूँ!

मास्टर समझे, इन्हें नारायण से स्कूल में जाकर मिलने की इच्छा है।

मास्टर— हमारे घर जाकर बैठने से हो जाएगा।

श्रीरामकृष्ण— नहीं, एक और विशेष भाव है। क्या है, जानते हो? वहाँ पर और कोई छोकरा है कि नहीं, एक बार देखता।

मास्टर— आप अवश्य जाएँ। और लोग देखने जाते हैं, उसी प्रकार आप भी जाना।

ठाकुर आहार के पश्चात् छोटी खाट पर जाकर बैठ गए हैं। किसी भक्त ने चिलम (तम्बाकू) तैयार कर दी। ठाकुर तम्बाकू पीते हैं। इसी बीच मास्टर और गोपाल ने बरामदे में बैठ कर रोटी और दाल इत्यादि का आहार (जलपान) किया। वे लोग नहबत में सोएँगे— निश्चय किया।

खाने के पश्चात् मास्टर खाट के पास वाले पाँवपोष पर बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— नहबत में यदि हाँड़िकुँडि (सामान) पड़ा हो तो यहाँ पर सो जाना, इसी कमरे में।

मास्टर— जो आज्ञा।

पञ्चम परिच्छेद

(सेवक के संग)

रात के साढ़े दस-ग्यारह हो गए हैं। ठाकुर छोटी खाट पर तकिये का ठेसा लगा कर विश्राम कर रहे हैं। मणि धरती पर बैठे हैं। मणि के साथ ठाकुर

बातें कर रहे हैं। कमरे की दीवाल के निकट उसी दीवट पर प्रदीप में आलोक जल रहा है।

ठाकुर अहेतुक कृपासिन्धु हैं। मणि की सेवा लेंगे।

श्रीरामकृष्ण— देख, मेरे पैरों में दर्द है। तनिक हाथ फेर दो तो!

मणि ठाकुर के चरणों में छोटी खाट के ऊपर बैठ गए और अंक में उनके दोनों पैर लेकर आहिस्ते-आहिस्ते हाथ फेर रहे हैं। ठाकुर बीच-बीच में बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— आज सब कैसी बातें हुईं?

मणि— जी, खूब भली।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अकबर बादशाह की कैसी बात हुई?

मणि— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— क्या बात? बोलो, देखूँ!

मणि— एक फकीर अकबर बादशाह से मिलने गए थे। अकबर तब नमाज पढ़ रहे थे। नमाज पढ़ते-पढ़ते ईश्वर से धन-दौलत माँग रहे थे। तब फकीर धीरे-धीरे उस कमरे से जाने लगे। फिर अकबर के पूछने पर वे बोले, 'यदि भिक्षा करनी है तो भिखारी से क्यों करूँ?'

श्रीरामकृष्ण— और क्या-क्या बातें हुई थीं?

मणि— सञ्चय की बातें खूब हुई थीं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्या-क्या हुईं?

मणि— जब तक चेष्टा करने का बोध रहता है तब तक चेष्टा करनी चाहिए। सञ्चय की बात सींती में कैसी हुई थी!

श्रीरामकृष्ण— क्या बात?

मणि— जो उनके ऊपर पूरा निर्भर करता है, उसका भार वे लेते हैं। नाबालिग का जैसे वली (guardian) सब भार ले लेता है। और एक बात सुनी थी कि निमन्त्रण वाले घर में छोटा लड़का साथ बैठने की जगह नहीं ले सकता। उसको खाने के लिए कोई और बिठा देता है।

श्रीरामकृष्ण— ना! यह ठीक नहीं हुआ। बाप के द्वारा लड़के का हाथ पकड़

कर ले जाने पर फिर वह लड़का नहीं गिरता।

मणि— और आज आप ने तीन प्रकार के साधुओं की बात कही थी। उत्तम साधु को बैठे हुए ही भोजन मिलता है। आप ने उस छोकरे साधु की कहानी कही, जिसने लड़की के स्तन देख कर कहा था, छाती पर फोड़े क्यों हुए हैं? और भी बहुत-सी अद्भुत बातें कहीं। सब की सब अन्तिम बातें हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्या-क्या बातें?

मणि— वही पम्पा के कव्वे की कथा। राम-नाम का रात-दिन जप कर रहा है, तभी जल के निकट जाता है किन्तु पी नहीं पाता। और उस साधु की पोथी की बात। उसमें केवल 'ॐ राम'— बस यही लिखा हुआ था। और हनुमान ने राम से जो कहा!

श्रीरामकृष्ण— क्या कहा?

मणि— सीता को देखकर आया हूँ— केवल देह ही पड़ी हुई है, मन-प्राण समस्त तुम्हारे चरणों में समर्पण किया हुआ है।

"और चातक की बात— स्वच्छ जल (स्वाति नक्षत्र का जल) के अतिरिक्त और कुछ नहीं पिएगा।

"और ज्ञानयोग और भक्तियोग की बात।"

श्रीरामकृष्ण— क्या?

मणि— जब तक कुम्भ-ज्ञान है, तब तक 'मैं'-कुम्भ रहेगा ही रहेगा। जब तक 'मैं' ज्ञान है, तब तक 'मैं भक्त, तुम भगवान' है।

श्रीरामकृष्ण— ना, कुम्भ-ज्ञान रहे व ना रहे, कुम्भ जाता नहीं। 'मैं' जाने वाला नहीं। हजार विचार करो, वह नहीं जाएगा।

मणि तनिक देर चुप रहे। फिर दोबारा कहते हैं—

मणि— कालीबाड़ी में ईशान मुखर्जी के साथ बातें हुई थीं। बड़े भाग्य से तब मैं वहाँ पर था और सुन पाया था।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, क्या-क्या बात हुई थी? बोलो तो, सुनूँ ज़रा!

मणि— वही बताया था, कर्म-काण्ड। आदि काण्ड। शम्भुमल्लिक से कहा

था, यदि ईश्वर तुम्हारे सामने आएँ तो क्या फिर तुम कुछ हस्पताल, डिस्पेन्सरियाँ माँगोगे?

"और भी एक विशेष बात हुई थी— जब तक कर्म में आसक्ति रहती है, तब तक ईश्वर दिखाई नहीं देते। केशवसेन से वह बात कही थी।"

श्रीरामकृष्ण— क्या?

मणि— जब तक बच्चा चूसनी लेकर भूला रहता है तब तक माँ खाना-वाना पका लेती है। चूसनी फेंक कर जब चीत्कार करता है, तब माँ भात का पतीला नीचे उतार कर बच्चे के पास जाती है।

"और भी एक बात उसी दिन हुई थी। लक्ष्मण ने पूछा था, 'भगवान के कहाँ-कहाँ पर दर्शन हो सकते हैं।' राम ने बहुत-सी बातें बता कर फिर कहा— भाई, जिस मनुष्य में ऊर्जिता भक्ति दिखाई देगी— 'हँसता, रोता, नाचता, गाता, प्रेम में मतवाला होगा'— वहाँ पर समझोगे मैं (भगवान्) हूँ।"

श्रीरामकृष्ण— आहा! आहा!

ठाकुर कुछ क्षण चुप किए रहे!

मणि— ईशान से केवल निवृत्ति की बातें कहीं। उस दिन से बहुतों को अक्ल हुई है। कर्त्तव्य-कर्म कम करने की ओर झुके हैं। कहा था— 'लंका में रावण मर गया, बेहुला रो-रोकर आकुल हो गई।'

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने यह बात सुनकर उच्च हास्य किया।

मणि *(अति विनीत भाव में)*— अच्छा जी, कर्त्तव्य-कर्म— हंगामा— कम करना तो अच्छा है?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, किन्तु कोई सम्मुख आ पड़े तो वह और बात है। साधु या गरीब व्यक्ति सम्मुख आ जाए तब उनकी सेवा करना उचित है।

मणि— और उस दिन ईशान मुखर्जी के खुशामदियों की बात तो सुन्दर कही। लाश के ऊपर जैसे गिद्ध पड़ता है (मड़ार ऊपर जेमन गिद्ध पड़े)। यह बात आप ने पण्डित पद्मलोचन से कही थी।

श्रीरामकृष्ण— ना, 'उलोर बामनदास'— उलो के बामनदास से।

कुछ क्षण पश्चात् मणि छोटी खाट के पास पायदान पर बैठ गए।

ठाकुर को तंद्रा आ रही है। उन्होंने मणि से कहा, तुम जाओ लेटो। गोपाल कहाँ गया? तुम दरवाजा बन्द रखना।

अगले दिन सोमवार है। श्रीरामकृष्ण बिछौने से अति भोर में उठ गए हैं और देवी-देवताओं के नाम कर रहे हैं। बीच-बीच में गंगा-दर्शन कर रहे हैं। इधर माँ काली के और श्री श्री राधाकान्त के मन्दिर में 'मंगलारती' हो रही है। मणि ठाकुर के कमरे में धरती पर सोए थे। वे भी शय्या से उठकर सब दर्शन कर रहे हैं और सुन रहे हैं।

प्रात:कृत्य करने के उपरान्त वे ठाकुर के पास आकर बैठ गए।

ठाकुर ने आज स्नान किया। स्नानान्ते श्री काली-मन्दिर में जा रहे हैं। मणि संग में हैं। ठाकुर ने उन्हें कमरे में ताला लगाने के लिए कहा।

काली-मन्दिर में जाकर ठाकुर आसन पर बैठ गए और फूल लेकर कभी अपने मस्तक पर, कभी माँ काली के पादपद्मों में दे रहे हैं। एक बार चँवर लेकर डुलाया। और फिर अपने कमरे में लौट आए। मणि को फिर चाबी से खोलने के लिए कहा। कमरे में प्रवेश करके छोटी खाट पर बैठ गए। अब भाव में विभोर— ठाकुर नाम कर रहे हैं। मणि पृथ्वी पर अकेले बैठे हैं।

अब ठाकुर गाना गा रहे हैं। भाव में मतवाले होकर गाने के बहाने क्या मणि को सिखा रहे हैं कि काली ही ब्रह्म है। काली निर्गुणा और फिर सगुणा— अरूप और फिर अनन्तरूपिणी।

गाना— के जाने काली केमन?
षड़दर्शने ना पाय दर्शन॥ (पूरा गाना व अर्थ पृष्ठ 18-19 पर है।)

गाना— ए सब क्षेपा मेयेर खेला।
(जार मायाय त्रिभुवन विभोला)(मागीर आप्तभावे गुप्तलीला)
से जे आपनि क्षेपा, कर्त्ता क्षेपा, क्षेपा दुटा चेला॥
कि रूप कि गुण भंगी, कि भाव किछुइ जाय न बोला।
जार नाम जपिये कपाल पोड़े कण्ठे विषेर ज्वाला॥

सगुणे निर्गुणे बांधिए विवाद, ढयाला दिये भाँगछे ढयाला।
मागी सकल विषये समान राजी नाराज केवल काजेर वेला॥
प्रसाद बोले थाको बोसे भवार्णवे भासिये भेला।
जखन आसबे जोयार उजिये जाबे, भाँटिये जाबे भाँटार बेला॥

[भावार्थ— यह सम्पूर्ण पगली माँ का खेल है। (जिस की माया में त्रिभुवन भूला हुआ है), (स्त्री की अभ्रान्त गुप्त लीला है, यह सब।) वह स्वयं पगली है, मालिक पगला है और उसके दोनों चेले पागल हैं। क्या रूप, क्या गुण और क्या रंग-ढंग हैं, क्या भाव है, कुछ भी नहीं कहा जाता। जिनका नाम जपने से शिवजी का कपाल जल रहा है और कण्ठ में विष की ज्वाला है, सगुण और निर्गुण में विवाद लगा कर जो ढेले से ढेला तोड़ती है, यह स्त्री सब विषयों में प्रसन्न रहती है परन्तु केवल काम के समय नाराज हो जाती है। प्रसाद कहते हैं भाव-समुद्र में जीवनतरी को तैरा कर बैठे रहो। जब ज्वार आएगी तो यह ऊपर चली जाएगी और भाटे के समय नीचे चली आएगी।]

गाना— काली के जाने तोमाय मा (तुमि अनन्तरूपिणी)!
तुमि महाविद्या, अनादि, अनाद्या, भवबन्धेर-बन्धन हारिणी तारिणी!
गिरिजा, गोपजा, गोबिन्दमोहिनी, शारदे वरदे नगेन्द्रनन्दिनी,
ज्ञानदे, मोक्षदे, कामाख्या कामदे, श्रीराधा श्रीकृष्णहृदि विलासिनी!

[अर्थ— हे काली, तुम्हें कौन जान सकता है? तुम अनन्तरूपिणी हो। तुम महाविद्या हो, अनादि, अनाद्या हो और भव-बन्धन को काटने वाली हो। तुम शिवानी हो, गोपजा हो तथा गोविन्द का मन मोहने वाली हो। तुम ज्ञान देने वाली, मोक्ष देने वाली, कामनाओं को पूर्ण करने वाली और श्री कृष्ण के हृदय में विलास करने वाली श्री राधा हो। हे नगेन्द्रनन्दिनी, शारदे! हमें वर दो।]

गाना— तारो तारिणी! एबार त्वरित करिये,
तपन-तनय-त्रासे त्रासित प्राण जाय।
जगत अम्बे, जनपालिनी, जन-मोहिनी, जगत जननी,
यशोदा जठरे जन्म लोइये, सहाय हरि लीलाय॥
वृन्दावने राधाविनोदिनी, ब्रजवल्लभ विहारकारिणी,
रासरंगिनी रसमयी होये, रास करिले लीलाप्रकाश॥
गिरिजा, गोपजा, गोविन्द मोहिनी, तुमि मा गंगा गतिदायिनी,
गान्धार्विके गौरवरणी गाओये गोलके गुण तोमार॥

शिवे, सनातनी, सर्वाणी ईशानी, सदानन्दमयी, सर्वस्वरूपिणी
सगुणा, निर्गुणा, सदाशिव प्रिया, के जाने महिमा तोमार॥

[अर्थ— हे तारिणी, मुझे इस बार जल्दी तारो। यमराज के डर से मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। हे जगदम्बे, लोकपालिनी, जनमोहिनी, जग-जननी, तुमने यशोदा के गर्भ से जन्म लेकर कृष्णलीला में सहायता की थी। तुम वृन्दावन में विनोद करने वाली राधा थीं, व्रजवल्लभ कृष्ण के साथ विहार करने वाली थीं। रासरङ्गिणी और रसमयी होकर तुमने रास रचकर अपनी लीला प्रकाशित की थी। तुम शिवानी हो, गोपजा हो, तुम गोविन्द-मोहिनी हो, तुम गतिदायिनी गंगा हो, तुम गौरवर्णी हो, गन्धर्वजन इस संसार में तुम्हारा गुणगान करते हैं। माँ! तुम कल्याणदायिनी हो, तुम सनातनी हो, ईशानी हो, सदानन्दमयी हो, सर्वस्वरूपिणी हो, सगुणा हो, निर्गुणा हो, सदा शिव को प्रिय हो, तुम्हारी महिमा कौन जान सकता है?]

मणि मन-मन में कह रहे हैं यदि ठाकुर एक बार यह गाना गाएँ—

'आर भुलाले भुलबो ना मा, देखेछि तोमार रांगाचरण।'

कैसा आश्चर्य! मन में आते ही आते यह गाना भी गा रहे हैं। (तुम्हारे लाल चरण देख लिए हैं। अब कितना ही आप भुलाएँ, मैं नहीं भूलूँगा।)

कुछ देर बाद ठाकुर पूछते हैं—

अच्छा, मेरी अब किस प्रकार की अवस्था तुम्हें बोध होती है!

मणि *(सहास्य)*— आपकी है सहजावस्था।

ठाकुर ने अपने-आप ही गाने की स्थायी पकड़ ली—

''सहज मानुष ना होले सहजके ना जाय चेना।''
(मनुष्य स्वयं सहज बने बिना सहज को पहचान नहीं पाता।)

एकादश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण प्रह्लाद-चरित्राभिनय-दर्शन में

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण समाधिमन्दिर में)

श्रीरामकृष्ण आज स्टार थियेटर में प्रह्लाद-चरित्र का अभिनय देखने आए हैं। संग में मास्टर, बाबूराम और नारायण प्रभृति हैं। स्टार थियेटर तब वीडन स्ट्रीट में था। इसी रंगमंच पर बाद में एमेरेल्ड थियेटर और क्लासिक थियेटर का अभिनय सम्पन्न हुआ करता था।

आज रविवार, 30 अग्रहायण, कृष्णा द्वादशी तिथि, 14 दिसम्बर, 1884 ईसवी। श्रीरामकृष्ण एक बॉक्स में उत्तरास्य बैठे हैं। रंगालय आलोकाकीर्ण है। पास मास्टर, बाबूराम और नारायण बैठे हैं। गिरीश आए हैं। अभिनय अभी भी आरम्भ नहीं हुआ है। ठाकुर गिरीश के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वाह, तुमने सब बहुत अच्छा लिखा है।

गिरीश— महाशय, धारणा कहाँ? केवल लिख गया हूँ।

श्रीरामकृष्ण— ना, तुम्हारी धारणा है। उस दिन ही तो तुम्हें कहा, भीतर भक्ति न रहे तो 'चलचित्र' (नाटक, पटचित्र) नहीं आंका जाता—

"धारणा चाहिए। केशव के घर में 'नववृन्दावन' नाटक देखने गया था। देखा था, कोई डिप्टी 800 (आठ सौ) रुपया महीना पाता है। सब ने कहा, अच्छा पण्डित है। किन्तु एक लड़के को लेकर खूब चञ्चल हो रहा

था! 'लड़का किस प्रकार अच्छे स्थान पर बैठे, कैसे अभिनय देख सके', इसी के लिए व्याकुल हो रहा था। इधर ईश्वरीय बातें हो रही हैं, उन्हें नहीं सुनेगा। बेटा केवल पूछता रहा, 'पिता जी यह क्या, वह क्या?' वे भी बेटे को लेकर अति चञ्चल! पुस्तक केवल पढ़ी ही हैं मात्र, किन्तु धारणा नहीं हुई।''

गिरीश— मन में होता है, थियेटर आदि अब और क्यों करना?

श्रीरामकृष्ण— ना-ना, वह रहे; उससे लोकशिक्षा होगी।

अभिनय आरम्भ हो गया। प्रह्लाद पाठशाला में पढ़ने-लिखने आए हैं। प्रह्लाद का दर्शन करके ठाकुर सस्नेह 'प्रह्लाद! प्रह्लाद!'— यह शब्द बोलते-बोलते एकदम समाधिस्थ हो गए।

'प्रह्लाद को हाथी के पैरों के नीचे' देखकर ठाकुर रो रहे हैं। 'अग्निकुण्ड में जब फेंक दिया' तब भी ठाकुर क्रन्दन करते हैं।

गोलोक के लक्ष्मीनारायण बैठे हैं। नारायण प्रह्लाद के लिए चिन्ता कर रहे हैं। वह दृश्य देखकर ठाकुर फिर समाधिस्थ हो गए!

द्वितीय परिच्छेद

भक्तसंग में ईश्वर-कथा-प्रसंग

(ईश्वर-दर्शन का लक्षण और उपाय— तीन प्रकार के भक्त)

रंगालय में गिरीश जिस कमरे में बैठते हैं, अभिनयान्ते ठाकुर को वहाँ पर ले गए। गिरीश ने कहा, ''क्या 'विवाह-विभ्राट' (विवाह-संकट) सुनेंगे?'' ठाकुर बोले, ''ना। प्रह्लाद-चरित्र के उपरान्त यह सब क्या? मैंने जभी तो गोपाल उड़ियों के दल से कहा था, तुम अन्त में कुछ ईश्वरीय बातें कहो। ईश्वरीय कथा तो सुन्दर हो रही थी, और फिर 'विवाह-विभ्राट', संसार की कथा! (मैं) जो था, वही हो गया— फिर दोबारा वही पहला भाव ही आ पड़ता है। ठाकुर गिरीश आदि के साथ ईश्वरीय बातें कर रहे हैं। गिरीश कह रहे हैं, ''महाशय, कैसा देखा?''

श्रीरामकृष्ण— देखा, साक्षात् वे ही सब बने हुए हैं। जिन्होंने स्वाँग रचा था, उन्हें देखा साक्षात् आनन्दमयी माँ! जो गोलोक (बैकुण्ठ) में राखाल (गोप) बने थे, उन्हें देखा साक्षात् नारायण। वे ही सब हुए हैं। किन्तु ठीक ईश्वर-दर्शन हो रहा है कि नहीं, उसका लक्षण है। एक लक्षण है आनन्द। संकोच नहीं रहता। जैसे समुद्र— ऊपर हिल्लोल-कल्लोल, नीचे गम्भीर जल। जिसको भगवान-दर्शन हुआ है वह कभी पागलवत्, कभी पिशाचवत्— शुचि-अशुचि-भेद ज्ञान नहीं। कभी अथवा जड़ की न्यायीं— क्योंकि अन्तर-बाहर ईश्वर के दर्शन करता हुआ अवाक् हुआ रहता है। कभी बालक की न्यायीं— बन्धन नहीं, बालक जैसे कपड़ा बगल में लेकर फिरता है। इस अवस्था में कभी बाल्य भाव, कभी पौगण्ड भाव (लड़कपन)! हँसी-मजाक करता है। कभी युवा भाव, जब कर्म करता है। लोकशिक्षा देता है, तब सिंह-तुल्य।

"जीव का अहंकार है, इस कारण ईश्वर को देख नहीं पाता। मेघ आ जाने के कारण सूर्य दिखाई नहीं देता। 'किन्तु दिखाई नहीं देता'— इस कारण क्या सूर्य नहीं है? सूर्य निश्चय ही है।

"किन्तु 'बालक का मैं'— इसमें दोष नहीं, अपितु उपकार है। साग खाने पर असुख हो जाता है, किन्तु हिंचे साग खाने से उपकार होता है। 'हिंचे साग' सागों में नहीं है। मिश्री मिठाइयों में नहीं है। और मिठाई असुख करती है, किन्तु मिश्री कफ-दोष नहीं करती।

"जभी तो केशवसेन से कहा था, और अधिक तुम से कहने पर तुम्हारा दलवल नहीं रहेगा! केशव डर गया। मैंने तब कहा 'बालक का मैं', 'दास-मैं'— इसमें दोष नहीं है।

"जिन्होंने ईश्वर-दर्शन किया है, वे देखते हैं कि ईश्वर ही जीव-जगत हुए हैं। सब ही वे हैं। इसी का नाम है उत्तम भक्त।"

गिरीश *(सहास्य)*— सब ही वे, किन्तु तनिक-सा 'मैं' रहता है— कफ-दोष नहीं करता।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, उसमें हानि नहीं है। वह तनिक-सा 'मैं'

सम्भोग के लिए है। 'एक मैं, एक तुम' रहने से ही आनन्द-भोग किया जाता है— सेव्य-सेवक का भाव।

"और फिर मध्यम श्रेणी का भक्त है। वह देखता है कि ईश्वर सर्व भूतों में अन्तर्यामी रूप में हैं। अधम श्रेणी का भक्त कहता है— ईश्वर हैं, वहाँ हैं ईश्वर— अर्थात् आकाश के उस पार। *(सब का हास्य)*।

"गोलोक (बैकुण्ठ) के राखाल देखकर मुझे बोध हुआ, वही (ईश्वर ही) सब हुए हैं। जिन्होंने ईश्वर-दर्शन किया है, उन्हें ठीक-ठीक बोध होता है— ईश्वर ही कर्त्ता हैं, वे ही सब कर रहे हैं।"

गिरीश— महाशय! मैं तो किन्तु ठीक-ठीक समझ गया हूँ, वे ही सब कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— मैं कहता हूँ, 'माँ, मैं यन्त्र, तुम यन्त्री; मैं जड़, तुम चेतयिता— जैसे करवाती हो वैसे ही करता हूँ, जैसे बुलवाती हो वैसे ही बोलता हूँ।' जो अज्ञानी हैं वे कहते हैं— 'कुछ मैं करता हूँ, कुछ वे करते हैं'।

(कर्मयोग से चित्तशुद्धि होती है— सर्वदा पाप-पाप क्या— अहैतुकी भक्ति)

गिरीश— महाशय! मैं फिर करता ही क्या हूँ? फिर कर्म ही अथवा क्यों?

श्रीरामकृष्ण— नहीं जी, कर्म तो अच्छा है। धरती तैयार की हुई हो तो जो बोओगे, वह पैदा होगा। किन्तु कर्म निष्काम भाव में करना चाहिए।

"परमहंस दो प्रकार के हैं। ज्ञानी परमहंस और प्रेमी परमहंस। जो ज्ञानी हैं वे आप्तसार— 'मेरा होने से ही हुआ'। प्रेमी हैं, जैसे शुकदेवादि, ईश्वर को पाकर फिर लोकशिक्षा देते हैं। कोई आम खाकर मुख को पोंछ लेता है, कोई पाँच जनों को देता है। कोई छोटा कुआँ खोदने के समय टोकरी-फावड़ा लाते हैं, कुआँ खुद जाने पर टोकरी-फावड़ा उसी कुएँ में फेंक देते हैं। कोई टोकरी-फावड़े को रख देते हैं— यदि किसी मुहल्ले वाले को आवश्यकता हो। शुकदेवादि ने औरों के लिए टोकरी-फावड़े को रख लिया था। *(गिरीश के प्रति)* "तुम औरों के लिए रखोगे।"

गिरीश— तो फिर आप आशीर्वाद करें।

श्रीरामकृष्ण— तुम माँ के नाम पर विश्वास करो, हो जाएगा।

गिरीश— मैं तो पापी हूँ।

श्रीरामकृष्ण— जो सर्वदा पाप-पाप करता है, वह साला पापी ही हो जाता है!

गिरीश— महाशय, मैं जहाँ पर बैठता हूँ, वहाँ की धरती भी अशुद्ध हो जाती है।

श्रीरामकृष्ण— वह कैसे! हजार वर्ष के अन्धेरे कमरे में यदि प्रकाश आए, वह क्या थोड़ा-थोड़ा करके प्रकाशित होता है? या एकदम से दप् करके आलोकित हो जाता है?

गिरीश— आपने आशीर्वाद कर दिया है।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारा (भाव) यदि आन्तरिक है, तो मैं क्या कहूँ! मैं तो खाता-पीता हूँ और उनका नाम करता हूँ।

गिरीश— आन्तरिक नहीं है, किन्तु उतना तो दे ही जाएँ।

श्रीरामकृष्ण— मैं क्या हूँ? नारद, शुकदेव— ये लोग यदि होते तो!

गिरीश— नारदादि को फिर देख नहीं सकता। साक्षात् जो पा रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अच्छा! विश्वास!

कुछ क्षण सब-के-सब चुप रहे। फिर और बातें होती हैं।

गिरीश— एक ही विशेष साध (अभिलाषा) है— अहैतुकी भक्ति।

श्रीरामकृष्ण— अहैतुकी भक्ति ईश्वरकोटि की होती है, जीवकोटि की नहीं होती।

सब चुप हैं। ठाकुर ने अनमने गाना आरम्भ किया। दृष्टि ऊर्ध्व की ओर है—

श्यामाधन कि सबाई पाय (कालीधन की सबाई पाय)
अबोध मन बोझे ना ए कि दाय।
शिवेरि असाध्य साधन मन-मजानो रांगा पाय॥
इन्द्रादि सम्पद सुख तुच्छ होय जे भावे माय॥
सदानन्द सुखे भासे, श्यामा यदि फिरे चाय।
योगीन्द्र मुनीन्द्र इन्द्र जे चरण ध्याने ना पाय॥
निर्गुणे कमलाकान्त तबु से चरण चाय!

[भावार्थ— श्यामा माँ-रूप-धन क्या सब को मिलता है (काली माँ-रूप-धन क्या सब को मिलता है)? अबोध मन समझता नहीं है कि यह क्या वस्तु है। मन लाल चरणों में लगा होने पर भी शिव के लिए ही यह साधन असाध्य है। इस माँ के भाव में होने पर इन्द्र आदि की सम्पद तुच्छ है। माँ श्यामा यदि मुड़कर देख लेती है तो मुख सदानन्द में रहता है। योगीन्द्र, मुनीन्द्र, इन्द्र जिन चरणों का ध्यान नहीं पा सकते, निर्गुणी कमलाकान्त किन्तु यही चरण चाहता है।]

गिरीश— निर्गुणे कमलाकान्त तबु से चरण चाय!

तृतीय परिच्छेद

(ईश्वर-दर्शन का उपाय— व्याकुलता)

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— तीव्र वैराग्य होने पर उन्हें प्राप्त किया जाता है। प्राण व्याकुल होना चाहिए। शिष्य ने गुरु से पूछा था, कैसे भगवान को पाऊँगा? गुरु ने कहा, मेरे साथ आओ। यह कहकर एक तालाब पर ले जाकर उसे जबरदस्ती डुबाकर पकड़े रखा। कुछ क्षण पश्चात् जल से निकाल कर ले आए और बोले, तुम्हें जल के भीतर कैसा हुआ था? शिष्य ने कहा, प्राण छटपटा रहा था— मानो प्राण गया! गुरु ने कहा— देख, इसी प्रकार भगवान के लिए यदि प्राण छटपटाता है, तब ही उनको प्राप्त करोगे।

"जभी तो कहता हूँ, तीन आकर्षण एक साथ होने पर तब उनको प्राप्त किया जाता है। विषयी का विषय के प्रति आकर्षण, सती का पति में आकर्षण, और माँ का सन्तान में आकर्षण— ये तीनों प्यार यदि कोई एक संग भगवान को दे सकता है, तब फिर तत्क्षण साक्षत्कार हो जाता है।

"डाको देखि मन डाकार मत केमन श्यामा थाकते पारे! (हे मन पुकार की तरह पुकारो न! तब देखूँ श्यामा कैसे (आए बिना) रह सकेगी!) वैसा व्याकुल होकर पुकारने पर उनको दर्शन देना ही पड़ेगा।"

(ज्ञानयोग और भक्तियोग का समन्वय— कलिकाल में नारदीय भक्ति)

"उस दिन जो तुम से कहा था भक्ति के क्या मायने हैं— यही कि काय-मन-वाक्य से उनका भजन। काय— अर्थात् हाथों द्वारा उनकी पूजा और सेवा, पाँव से उनके स्थान पर जाना, कान से उनका भागवत सुनना, नामगुण-कीर्त्तन सुनना, चक्षु से उनका विग्रह-दर्शन करना। मन— अर्थात् सर्वदा उनका ध्यान-चिन्तन करना, उनकी लीला का स्मरण-मनन करना।

"कलि में नारदीय भक्ति— सर्वदा उनका नाम-गुण-कीर्त्तन करना। जिनके पास समय नहीं, वे साँझ-सवेरे हाथ से ताली बजा कर एक मन से 'हरि बोल-हरि बोल' बोल कर उनका भजन करें।

"भक्ति के 'मैं' में अहंकार नहीं होता। वह अज्ञान नहीं लाता, बल्कि (अपितु) ईश्वर-लाभ करवा देता है। यह 'मैं' मैं के मध्य में नहीं है। जैसे हिंचे साग सागों के मध्य में नहीं है, अन्य साग से असुख होता है किन्तु हिंचे साग खा लेने पर पित्त-नाश हो जाता है, उलटे उपकार ही होता है। मिश्री मिठाइयों में नहीं है। अन्य मिठाई खाने से अपकार होता है, मिश्री खा लेने पर अम्बल (अम्ल)-नाश होता है।

"निष्ठा के उपरान्त भक्ति है। भक्ति पक जाने पर भाव होता है। भाव घनीभूत होने पर महाभाव हो जाता है। सबके अन्त में है प्रेम।

"प्रेम है रज्जु का स्वरूप। प्रेम हो जाने पर भक्त के पास ईश्वर बन्ध जाते हैं और भाग नहीं सकते। सामान्य जीव का भाव तक ही होता है। ईश्वरकोटि बिना हुए महाभाव, प्रेम नहीं होता। चैतन्यदेव का हुआ था।

"ज्ञानयोग क्या है? जिस पथ द्वारा स्व-स्वरूप को जाना जाता है। 'ब्रह्म ही मेरा स्वरूप है', यह बोध।

"प्रह्लाद कभी स्व-स्वरूप में रहते थे। कभी देखते— 'मैं एक हूँ, तुम एक हो'। तब भक्ति-भाव में रहते।

"हनुमान ने कहा था, राम! कभी देखता हूँ 'तुम पूर्ण, मैं अंश'। कभी देखता हूँ 'तुम प्रभु, मैं दास'। और राम! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब देखता हूँ

'तुम ही मैं, मैं ही तुम'।''

गिरीश— आहा!

(संसार में (गृहस्थ में) क्या ईश्वर-लाभ होता है ?)

श्रीरामकृष्ण— संसार में होगा क्यों नहीं? किन्तु विवेक-वैराग्य चाहिए। ईश्वर वस्तु है और सब अनित्य, दो दिनों के लिए हैं— इसी का पक्का बोध होना चाहिए। ऊपर-ऊपर तैरने से नहीं होगा, डुबकी लगानी होगी!

यह कह कर ठाकुर गाना गाते हैं—

डुब डुब डुब रूपसागरे आमार मन।
तलातल पाताल खुंजले पाबि रे प्रेम रत्न धन॥
खुंज् खुंज् खुंज् खुँज्ले पाबि हृदय माझे वृन्दावन।
दीप् दीप् दीप् ज्ञानेर बाति, ज्वलबे हृदे अनुक्षण॥
ड्यांग ड्यांग ड्यांग डांगाय डिंगे, चालाय आबार से कोन् जन।
कुबीर बोले शोन् शोन् शोन् भाबो गुरुर श्रीचरण॥

(भावार्थ— ओ मेरे मन, तू (श्री गुरु के) रूप-सागर में डूब जा, डूब जा, डूब जा। तलातल-पाताल खोजने से तुझे अपने हृदय में प्रेम-रत्न-धन मिलेगा। खूब खोज लेने पर ही तुझे हृदय में आनन्दधाम वृन्दावन प्राप्त हो जाएगा। तब हृदय में सदा ज्ञान की बत्ती जलती रहेगी। भला ऐसा कौन है जो धरती पर 'डांगा' (नाव) चलाएगा? 'कुबीर' कहते हैं, तू सदा श्री गुरु के श्रीचरणों का ही अनुध्यान कर।)

''और एक विशेष बात है। काम आदि घड़ियालों का भय है।''

गिरीश— किन्तु यम का भय मुझे नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— ना, काम आदि मगरमच्छों का भय है, जभी हल्दी लगा कर डुबकी लगानी होती है— विवेक-वैराग्यरूप हल्दी!

''संसार में ज्ञान किसी-किसी को होता है। जभी दोनों योगियों की बात है, गुप्तयोगी और व्यक्तयोगी। जिन्होंने संसार (गृहस्थ) त्याग किया है वे व्यक्तयोगी हैं, उन्हें सब पहचानते हैं। गुप्तयोगी का प्रकाश नहीं। जैसे दासी सब कर्म करती है, किन्तु गाँव में बच्चों आदि की ओर मन पड़ा रहता है।

और जैसे तुम्हें कहा था, नष्टा स्त्री गृहस्थ में सब काज उत्साह के साथ करती है, किन्तु सर्वदा ही उपपति की ओर मन पड़ा रहता है। विवेक-वैराग्य होना है बड़ा कठिन। 'मैं कर्त्ता और ये सब वस्तुएँ मेरी हैं'— यह बोध सहज में नहीं जाता। किसी डिप्टी को देखा था, आठ सौ रुपया महीना वेतन। ईश्वरीय बातें हो रही थीं। उस ओर मन ज़रा भी नहीं दिया। एक लड़का संग में आया था, उसको एक बार इस जगह पर बिठाता रहा और एक बार उस स्थान पर बिठा रहा था। और एक जन को मैं जानता हूँ, नाम नहीं लूँगा। जप खूब किया करता था, किन्तु दस हज़ार रुपये। के लिए मिथ्या साक्षी दे दी थी। जभी तो कहता हूँ, विवेक-वैराग्य होने पर गृहस्थ में भी होता है।''

(पापी-तापी और ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

गिरीश— इस पापी का क्या होगा ?

ठाकुर ने ऊर्ध्वदृष्टि करके करुण स्वर में गाना पकड़ लिया—

भाव श्रीकान्त नरकान्तकारी रे।
नितान्त कृतान्त भयान्त होबि॥
भाबिले भव भावना जाक रे—
तरे तरंगे भ्रूभंगे त्रिभंगे जेबा भावे।
एलि कि तत्त्वे, ए मर्त्ये कुचित्त कुवृत्त करिले कि हबे रे—
उचित तो नय, दाशरथिरे डुबाबि रे—
करो ए चित्त प्राचित्त, से नित्य पद भेबे॥

(भावार्थ— हे मन, नर-कान्तकारी (मनुष्य को सुन्दर करने वाले) श्रीकान्त (श्रीकृष्ण) का चिन्तन करो। तुम यमराज के भय से बिल्कुल निडर हो जाओगे। उनका चिन्तन करने पर भव (जगत) की चिन्ता चली जाती है। जो त्रिभंगी का चिन्तन करते हैं, वे उनकी भ्रू-तरंग से भव-तरंग तर जाते हैं। क्या सोचते हो, इस मर्त्य शरीर में बुरी वृत्ति लेकर चित्त को बुरा करने से क्या होगा रे ?— दाशरथि कहते हैं कि डुबाएँगे, ऐसा तो उचित नहीं है— जो अपने इस चित्त को उनके चित्त में लगा देता है, वह नित्यपद पाता है।)

(गिरीश के प्रति)— ''तरे तरंगे भ्रूभंगे त्रिभंगे जेबा भावे'' जो त्रिभंगी का चिन्तन करते हैं, वे उनकी भ्रूभंग से ही भव-तरंग को तर जाते हैं।

(आद्याशक्ति माहामाया की पूजा और आममुख्त्यारी व बकलमा)

"महामाया के द्वार छोड़ देने पर उनका दर्शन होता है। महामाया की दया चाहिए। इसीलिए तो शक्ति की उपासना है। देखो ना, निकट ही भगवान हैं किन्तु उनको जाना नहीं जाता। कारण, बीच में महामाया है। राम-सीता-लक्ष्मण जा रहे हैं। आगे राम, बीच में सीता, सबसे पीछे लक्ष्मण हैं। राम ढाई हाथ अन्तर पर हैं, किन्तु लक्ष्मण देख नहीं पाते।

"उनकी उपासना करने के लिए एक भाव आश्रय करना चाहिए। मेरे तीन भाव हैं— सन्तान-भाव, दासी-भाव और सखी-भाव। दासी-भाव, सखी-भाव में बहुत दिनों तक था। तब स्त्रियों की भाँति कपड़ा, गहना, ओढ़नी पहना करता था। सन्तान-भाव खूब अच्छा है।

"वीर-भाव अच्छा नहीं। नेड़ा-नेड़ियों का, भैरव-भैरवियों का वीर-भाव होता है। अर्थात् प्रकृति को श्रीरूप में देखना और रमण के द्वारा प्रसन्न करना। इस भाव में प्राय: ही पतन होता है।"

गिरीश— मेरा एक समय वही भाव आ गया था।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण चिन्तित होकर गिरीश को देखने लगे।

गिरीश— यही तो ज़रा-सी एक आड़ (अवरोध, ओट) है। अब उपाय क्या है? बताइये।

श्रीरामकृष्ण *(कुछ क्षण सोचने के बाद)*— उनको आममुख्त्यारी दे दो— उन्हें जो करना हो, करें।

चतुर्थ परिच्छेद

(सत्त्व गुण आने पर ईश्वर-लाभ— 'सच्चिदानन्द या कारणानन्द')

ठाकुर श्रीरामकृष्ण लड़के भक्तों की बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश आदि के प्रति)*— ध्यान करते-करते उन लोगों के सब लक्षण देखता हूँ। 'घर बनाऊँगा'— ऐसी बुद्धि उनमें नहीं है। स्त्री-सुख की

इच्छा नहीं है। जिनकी स्त्री है, वे एक संग में नहीं सोते। क्या है, जानते हो? रजोगुण के बिना गए और शुद्ध सत्त्व बिना आए भगवान में मन स्थिर होता नहीं— उनके ऊपर प्यार नहीं आता, उनको पाया नहीं जाता।

गिरीश— आपने मुझे आशीर्वाद दिया है।

श्रीरामकृष्ण— कहाँ! किन्तु कहा था कि आन्तरिक होने से हो जाएगा।

बातें करते-करते ठाकुर 'आनन्दमयी! आनन्दमयी!'— ये शब्द उच्चारण करके समाधिस्थ हो रहे हैं। समाधिस्थ काफी देर तक रहे। थोड़ा प्रकृतिस्थ होने पर कहते हैं, 'साले, सब कहाँ हैं?' मास्टर और बाबूराम को पुकार कर बुलवा लिया।

ठाकुर बाबूराम तथा अन्य भक्तों की ओर देखकर प्रेम में मतवाले होकर कहते हैं, "सच्चिदानन्द ही अच्छे! और कारणानन्द?" यह कह कर ठाकुर गाना गाने लगे—

एबार आमि भालो भेवेछि।
भालो भावीर काछे भाव शिखेछि॥
जे देशे रजनी नाइ सेइ देशेर एक लोक पेयेछि।
आमि किबा दिबा किबा सन्ध्या सन्ध्यारे बन्ध्या करेछि॥
घु भेंगेछे आर कि घुमाइ योगे यागे जेगे आछि।
योगनिद्रा तोरे दिये मा, घुमेरे घुम पाड़ायेछि॥
सोहागा गंधक दिये खासा रंग चड़ायेछि।
मणि मन्दिर भेजे लोबे अक्ष दुटि करे कुंचि॥
प्रसाद बोले भुक्ति मुक्ति उभये माथाय रेखेछि।
(आमि) कालीब्रह्म जेने मर्म धर्माधर्म सब छेड़ेछि।

[भावार्थ— अब की बार मैंने ठीक सोच लिया है। एक अच्छा सोचने वाले से मैंने सोचने का ढंग सीख लिया है। मुझे उस देश का कोई जन मिल गया है जहाँ रात नहीं है। दिन हो या शाम, मैंने सन्ध्या को भी बन्ध्या कर दिया है। निद्रा टूट गई है। अब और क्या सोऊँ? योग के यज्ञ में जगा हुआ हूँ। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त योग-निद्रा पाकर, निद्रा को सुला दिया है। सुहागा, गन्धक द्वारा पक्का (असली) रंग चढ़ाया है। मन रूपी मन्दिर के फर्श पर दोनों अक्ष (आँखें) कुंचि-झाड़ू (brush) फेर रही हैं। रामप्रसाद कहते हैं भुक्ति-मुक्ति दोनों

को मैंने मस्तक पर रख रखा है। मैंने काली और ब्रह्म का मर्म जान कर धर्म-अधर्म सब छोड़ दिया है।]

ठाकुर फिर और गाना गा रहे हैं—

गया गंगा प्रभासादि काशी कांची केबा चाय।
काली काली बोले आमार अजपा यदि फराय॥
त्रिसन्ध्या जे बोले काली, पूजा सन्ध्या से कि चाय।
सन्ध्या तार सन्धाने फेरे कभु सन्धि नाहि पाय॥
काली नामेर कतगुण केबा जानते पारे ताय
देवादिदेव महादेव जार पंचमुखे गुण गाय॥
दान व्रत यज्ञ आदि आर किछु ना मने लय।
मदनेर याग यज्ञ ब्रह्ममयीर रांगा पाय॥

(भावार्थ— गया, गंगा, प्रभास, काशी, कांची आदि कौन चाहता है, मेरा प्राण यदि काली-काली कहकर समाप्त होता है? जो त्रिसन्ध्या काली-काली कहता है, वह पूजा-सन्ध्या नहीं माँगता। सन्ध्या ही उसकी खोज में फिर रही है, किन्तु कभी उससे सन्धि (मेल) नहीं कर पाती। काली-नाम के कितने गुण हैं! कौन उन्हें जान सकता है? देवादिदेव महादेव जिसका पाँच मुखों से गुण गाते हैं। मैं दान, व्रत, यज्ञ अब और कुछ भी मन में नहीं लाता हूँ। ब्रह्ममयी के रांगा (लाल) पाँव ही मदन का याग-यज्ञ हैं।

"मैं माँ से प्रार्थना करता हुआ कहा करता था— माँ! और कुछ नहीं माँगता, मुझे शुद्धाभक्ति दो।"

गिरीश का शान्त भाव देखकर ठाकुर प्रसन्न हुए हैं और कह रहे हैं, "तुम्हारी यही अवस्था ही भली है, सहज अवस्था ही उत्तम अवस्था है।"

ठाकुर नाट्यालय के मैनेजर के कमरे में बैठे हुए हैं। किसी ने आकर कहा, आप क्या 'विवाह-विभ्राट' देखेंगे? अब अभिनय हो रहा है।

ठाकुर गिरीश से कहते हैं, "यह क्या किया? प्रह्लाद-चरित्र के उपरान्त 'विवाह-विभ्राट'? पहले पायस-मुण्डी, तत्पश्चात् सुक्तनि*!"

---

* पायस-मुण्डी = पनीर की खीर।

* सुक्तनि = करेला आदि मिलाकर पकाई हुई बिना मिर्चों की एक तरकारी जो बंगाल में भोजन के आरम्भ में खाई जाती है।

(समाधिस्थ श्रीरामकृष्ण और वारवणिता)

अभिनय के अन्त में गिरीश के उपदेश से नटियाँ (actresses) ठाकुर को नमस्कार करने आई हैं। उन सबने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। भक्तगण कोई खड़े होकर, कोई बैठकर देख रहे हैं। वे देखकर अवाक् हैं कि उनमें से कोई-कोई ठाकुर के पाँव में हाथ देकर नमस्कार करती हैं। पाँव में हाथ देते समय ठाकुर कहते हैं, ''माँ थाक्, थाक्; माँ थाक्, थाक्।'' (माँ बस, बस; माँ बस, बस)।

उनके नमस्कार करके चले जाने पर ठाकुर भक्तों से कहते हैं— ''सब ही वे, एक-एक रूप में।''

अब ठाकुर गाड़ी पर चढ़े। गिरीश आदि भक्तों ने संग-संग जाकर उन्हें गाड़ी पर बिठा दिया है।

गाड़ी पर चढ़ते-चढ़ते ठाकुर गम्भीर समाधि में मग्न हो गए!

गाड़ी के भीतर नारा'ण आदि भक्त बैठ गए। गाड़ी दक्षिणेश्वर की ओर जा रही है।

द्वादश खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में भक्त-संग में)

श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग आनन्द में बैठे हैं। बाबूराम, छोटे नरेन, पल्टु, हरिपद, मोहिनीमोहन आदि भक्तगण ज़मीन पर बैठे हैं। एक ब्राह्मण युवक दो-तीन दिन से ठाकुर के पास हैं। वे भी बैठे हुए हैं। आज शनिवार है, 25 फाल्गुन, 7 मार्च, 1885 ईसवी, समय अन्दाजन तीन का है। चैत्र कृष्णा सप्तमी।

श्री श्री माँ आजकल नहबत में हैं। वे बीच-बीच में ठाकुरबाड़ी (श्रीरामकृष्ण के कमरे) में आकर रहती हैं— श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए। मोहिनीमोहन के साथ स्त्री और नवीनबाबू की माँ गाड़ी करके आई हैं।

स्त्रियाँ नहबत में जाकर श्री श्री माँ के दर्शन और प्रणाम करके वहाँ पर ही हैं। भक्तों के थोड़ा हट जाने पर ठाकुर को आकर प्रणाम करेंगी। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हैं। वे युवा भक्तों को देख रहे हैं और आनन्द में विभोर हो रहे हैं।

राखाल अब दक्षिणेश्वर में नहीं रहते। कई मास बलराम के साथ वृन्दावन में थे। लौट कर अब घर पर ही हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— राखाल अब पेन्शन खा रहा है। वृन्दावन में रह

कर आने के बाद अब घर में रहता है। घर में स्त्री है। किन्तु अब फिर कहता है, 'हज़ार रुपये महीना देने पर भी नौकरी नहीं करूँगा'।

"यहाँ पर लेटा-लेटा कहता था, 'तुम भी अच्छे नहीं लगते', ऐसी उसकी एक विशेष अवस्था हो गई थी।

"भवनाथ ने विवाह किया है, किन्तु सारी रात स्त्री के संग केवल धर्म-कथा करता है। ईश्वर की बातें लेकर ही दोनों रहते हैं। मैंने कहा, स्त्री के संग थोड़ा आमोद-प्रमोद (आह्लाद) करना, तब क्रोध में तेज़ी से बोला, क्या! हम लोग भी आमोद-आह्लाद लेकर रहेंगे?"

ठाकुर अब नरेन्द्र की बातें कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— किन्तु नरेन्द्र के भीतर जितनी व्याकुलता हुई थी, इसके ऊपर (छोटे नरेन्द्र के भीतर) इतनी नहीं हुई।

(हरिपद के प्रति)— तू गिरीश घोष के घर जाता है?

हरिपद— हमारे घर के पास ही घर है, प्राय: ही जाता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— नरेन्द्र जाता है?

हरिपद— हाँ, कभी-कभी देख पाता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— गिरीश घोष जो कहता है (अर्थात् अवतार कहता है) उस पर वह (नरेन्द्र) क्या बोलता है?

हरिपद— तर्क में हार गए हैं।

श्रीरामकृष्ण— ना, उस (नरेन्द्र) ने कहा, 'गिरीश घोष का जब इतना विश्वास है, मैं क्यूँ कोई भी बात कहूँ!'

जज अनुकूल मुखोपाध्याय के जमाई के भाई आए हैं।

श्रीरामकृष्ण— तुम नरेन्द्र को जानते हो?

जमाई का भाई— जी, हाँ। नरेन्द्र बुद्धिमान लड़का है!

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— जब इन्होंने नरेन्द्र की सुख्याति (प्रशंसा) की है, तो ये अच्छे व्यक्ति हैं। उस दिन नरेन्द्र आया था। त्रैलोक्य के साथ उस दिन गाना गाया। किन्तु उस दिन गाना अलोना लगा।

(बाबूराम और 'दुदिक' रखना— ज्ञान-अज्ञान के पार हो जाओ)

ठाकुर बाबूराम की ओर देखकर बातें कर रहे हैं। मास्टर जिस स्कूल में पढ़ाते हैं, बाबूराम उस स्कूल में एन्ट्रेंस क्लास (दसवीं) में पढ़ते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(बाबूराम के प्रति)*— तेरी किताबें कहाँ हैं? पढ़ाई-लिखाई नहीं करेगा?

(मास्टर के प्रति)— वह 'दुदिक' रखना चाहता है।

"बड़ा कठिन पथ है, उनको ज़रा-सा जान लेने से क्या होगा? वशिष्ठ ऋषि, उन्हें ही पुत्रशोक हुआ! लक्ष्मण ने यह देखकर अवाक् होकर राम से पूछा। राम बोले— भाई, इसमें फिर आश्चर्य ही क्या? जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है। भाई, तुम ज्ञान-अज्ञान के पार होओ। पैर में काँटा चुभ जाने पर और एक काँटा खोज कर लाना चाहिए, उसी काँटे के द्वारा प्रथम काँटा निकालना चाहिए, फिर दोनों काँटों को ही फेंक देना चाहिए। इसीलिए तो अज्ञान-काँटे को हटाने के लिए ज्ञान-काँटे को जुटाना चाहिए। फिर ज्ञान-अज्ञान के पार जाना चाहिए।"

बाबूराम *(सहास्य)*— मैं वही तो चाहता हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ओ रे, 'दुदिक' रखने से क्या वैसा होता है? वह यदि चाहता ही है तो फिर चला आ! (ता जदि चास् तोबे चले आय!)

बाबूराम *(सहास्य)*— आप ले आइए!

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— राखाल था, वह और एक बात थी; उसके पिता का मत था। इन लोगों के रहने से हंगामा हो जाएगा।

(बाबूराम के प्रति)— तू दुर्बल है। तेरा साहस कम है! देख ना, छोटा नरेन कैसे कहता है, मैं एकदम ही आकर रहूँगा।

अब ठाकुर लड़के-भक्तों के बीच आकर ज़मीन पर चटाई पर बैठ गए हैं। मास्टर उनके पास बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से)*— मैं कामिनी-काञ्चन-त्यागी खोज रहा हूँ। सोचता हूँ, शायद यह रहेगा! सब ही एक न एक हुज्जत (बहाना) लगाते हैं।

"एक भूत संगी खोज रहा था। शनि-मंगलवार को अपघात मृत्यु होने से भूत होता है। जभी वह भूत, जब (ज्योंहि) देखता है कि कोई छत से गिर गया है, या चोट से मूर्छित होकर गिर गया है, झट दौड़ कर जाता— मन में यही सोचता कि इसकी अपघात मृत्यु हुई है, अब भूत बन जाएगा, और मेरा संगी होगा। किन्तु उसका ऐसा भाग्य कि देखता, सब साले बच उठते! फिर संगी नहीं मिला।

"देख ना, राखाल 'स्त्री-स्त्री' करता है। कहता है मेरी स्त्री का क्या होगा? नरेन्द्र की छाती पर हाथ रखने से वह बेहोश हो गया था। तब कहने लगा, अरे, तुमने मुझे क्या कर दिया जी! मेरे बाप-माँ तो हैं जी!

"मुझे उन्होंने इस अवस्था में क्यों रखा हुआ है? चैतन्यदेव ने संन्यास ले लिया। कारण, सब प्रणाम करेंगे। जो एक बार भी नमस्कार करेगा उसका उद्धार हो जाएगा।"

ठाकुर के लिए मोहिनीमोहन छबड़ी में 'सन्देश' लाए हैं।

श्रीरामकृष्ण— यह 'सन्देश' किसके हैं?

बाबूराम ने मोहिनी की ओर इशारा कर दिया।

ठाकुर ने प्रणव (ॐ) उच्चारण करके सन्देश स्पर्श करके किञ्चित् ग्रहण करके प्रसाद कर दिया। इसके पश्चात् ये ही सन्देश लेकर भक्तों को देते हैं। कैसा आश्चर्य! छोटे नरेन को तथा और भी दो-एक लड़के भक्तों को अपने-आप खिला रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— इसके एक मायने हैं। नारायण का शुद्धात्माओं के भीतर अधिक प्रकाश है। उस देश में (कामारपुकुर में) जब जाया करता था, इसी प्रकार लड़कों को, किसी-किसी के मुख में, खाना दे दिया करता था। चिने शांखारी कहता— 'ये हमें क्यों नहीं खिलाते?'— कैसे दूँगा मुँह में? कोई भाज-मेगो है, कोई अमुक-मेगो!* कौन खिलाए उन्हें?

---

* कोई भावज के साथ है, कोई अमुक स्त्री के साथ।

द्वितीय परिच्छेद

(समाधिमन्दिर में भक्तों के सम्बन्ध में महावाक्य)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण शुद्धात्मा भक्तों को पाकर आनन्द में तैर रहे हैं और छोटी खाट पर बैठे-बैठे उनको स्त्री कीर्त्तनियों के ढंग दिखा कर हँस रहे हैं। कीर्त्तनी सजी-संवरी अपने सम्प्रदाय (मण्डली) के साथ गाना गा रही है। कीर्त्तनी खड़ी होकर, हाथ में रंगीन रूमाल है, बीच-बीच में ढोंग करके (बनावटी) खाँसती है और नथ उठाकर थूकती है। और फिर किसी विशिष्ट व्यक्ति के आ जाने पर, गाना गाती-गाती उसकी अभ्यर्थना करती है और कहती है 'आइए'! और फिर बीच-बीच में हाथ के ऊपर से कपड़ा हटाकर ताबीज, अनन्त और बाउटि (बाजू का गहना) इत्यादि अलंकार दिखाती है।

अभिनय देखते हुए सभी भक्तगण हो-हो करके हँसने लगे। पल्टु हँसते हुए लोटपोट हो रहे हैं। ठाकुर पल्टु की ओर ताकते हुए मास्टर से कह रहे हैं— ''बालक है ना, तभी हँस-हँसकर लोटपोट हो रहा है।''

श्रीरामकृष्ण *(पल्टु के प्रति, सहास्य)*— अपने बाप को ये सब बातें मत बताना। जो भी ज़रा-सा (मेरे प्रति) आकर्षण है, वह भी चला जाएगा। वह तो पहले ही इंग्लिशमैन है।

(आह्निक * जप और गंगास्नान के समय बातें)

(भक्तों के प्रति)— ''कितनी ही नित्यकर्म करने के समय ही सारे जगत की बातें करती हैं, किन्तु मुँह से नहीं बोलतीं। इसीलिए होंठ बन्द किए-किए ही इशारा करती रहती हैं— यह ले आओ, वह ले जाओ, हूँ, उहूँ, इत्यादि सब करती हैं। *(हास्य)*।

''और फिर कोई माला-जप करती है; उसमें ही मछली का भाव-ताव कर लेती है! जप करते-करते या तो उसे उँगली से दिखा देती है— वह मछली! जितना हिसाब, सब उसी समय! *(सबका हास्य)*।

---

* दैनिक

''कोई गंगास्नान करने आई हैं। उस समय भगवान का क्या चिन्तन करेंगी, गप्पें लगाने बैठ गईं! जितनी सब दुनिया की बातें— 'तेरे बेटे का विवाह हो गया, क्या-क्या गहना दिया?' 'अमुक को बड़ी बीमारी है,' 'अमुक ससुराल से आई है कि नहीं,' 'अमुक लड़की देखने आई थी, वह लेना-देना, आमोद-प्रमोद खूब करेगी,' 'हरीश मेरा बड़ा ही दुलारा है, वह मुझे छोड़कर एक क्षण भी नहीं रह सकता,' 'इतने दिन आ नहीं सकी, बहिन, अमुक की लड़की के विवाह की बातचीत पक्की करनी थी, बड़ी व्यस्त (काम में रुझी हुई) थी।'

''देखो ना, कहाँ तो गंगास्नान करने के लिए आई हैं! और सब सांसारिक बातें करती हैं।''

ठाकुर नरेन को एक दृष्टि से देख रहे हैं। देखते-देखते समाधिस्थ हो गए! शुद्धात्मा भक्त के भीतर ठाकुर क्या नारायण-दर्शन कर रहे हैं?

भक्तगण एक दृष्टि से वही समाधि-चित्र देख रहे हैं। इतनी हँसी-खुशी हो रही थी! अब सब ही नि:शब्द, कमरे में जैसे कोई भी व्यक्ति नहीं। ठाकुर का शरीर निस्पन्द, चक्षु स्थिर, हाथ जोड़कर चित्रार्पित की भाँति बैठे हुए हैं!

कुछ समय बाद समाधि भंग हुई। ठाकुर की वायु स्थिर हो गई थी, अब दीर्घ निश्वास-त्याग किया। क्रमश: बाहर जगत में मन आ रहा है। भक्तों की ओर देख रहे हैं।

अभी भी भावस्थ हुए-हुए हैं। अब प्रत्येक भक्त को सम्बोधन करके 'किसका क्या होगा और किसकी किस प्रकार की अवस्था है'— कुछ-कुछ बतला रहे हैं।

(छोटे नरेन के प्रति)— ''तुम्हें देखने के लिए व्याकुल हो गया था। तेरा होगा। तू एक-एक बार आइयो— अच्छा, तू क्या सोचता है?— ज्ञान, या भक्ति?''

छोटे नरेन— केवल भक्ति।

श्रीरामकृष्ण— बिना जाने भक्ति किसकी करेगा?

(मास्टर को दिखलाकर, सहास्य) इनको यदि नहीं जानता तो कैसे इनकी भक्ति करेगा?

(मास्टर के प्रति)— किन्तु शुद्धात्मा ने जब कहा है, 'केवल भक्ति चाहता हूँ'— इसका अर्थ अवश्य है।

"अपने-आप भक्ति का आना संस्कार के बिना रहे नहीं होता। यही तो है प्रेमाभक्ति का विशेष लक्षण। ज्ञानभक्ति तो विचार करके भक्ति है।

(छोटे नरेन के प्रति)— "देखूँ, तेरा शरीर देखूँ। कुरता उतार, देखूँ। छाती की सुन्दर बढ़िया चौड़ाई है, तो होगा। बीच-बीच में आइयो।"

ठाकुर अब भी भावस्थ हैं। और-और भक्तों को, एक-एक जन को सस्नेह सम्बोधन करके फिर कह रहे हैं।

(पल्टु के प्रति)— तुझे क्यों नहीं खींचता? अन्त में एक हंगामा हो जाएगा!

(मोहिनीमोहन के प्रति)— तुम तो हो ही! थोड़ा-सा बाकी है, वह हो जाने पर कर्म-काज, गृहस्थ (संसार)— कुछ नहीं रहता। सब जाना क्या भला है?

यह बोलकर उनकी ओर एकटक सस्नेह ताकते रहे, जैसे उनके हृदय के अन्तरतम प्रदेश का समस्त भाव देख रहे हैं! मोहिनीमोहन क्या सोच रहे थे, 'ईश्वर के लिए सब चला जाना ही अच्छा है?' कुछ देर बाद ठाकुर फिर और कहते हैं— भागवत पण्डित को केवल एक पाश (बन्धन) देकर ईश्वर रख देते हैं, वैसा न हो तो भागवत कौन सुनाएगा?— रख देते हैं लोकशिक्षा के लिए। माँ ने उसी के लिए संसार में रखा हुआ है।

अब ब्राह्मण युवक को सम्बोधन करके कह रहे हैं।

(ज्ञानयोग और भक्तियोग— ब्रह्मज्ञानी की अवस्था और 'जीवन्मुक्त')

श्रीरामकृष्ण *(युवक के प्रति)*— तुम ज्ञान-चर्चा छोड़ो, भक्ति लो। भक्ति ही सार है। आज तुम्हारे क्या तीन दिन हो गए?

ब्राह्मण युवक *(हाथ जोड़ कर)*— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— विश्वास करो। निर्भर करो। वैसा होने पर स्वयं कुछ नहीं करना पड़ेगा। माँ काली ही सब करेंगी।

''ज्ञान सदर महल तक जा सकता है। भक्ति अन्दर महल में जाती है। शुद्धात्मा निर्लिप्त है। विद्या, अविद्या उनके भीतर दोनों ही हैं। वे निर्लिप्त हैं। वायु में कभी सुगन्ध, कभी दुर्गन्ध रहती है, किन्तु वायु निर्लिप्त है। व्यासदेव जमुना पार जा रहे हैं, गोपियाँ भी वहाँ पर पहुँच गईं। वे भी पार जाएँगी, दही, दूध, मक्खन बेचने जा रही हैं। किन्तु नौका नहीं है, कैसे पार जाएँ! सब चिन्ता करने लगीं।

''इसी समय व्यासदेव बोले, मुझे बड़ी भूख लगी है। तब गोपियों ने उनको दूध, मलाई, मक्खन— सब बहुत-सा खिलाया। व्यासदेव प्रायः समस्त ही खा गए।

''तब व्यासदेव जमुना को सम्बोधन करके बोले— 'हे जमुने! मैंने यदि कुछ भी नहीं खाया है, तो फिर तुम्हारा जल दो भाग हो जाएगा और बीच के रास्ते से हम चले जाएँगे।' ठीक वैसा ही हो गया! जमुना दो भाग हो गई, बीच में उस पार जाने का पथ हो गया। उसी पथ द्वारा व्यासदेव और गोपियाँ, सब पार हो गए!

''मैंने 'खाया नहीं'— इसका अर्थ यही है कि मैं वही शुद्धात्मा हूँ। शुद्धात्मा निर्लिप्त है— प्रकृति के पार है। उसकी भूख-प्यास नहीं। जन्म-मृत्यु नहीं। अजर, अमर, सुमेरुवत्!

''जिसका ऐसा ब्रह्मज्ञान हो गया है, वह है जीवन्मुक्त! वह ठीक-ठीक समझ सकता है कि आत्मा अलग है और देह अलग है।

''भगवान का दर्शन करने पर देहात्मबुद्धि फिर और नहीं रहती। दोनों अलग। जैसे नारियल का जल सूख जाने पर गोला अलग और खोल अलग हो जाता है। वही आत्मा जैसे देह के भीतर हिलती-डुलती रहती है। वैसे ही विषयबुद्धि रूप जल के सूख जाने पर आत्मज्ञान होता है। आत्मा अलग है और देह अलग है— यह बोध हो जाता है। कच्ची सुपारी व कच्चे बादाम छाल से अलग नहीं किए जाते।

''किन्तु पक्की अवस्था में सुपारी व बादाम अलग और छाल अलग हो जाती है। पक्की अवस्था में रस सूख जाता है। ब्रह्मज्ञान होने पर विषयरस सूख जाता है।

''किन्तु वह ज्ञान बड़ा कठिन है। कहने से ही ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता! कोई ज्ञान का भान (धोखा) करता है। *(सहास्य)* एक जन बहुत मिथ्या बात कहता था, और इधर कहता— मुझे ब्रह्मज्ञान हो गया है। किसी व्यक्ति के तिरस्कार करने पर उसने कहा— 'क्यों? जगत तो स्वप्नवत् है, सब ही यदि मिथ्या है तो सत्य बात ही क्या ठीक है? मिथ्या भी मिथ्या, सत्य भी फिर मिथ्या!'' *(सबका हास्य)*।

तृतीय परिच्छेद

('धर्मसंस्थापनाय सम्भवामि युगे युगे'— गुह्य कथा)

श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग धरती पर चटाई (मादुर) पर बैठे हैं। सहास्यवदन हैं। भक्तों से कहते हैं, मेरे पाँव तनिक हाथ से सहला दो तो! भक्तगण चरण-सेवा करते हैं। *(मास्टर के प्रति, सहास्य)* ''इस (पदसेवा) के बहुत मायने हैं।''

और फिर अपने हृदय पर हाथ रखकर कह रहे हैं, ''इसके भीतर यदि कुछ है, (पदसेवा करने से) अज्ञान-अविद्या एकदम चले जाते हैं।''

हठात् श्रीरामकृष्ण गम्भीर हो गए, मानो क्या गुह्य बात कहेंगे!

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— यहाँ पर अपर लोग कोई नहीं हैं। उस दिन हरीश पास था, देखा था— गिलाफ (यह देह) छोड़कर सच्चिदानन्द बाहर आ गया। आकर कहने लगा, मैं युग-युग में अवतार! तब सोचा था, शायद मन के ख्याल से वैसी बात बोल रहा हूँ। तत्पश्चात् चुप रह कर देखा था— तब देखा अपने-आप कह रहा है, शक्ति की आराधना चैतन्य ने भी की थी।

भक्तगण सब ही अवाक् होकर सुन रहे हैं। कोई-कोई विचार कर रहे

हैं— सच्चिदानन्द भगवान क्या श्रीरामकृष्ण रूप धारण करके हमारे पास बैठे हुए हैं? भगवान क्या फिर और अवतीर्ण हुए हैं?

श्रीरामकृष्ण बातें कर रहे हैं। मास्टर को सम्बोधन करके फिर और कह रहे हैं— ''देखा था, पूर्ण आविर्भाव। किन्तु सत्त्वगुण का ऐश्वर्य।''

भक्तगण सब अवाक् होकर ये सब बातें सुन रहे हैं।

(योगमाया, आद्याशक्ति और अवतार-लीला)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— अभी-अभी माँ से कहा था, और बक (बोल) नहीं सकता। और कहा था, 'माँ जैसे एक बार छू देने से व्यक्ति को चैतन्य हो जाए!' योगमाया की ऐसी महिमा! वे जादू कर दे सकती हैं। वृन्दावन-लीला में योगमाया ने जादू कर दिया था। उनके ही बल से सुबल ने कृष्ण के संग श्रीमती का मेल करवा दिया था। योगमाया— जो आद्याशक्ति, उनकी एक आकर्षणी शक्ति है। मैंने उसी शक्ति का आरोप किया था।

''अच्छा, जो आते हैं, उनका कुछ-कुछ हो रहा है?''

मास्टर— जी हाँ, होने के अतिरिक्त क्या? (होता ही है, निश्चय)।

श्रीरामकृष्ण— कैसे जाना?

मास्टर *(सहास्य)*— सब ही कहते हैं कि उनके पास जो जाते हैं, वे लौटते नहीं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— एक कोला बैग (बड़ा मेंढक) हेले साँप (विष-रहित साँप) के पल्ले पड़ गया था। वह उसको निगल भी नहीं सकता था, छोड़ भी नहीं सकता था। फिर बड़े मेंढक को भी यन्त्रणा! वह लगातार चीत्कार कर रहा था। ढांड़ा (विष-रहित साँप) को भी यन्त्रणा थी! यदि मेंढक गोखुरा साँप (copru, a poisonous snake) के पल्ले पड़ता तब फिर तो दो-एक पुकार में ही शान्ति हो जाती! *(सबका हास्य)*।

(छोकरे भक्तों के प्रति)— ''तुम लोग त्रैलोक्य की वह पुस्तक पढ़ना— 'भक्ति-चैतन्यचन्द्रिका'। उससे एक माँग कर ले लो ना! चैतन्यदेव की सुन्दर बातें हैं।''

एक जन भक्त— वे दे देंगे क्या ?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्यों, कांकुड़ (green melon)-खेत में यदि बहुत से कांकुड़ (हरे तरबूज) हों तो फिर मालिक 2-3 बाँट ही सकता है ! *(सबका हास्य)*। ऐसा भी क्या, नहीं देगा ! क्या कहता है ?

श्रीरामकृष्ण *(पल्टु के प्रति)*— आइयो यहाँ पर, एक बार।

पल्टु— सुविधा होने पर आऊँगा।

श्रीरामकृष्ण— कलकत्ता में जहाँ जाऊँगा, वहाँ पर आना ?

पल्टु— आऊँगा, चेष्टा करूँगा।

श्रीरामकृष्ण— यह है पटवारी (बुद्धि) !

पल्टु— 'चेष्टा करूँगा' यदि न कहूँ तो फिर झूठी बात हो जाएगी।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— इनकी बात झूठ नहीं लेता, ये स्वाधीन नहीं हैं।

ठाकुर हरिपद के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(हरिपद के प्रति)*— महेन्द्र मुखुज्ये क्यों नहीं आता ?

हरिपद— ठीक नहीं बता सकता।

मास्टर *(सहास्य)*— वे ज्ञान-योग करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— ना, उस दिन 'प्रह्लाद-चरित्र' देखने के लिए गाड़ी भेजने के लिए कहा था। किन्तु भेजी नहीं थी। लगता है इसीलिए नहीं आता।

मास्टर— एक दिन महिम चक्रवर्ती को मिला था और बातचीत हुई थी। लगता है वहीं पर आते-जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण— क्यों, महिमा तो भक्ति की बातें भी करता है। वह तो उन्हें खूब कहता है, 'आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।'

मास्टर *(सहास्य)*— वह आप बुलवाते हैं, तभी बोलता है !

श्रीयुक्त गिरीश घोष ठाकुर के पास नए आने-जाने लगे हैं। आजकल वे सर्वदा ठाकुर की बातें ही लेकर रहते हैं।

हरिपद— गिरीश घोष आजकल बहुत प्रकार से देखते हैं। यहाँ से जाने के समय से सर्वदा ईश्वर के भाव में रहते हैं। कितना कुछ देखते हैं !

श्रीरामकृष्ण— वह हो सकता है, गंगा के निकट जाने पर बहुत-सी चीजें दिखाई देती हैं, नौका, जहाज— कितना कुछ!

हरिपद— गिरीश घोष कहते हैं, 'अब केवल कर्म लेकर रहूँगा। प्रातः घड़ी देखकर दवात-कलम लेकर बैठूँगा और सारा दिन वही (पुस्तक लिखना) करूँगा।' ऐसा कहते तो हैं किन्तु कर नहीं सकते। हमारे जाते ही केवल यहाँ की ही बातें! आपने नरेन्द्र को भेजने को कहा था। गिरीश बाबू कहने लगे, 'नरेन्द्र को गाड़ी कर दूँगा।'

पाँच बज गए हैं। छोटे नरेन्द्र घर जा रहे हैं। ठाकुर उत्तर-पूर्व के लम्बे बरामदे में खड़े होकर एकान्त में उनको तरह-तरह के उपदेश दे रहे हैं। कुछ देर बाद उन्होंने प्रणाम करके विदा ग्रहण की। अन्य भक्तों में से भी बहुतों ने विदा ग्रहण की।

श्रीरामकृष्ण छोटी खाट पर बैठकर मोहिनी के साथ बातें कर रहे हैं। मोहिनी की स्त्री पुत्रशोक के पश्चात् पागल-जैसी हो गई है। कभी हँसती हैं, कभी रोती हैं, किन्तु ठाकुर के पास दक्षिणेश्वर आकर भाव शान्त हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारी स्त्री अब कैसी है?

मोहिनी— यहाँ आने से ही शान्त हो जाती हैं, वहाँ पर बीच-बीच में बड़ा हंगामा मचाती हैं। उस दिन मरने गई थी।

ठाकुर यह सुनकर कुछ समय तक चिन्तित हुए रहे। मोहिनी विनीत भाव से कहते हैं, ''आप दो-एक बातें कह दें।''

श्रीरामकृष्ण— पकाने (रसोई करने) ना दिओ। उससे सिर और भी गरम हो जाता है। और, लोगों के साथ रखोगे।

चतुर्थ परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण की अद्भुत संन्यास की अवस्था— तारक-संवाद)

सन्ध्या हो गई है। ठाकुर-मन्दिर में आरती की तैयारी हो रही है। श्रीरामकृष्ण के कमरे में प्रदीप जलाना और धूना देना हो गया है। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे जगन्माता को प्रणाम करके सुस्वर में नाम कर रहे हैं। कमरे में और कोई नहीं है। केवल मास्टर बैठे हैं।

ठाकुर उठे। मास्टर भी खड़े हो गए। ठाकुर ने कमरे का पश्चिम का और उत्तर का दरवाजा दिखाकर मास्टर से कहा, "उन्हें (दरवाजों को) बन्द कर दो।" मास्टर द्वार बन्द करके बरामदे में ठाकुर के पास आ कर खड़े हो गए।

ठाकुर कहते हैं "एक बार काली-घर में जाऊँगा।" यह कहकर मास्टर का हाथ पकड़ कर और उनके ऊपर भार देकर काली-मन्दिर के सम्मुख चबूतरे पर जा उपस्थित हुए और उसी स्थान पर बैठ गए। बैठने से पहले कहते हैं, "तुम वरन् (बल्कि) उसको बुला दो।" मास्टर ने बाबूराम को बुला दिया।

ठाकुर माँ काली के दर्शन करके बृहत् आँगन के मध्य से अपने कमरे में लौट रहे हैं। मुख में 'माँ! माँ! राज राजेश्वरी!' है।

कमरे में आकर उसी छोटी खाट पर बैठ गए।

ठाकुर की एक विशेष अद्भुत् अवस्था हुई है। किसी भी धातु-द्रव्य में हाथ नहीं दे सकते। कहते थे, 'माँ, लगता है, ऐश्वर्य के व्यापार को मन से एकदम हटा रही हैं।' अब केले के पत्ते पर भोजन करते हैं, मिट्टी के बर्तन में जल पीते हैं। गाडू* छू नहीं सकते, इसीलिए भक्तों को मिट्टी की हण्डी लाने को कहा था। गाडू को या थाल को हाथ लगाते ही हाथ झन्-झन्, कन्-कन् करने लगता है, जैसे सिंगि मछली का काँटा बीन्धता है।

प्रसन्न कई बर्तन (भाण्डे) लाया था, किन्तु बहुत छोटे। ठाकुर हँस

* गाडू = शौच का लोटा।

कर कहते हैं, ''भाण्डे तो बहुत छोटे हैं। किन्तु लड़का बढ़िया है। मेरे कहने पर मेरे सामने नंगा होकर खड़ा हो गया। कैसा बालक!''

('भक्त और कामिनी'— 'साधु सावधान')

बेलघर के तारक एक मित्र के साथ आए हैं।

ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हुए हैं। कमरे में प्रदीप जल रहा है। मास्टर और दो-एक भक्त भी बैठे हैं।

तारक ने विवाह किया हुआ है। बाप-माँ ठाकुर के पास आने नहीं देते। कलकत्ता में बड़ाबाजार के निकट निवास-स्थान है। वहाँ पर ही आजकल तारक प्राय: रहते हैं। तारक को ठाकुर बड़ा प्यार करते हैं। संगी लड़का कुछ तमोगुणी है। धर्म-विषय में और ठाकुर के सम्बन्ध में थोड़ा व्यंग्य-भाव है। तारक की वयस् अन्दाजन (लगभग) सत्ताइस वर्ष है। तारक ने आकर ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण *(तारक के मित्र के प्रति)*—एक बार देवालय आदि समस्त देख आओ ना!

बन्धु— वह समस्त देखा हुआ है।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, तारक जो यहाँ पर आता है, वह क्या खराब बात है?

बन्धु— वह तो आप जानते हैं।

श्रीरामकृष्ण— ये (मास्टर) हेडमास्टर हैं।

बन्धु— ओह!

ठाकुर तारक से कुशल-प्रश्न करते हैं और उनको सम्बोधन करके बहुत-सी बातें कर रहे हैं। तारक अनेक कथावार्ता के उपरान्त विदा ग्रहण करने के लिए उद्यत हुए। ठाकुर उनको नाना विषयों में सावधान कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(तारक के प्रति)*— साधु, सावधान! कामिनी-काञ्चन से सावधान! नारियों की माया में एक बार डूब जाने पर फिर उठकर निकलना नहीं हो पाता। विशालाक्षी नदी का भँवर है, जो एक बार गिर गया वह फिर उठ नहीं सकता! और यहाँ पर एक-एक बार आएगा।

तारक— घर से आने नहीं देते।

कोई भक्त— यदि किसी की माँ कहे तू दक्षिणेश्वर मत जाना? यदि सौगन्ध खिला दें और कहें, यदि जाएगा तो मेरा खून पिएगा?

(केवल ईश्वर के लिए गुरुवाक्य-उल्लंघन)

श्रीरामकृष्ण— जो माँ वैसी बात कहती है, वह माँ नहीं है। वह है अविद्यारूपिणी। उस माँ की बात न सुनने में कोई दोष नहीं है। वह माँ ईश्वर-लाभ के पथ में विघ्न डालती है। ईश्वर के लिए गुरुजनों का वाक्य उल्लंघन करने में दोष नहीं है। भरत ने राम के लिए कैकेयी की बात नहीं सुनी। गोपियों ने कृष्ण-दर्शन के लिए पतियों का मना करना नहीं सुना। प्रह्लाद ने ईश्वर के लिए बाप की बात नहीं सुनी। बलि (राजा) ने भगवान की प्रीति के लिए गुरु शुक्राचार्य की बात नहीं सुनी। विभीषण ने राम को पाने के लिए बड़े भाई रावण की बात नहीं सुनी।

"किन्तु ईश्वर के पथ पर न जाना, यह बात छोड़कर और सब बातें सुनेगा! देखूँ, तेरा हाथ देखूँ!"

यह कहकर ठाकुर तारक का हाथ कितना भारी है— मानो देख रहे हैं। कुछ देर पश्चात् कहते हैं, "थोड़ी-सी आड़ (रुकावट) है— किन्तु वह उतनी-सी भी चली जाएगी। उनके पास प्रार्थना करियो, और यहाँ पर एक-एक बार आइयो— वह ज़रा-सी भी चली जाएगी! कलकत्ता का बऊबाजार का घर तूने किया है?"

तारक— जी नहीं, उन्होंने किया है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उन्होंने किया है या तूने किया है? बाघ के भय से?

ठाकुर कामिनी को बाघ कह रहे हैं।

ठाकुर छोटी खाट पर लेटे हुए हैं, जैसे तारक के लिए सोच रहे हैं। हठात् मास्टर से कह रहे हैं— इनके लिए मैं इतना व्याकुल क्यों हूँ?

मास्टर चुप हैं— मानो क्या उत्तर दें, सोच रहे हैं। ठाकुर फिर

दोबारा जिज्ञासा करते हैं, और कह रहे हैं, ''बोल ना!''

इधर मोहनीमोहन की स्त्री ठाकुर के कमरे में आकर प्रणाम करके एक ओर बैठ गई।

ठाकुर तारक के संगी की बात मास्टर से कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— तारक क्यों उसको साथ लाया?

मास्टर— शायद रास्ते का संगी है। बड़ा लम्बा रास्ता है ना! तभी किसी को संग ले आया।

इस बात के बीच हठात् मोहिनी की स्त्री को सम्बोधन करके कहते हैं, ''अपघात मृत्यु होने पर प्रेतनी होती है। सावधान! मन को समझाएगी! इतना सुनकर, देखकर शेष काल में क्या यही होना है!''

मोहिनी अब विदा ग्रहण कर रहे हैं। ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम कर रहे हैं। स्त्री भी ठाकुर को प्रणाम कर रही है। ठाकुर अपने कमरे में उत्तर की ओर दरवाजे के निकट खड़े हुए हैं। स्त्री सिर पर धोती ढाँककर ठाकुर से आहिस्ते-आहिस्ते कुछ कह रही है।

श्रीरामकृष्ण— यहाँ पर रहेगी?

स्त्री— आकर कुछ दिन रहूँगी। नहबत में माँ हैं, उनके पास।

श्रीरामकृष्ण— ता बेश (यह तो अच्छी बात है)। किन्तु तुम जो कहती हो— मरने की बात! जभी भय लगता है। और फिर पास ही गंगा है!

त्रयोदश खण्ड

कलकत्ता में भक्त-मन्दिर में श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(अन्तरंगों के संग में बसुबलराम-मन्दिर में)

तीन काफी देर के बज चुके हैं। चैत्र मास है, प्रचण्ड-धूप। श्रीरामकृष्ण दो-एक भक्तों के संग में बलराम की बैठक में बैठे हैं। मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं।

आज है 6 अप्रैल, 1885 ईसवी; सोमवार, 25वाँ चैत्र, कृष्णा सप्तमी। ठाकुर कलकत्ता में भक्त-मन्दिर में आए हैं। सांगोपांगों आदि को देखेंगे और निमु गोस्वामी की गली में देवेन्द्र के घर जाएँगे।

(सत्य वाणी और रामकृष्ण— छोटे नरेन, बलराम, पूर्ण)

ठाकुर ईश्वर-प्रेम में रात-दिन मतवाले हुए रहते हैं और अनुक्षण (निरन्तर, सर्वदा) रहते हैं भावाविष्ट व समाधिस्थ। बहिर्जगत में मन एकदम नहीं हैं। केवल अन्तरंगगण जितने दिन अपने-आपको नहीं जान पाते हैं, उतने दिन उनके लिए व्याकुल हैं— बाप-माँ जैसे अक्षम बच्चों के लिए व्याकुल होते हैं और सोचते रहते हैं कि किस प्रकार ये मनुष्य (बड़े) होंगे। अथवा पक्षी जैसे शावकों का लालन-पालन करने के लिए व्याकुल रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— कह दिया था, तीन बजे आऊँगा, तभी आया हूँ। किन्तु बड़ी धूप है।

मास्टर— जी हाँ, आपको बड़ा कष्ट हुआ है।

भक्तगण ठाकुर को हवा करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— छोटे नरेन के लिए और बाबूराम के लिए आया हूँ। पूर्ण को क्यों नहीं लाए?

मास्टर— सभा में आना नहीं चाहता। उसे भय रहता है। आप सबके सामने सुख्याति करते हैं, पीछे घर में पता लग जाता है।

(पण्डितों की और साधुओं की शिक्षा भिन्न— साधु-संग)

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वह तो है ही। यदि कह देता हूँ, अब वैसा नहीं कहूँगा। अच्छा, तुम पूर्ण को धर्मशिक्षा देते हो। यह तो बढ़िया है।

मास्टर— उसके अतिरिक्त विद्यासागर महाशय की पुस्तक 'Selection...' में वही बात ही है— ईश्वर को देह-मन-प्राण देकर प्यार करो।* यह बात सिखाने से मालिक (व्यवस्थापक) यदि नाराज होते हैं तो फिर क्या किया जाए?

श्रीरामकृष्ण— उनकी पुस्तकों में बहुत-सी बातें चाहे होती तो हैं, किन्तु जिन्होंने पुस्तक लिखी हैं, वे धारणा नहीं कर सकते। साधु-संग होने से ही तब धारणा होती है। ठीक-ठीक त्यागी साधु यदि उपदेश देता है, तब ही लोग वह बात सुनते हैं। केवल कोरा पण्डित यदि पुस्तक लिखे या मुख से उपदेश दे, तो उस बात की उतनी धारणा होती नहीं। जिसके पास गुड़ की मटकी रहती है, वह यदि रोगी से कहे, 'गुड़ मत खाना', रोगी उसकी बात उतनी नहीं सुनता।

"अच्छा, पूर्ण की अवस्था कैसी देखते हो? भाव-टाव कुछ होता है?"

---

* With all thy soul love God above
And as thyself thy neighbour love.
(अपनी अन्तरात्मा से ऊपर भगवान को प्यार करो और अपने पड़ोसी को अपनी तरह प्यार करो।)

मास्टर— कहाँ, भाव की अवस्था बाहर तो ऐसी नहीं देखता। एक दिन आपकी वही बात उससे कही थी?

श्रीरामकृष्ण— कौन-सी बात?

मास्टर— वही जो आपने बताई थी!— सामान्य आधार होने पर भाव को सम्हाल पाता नहीं। बड़ा आधार होने पर भीतर खूब भाव होता है किन्तु बाहर प्रकाश नहीं रहता। जैसे कहा था, सायर दीघि (बड़े लम्बे तालाब) में हाथी उतरे तो पता भी नहीं लगता, किन्तु पोखरी (गढ़ी) में उतरे तो उथल-पुथल मच जाती है, किनारों के ऊपर भी जल उछल पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण— बाहर उसका भाव वैसा नहीं होगा। उसका आकर (आधार) अलग है! और सब लक्षण भले हैं। क्या कहते हो?

मास्टर— आँखें दोनों खूब सुन्दर उज्ज्वल हैं— जैसे ठेल कर बाहर आ रही हैं।

श्रीरामकृष्ण— दोनों आँखें केवल उज्ज्वल होने से नहीं होता। किन्तु ईश्वरीय चक्षु पृथक् होते हैं। अच्छा, उससे पूछा था कि उसके बाद (ठाकुर के साथ मिलने के बाद) क्या हुआ था?

मास्टर— जी हाँ, बातें हुई थीं। वह चार-पाँच दिन से कहता है, ईश्वर-चिन्तन करने लगने पर और उनका नाम करने लगने पर आँखों से जल, रोमाञ्च— ये सब होता है।

श्रीरामकृष्ण— तब फिर और क्या?

ठाकुर और मास्टर चुप हैं। कुछ क्षण उपरान्त मास्टर बातें करते हैं। कहते हैं,

"वह खड़ा हुआ है।"

श्रीरामकृष्ण— कौन?

मास्टर— पूर्ण। लगता है अपने घर के दरवाजे पर खड़ा हुआ है। हमारे किसी के जाने पर दौड़ा आएगा, आकर हम सबको नमस्कार कर जाएगा।

श्रीरामकृष्ण— आहा! आहा!

ठाकुर तकिये के सहारे विश्राम करते हैं। मास्टर के संग में एक बारह वर्ष

का बालक आया है, मास्टर के स्कूल में पढ़ता है, नाम है क्षीरोद।

मास्टर कहते हैं,

"लड़का बड़ा अच्छा है। ईश्वर की बातों में खूब आनन्द लेता है।"

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— आँखें दोनों जैसे हिरण की जैसी हैं।

लड़के ने ठाकुर के पैरों में हाथ देकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और अति भक्ति-भाव से ठाकुर की पदसेवा करने लगा। ठाकुर भक्तों की बातें कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— राखाल घर में है। उसका भी शरीर ठीक नहीं है। फोड़ा हुआ है। सुना है उसके एक लड़का होगा।

पल्टु और विनोद सामने बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(पल्टु के प्रति, सहास्य)*— तूने अपने बाप से क्या कहा था? *(मास्टर के प्रति)*— इसने पिता से यहाँ आने के विषय में जवाब दिया था? *(पल्टु के प्रति)*— तूने क्या कहा था?

पल्टु— कहा था, हाँ मैं उनके पास जाता हूँ, यह क्या अन्याय (बुरा) है? *(ठाकुर और मास्टर का हास्य)*। यदि प्रयोजन हुआ तो और भी अधिक बोलूँगा।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, मास्टर के प्रति)*— ना, क्यों जी, इतनी दूर बढ़ना!

मास्टर— जी। ना, इतना बढ़ना ठीक नहीं। *(ठाकुर का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(विनोद के प्रति)*— तू कैसा है? वहाँ पर नहीं गया?

विनोद— जी, जा रहा था, तब फिर भय से नहीं गया। थोड़ा असुख है, शरीर ठीक नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— चल ना, वहाँ पर! सुन्दर हवा है, (रोग) हट जाएगा।

छोटे नरेन आए हैं। ठाकुर हाथ-मुख धोने जा रहे हैं। छोटे नरेन गमछा (परना) लेकर ठाकुर को जल देने गए। मास्टर भी संग में हैं।

छोटे नरेन पश्चिम के बरामदे के उत्तर-कोने में ठाकुर के पाँव धो

रहे हैं। निकट मास्टर खड़े हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण— बड़ी (भारी) धूप है।

मास्टर— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— तुम किस प्रकार इतने-से कमरे के भीतर रहते हो? ऊपर के कमरे में गर्मी नहीं होती?

मास्टर— जी हाँ। खूब गर्म होता है।

श्रीरामकृष्ण— उस पर स्त्री को सिर का रोग है। ठण्डे में रखोगे।

मास्टर— अच्छा जी, कह दिया है नीचे के कमरे में लेटने को।

ठाकुर बैठने वाले कमरे में फिर दोबारा आकर बैठ गए हैं और मास्टर से कहते हैं,

''तुम इस रविवार को क्यों नहीं गए?''

मास्टर— जी, घर में तो और कोई है नहीं। उस पर फिर रोग (स्त्री को सिर का) है। कोई देखने वाला नहीं।

ठाकुर गाड़ी में निमु गोस्वामी की गली में देवेन्द्र के घर जा रहे हैं। साथ छोटे नरेन, मास्टर, और भी दो-एक भक्त हैं। पूर्ण की बात कह रहे हैं। पूर्ण के लिए व्याकुल हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— खूब आधार है! वैसा यदि न होता तो अपने लिए क्या जप करवाता? वह तो यह सब बात जानता नहीं।

मास्टर और भक्तगण अवाक् होकर सुन रहे हैं कि ठाकुर ने पूर्ण के लिए बीज-मन्त्र जप किया है।

श्रीरामकृष्ण— आज उस को ले आने से ही होता! लाए क्यों नहीं?

छोटे नरेन की हँसी देखकर ठाकुर और भक्तगण सब हँसते हैं। ठाकुर आनन्द से उसको दिखाकर मास्टर से कह रहे हैं—

''देखो, देखो, अनजान-सा हँस रहा है। जैसे कुछ जानता नहीं। किन्तु मन के भीतर कुछ भी नहीं, तीनों ही मन में नहीं— ज़मीन, जोरू, रुपया। कामिनी-

काञ्चन मन से एकदम (बिलकुल) नहीं जाए तो भगवान-लाभ नहीं होता।''

ठाकुर देवेन्द्र के घर जा रहे हैं। दक्षिणेश्वर में देवेन्द्र से एक दिन कहा था, ''सोच रहा हूँ एक दिन, तुम्हारे घर जाऊँगा।'' देवेन्द्र ने कहा था, ''मैं भी यही कहने के लिए आज आया हूँ, इस रविवार को जाना होगा।'' ठाकुर ने कहा, ''किन्तु तुम्हारी आय कम है, अधिक लोगों को मत कहो। और गाड़ी-भाड़ा बहुत अधिक है।'' देवेन्द्र ने हँसकर कहा था, आय कम ही हो चाहे, 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' (उधार करके घी पीजिए, घी पीना चाहिए)। ठाकुर यह बात सुनकर हँसने लगे। हँसी फिर थमती ही नहीं।

कुछ देर में घर पहुँच कर कहते हैं,

''देवेन्द्र, मेरे खाने के लिए कुछ मत करो, ऐसे ही सामान्य। शरीर उतना अच्छा नहीं है।''

द्वितीय परिच्छेद

(देवेन्द्र के घर में भक्तों के संग में)

श्रीरामकृष्ण देवेन्द्र के घर, बैठकखाने में भक्तों की मजलिस करके बैठे हुए हैं। बैठकखाना मकान के एकतले पर है। सन्ध्या हो गई है। कमरे में प्रदीप जल रहा है। छोटे नरेन, राम, मास्टर, गिरीश, देवेन्द्र, अक्षय, उपेन्द्र इत्यादि अनेक भक्त निकट बैठे हुए हैं। ठाकुर एक छोकरे भक्त को देख रहे हैं और आनन्द में मग्न हो रहे हैं। उसको उपदेश करते हुए भक्तों से कह रहे हैं,

''तीनों ही इसमें बिलकुल भी नहीं हैं, जो संसार में बद्ध करते हैं— ज़मीन, रुपया और स्त्री। इन्हीं तीन वस्तुओं के ऊपर मन रखने पर भगवान के ऊपर मन रखने का योग नहीं होता। इसने और फिर क्या देखा था? *(भक्त के प्रति)* बतला रे, क्या देखा था?

(कामिनी-काञ्चन-त्याग और ब्रह्मानन्द)

भक्त *(सहास्य)*— देखे थे, कितने सारे 'गू' के भाण्डे! कोई भाण्डे के ऊपर बैठा है, कोई कुछ अन्तर पर बैठा हुआ है।

श्रीरामकृष्ण— संसारी मनुष्य जो ईश्वर को भूले हुए हैं, उनकी वही दशा इसने देखी है। जभी मन से इसका सब त्याग हो रहा है। कामिनी-काञ्चन के ऊपर से यदि मन चला जाता है, फिर क्या भावना (चिन्ता)!

"उह! कैसा आश्चर्य! मेरा तो कितना जप-ध्यान करके तब गया था। इसका एकदम इतनी शीघ्र क्योंकर मन से त्याग हो गया? काम का चले जाना क्या सहज व्यापार है! मेरी ही छः मास पश्चात् छाती कैसे-कैसे कर रही थी! तब वृक्ष के नीचे लेटा हुआ रोने लगा था। कहा था, माँ! यदि वैसा होगा, तो फिर गले पर छुरी मार लूँगा!

(भक्तों के प्रति) "कामिनी-काञ्चन यदि मन से चला गया, तो फिर और बाकी क्या रह गया? तब है केवल ब्रह्मानन्द।"

तब शशी अभी-अभी ठाकुर के पास आना-जाना कर रहे थे। वे तब विद्यासागर के कॉलिज में बी०ए० के प्रथम वर्ष में पढ़ते थे। ठाकुर अब उनकी बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— वही जो लड़का जाता है, देखा है! उसका मन एक-एक बार रुपये में कुछ दिन जाएगा। किन्तु कइयों का देखा है, बिलकुल भी नहीं जाता। कई लड़के विवाह ही नहीं करेंगे।

भक्तगण निःशब्द सुन रहे हैं।

(अवतार को कौन पहचान सकता है?)

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— मन से कामिनी-काञ्चन पूर्णतः बिना गए अवतार को पहचानना कठिन है। बैंगन वाले से हीरे के दाम पूछे थे। वह बोला, मैं इसके बदले नौ सेर बैंगन दे सकता हूँ, इससे एक भी अधिक नहीं

दे सकता। *(सबका हास्य और नरेन का उच्च हास्य।)*

ठाकुर ने देख लिया, छोटे नरेन ने बात का मर्म फट से समझ लिया है।

श्रीरामकृष्ण— इसकी कैसी सूक्ष्म बुद्धि है! न्यांग्टा इसी प्रकार झट से समझ लिया करता था— गीता, भागवत, जहाँ जो होता, वह समझ लेता था।

(कौमार वैराग्य आश्चर्य— वेश्या का उद्धार कैसे होता है ?)

श्रीरामकृष्ण— बचपन से ही कामिनी-काञ्चन त्याग, यह तो बड़ा आश्चर्य! बहुत ही कम लोगों का होता है। वह न हो तो जैसे चील-खाया आम— ठाकुर की सेवा में नहीं लगता। स्वयं खाने में भय होता है।

''पहले अनेक पाप किए हैं, फिर बूढ़ी आयु में हरि-नाम करता है— यह मन्द से अच्छा है।

''अमुक मल्लिक की माँ बहुत बड़े व्यक्ति के घर की औरत है। वेश्या की बात में पूछा, उनका क्या उद्धार होगा? निज पहले-पहले अनेक प्रकार किया था ना! तभी पूछा। मैंने कहा— 'हाँ होगा, यदि आन्तरिक व्याकुल होकर रोए और कहे, अब और नहीं करूँगी। केवल हरि-नाम करने से क्या होगा! आन्तरिक रोना होगा'।''

तृतीय परिच्छेद

(देवेन्द्र-भवन में ठाकुर कीर्त्तनानन्द में और समाधिमन्दिर में)

अब खोल-करताल लेकर संकीर्त्तन हो रहा है। कीर्त्तनिया गा रहा है—

कि दिखिलाम रे, केशव भारतीर कुटिरे,
अपरूप ज्योति, श्री गौरांग मूरति,
दुनयने प्रेम बहे शतधारे॥

गौर, मत्त मातंगेर प्राय, प्रेमावेशे नाचे गाय,
कभु धूलाते लुटाय, नयन जले भासे रे।
काँदे आर बोले हरि, स्वर्ग मर्त्य भेद करि, सिंह रबे रे,
आबार दन्ते तृण लये, कृतांजलि होये,
दास्य मुक्ति जाचेन द्वारे द्वारे॥

किबा मुड़ाये चाँचर केश, धरेछेन योगीर वेश,
देखे भक्ति प्रेमावेश, प्राण कँदे उठे रे।
जीवेर दुःखे कातर होये, ऐलेन सर्वस्व त्यजिये, प्रेम विलाते रे,
प्रेमदासेर वांछा मने, श्री चैतन्य चरणे दास होये, बेड़ाइ द्वारे द्वारे॥

[भावार्थ— केशव भारती की कुटीर में क्या देखकर आया हूँ रे भाई! एक अपरूप ज्योति, श्री गौरांग मूरति! दोनों नयनों से प्रेम शतधाराओं में बह रहा है। गौर मस्त हाथी की भाँति पागल होकर प्रेमावेश में नाचते-गाते हैं, कभी धूल में लोटते हैं। जल नयनों में तैर रहा है। रोते हैं और हरि बोल रहे हैं। स्वर्ग, मर्त्य को सिंह-गरज से भेदन कर रहे हैं और फिर दाँत में तृण लेकर हाथ जोड़कर, द्वारे-द्वारे दास्य मुक्ति माँगते हैं। या अपने कुंचित केशों को मुण्डवाकर, योगी-वेश धारण किया है। उनकी भक्ति का प्रेमावेश देखकर प्राण रो उठता है। जीव के दुःख से कातर होकर, सर्वस्व त्याग करके, प्रेम बाँटने आए हैं, भाई! प्रेमदास के मन में इच्छा है कि श्री चैतन्य-चरणों का दास होकर द्वार-द्वार पर फिरूँ।]

ठाकुर गाना सुनते-सुनते भावाविष्ट हो रहे हैं। कीर्त्तनिया श्रीकृष्ण-विरह-विधुरा (श्रीकृष्ण के विरह में दुःखी) ब्रज-गोपियों की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं।

ब्रजगोपियाँ माधवी-कुञ्ज में माधव को खोज रही हैं—

रे माधवी! आमार माधव दे!
(दे दे दे, माधव दे!)
आमार माधव आमाय दे, दिए बिना मूल्य किने ने।
मीनेर जीवन, जीवन जेमन, आमार जीवन माधव तेमन।
(तूइ लुकाइये रेखेछिस, ओ माधवी!)
(अबला सरला पेये!) (आमि बांचि ना बांचि ना)
(माधवी ओ माधवी, माधव बिने) (माधव अदर्शने)।

[भावार्थ— अरी माधवी! मेरा माधव दे। दे दे दे, माधव दे! मेरा माधव मुझे दे, मूल्य दिए बिना ही तू मुझे खरीद ले। मछली का जीवन जैसे पानी है, वैसे मेरा जीवन माधव है।

तूने छिपा रखा है। हमें अबला, सरला जानकर तूने उसे छिपा रखा है। मैं बचूँगी नहीं। ओ माधवी! ओ माधवी! माधव बिना, माधव के दर्शन बिना नहीं बचूँगी।]

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बीच-बीच में पद जोड़ रहे हैं—

(वह मथुरा कितनी दूर है, जहाँ मेरा प्राणवल्लभ है!)

ठाकुर समाधिस्थ! स्पन्दहीन देह! अनेक क्षण स्थिर रहे।

ठाकुर थोड़े प्रकृतिस्थ हुए। किन्तु अब भी भावाविष्ट हैं। ऐसी अवस्था में भक्तों के विषय में बोल रहे हैं। बीच-बीच में माँ के संग बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भावस्थ)*— माँ! उसे खींच लियो, मैं अधिक सोच नहीं सकता! *(मास्टर के प्रति)*— तुम्हारा सम्बन्धी! उसकी ओर थोड़ा-सा मन है। *(गिरीश के प्रति)*— ''तुम गाली-गलौच, खराब बात, बहुत समय बोलो; वैसा होता रहे। वह सब निकल जाना ही भला है। बदरक्त रोग किसी-किसी को होता है। जितना निकल जाए उतना ही भला है।

''उपाधि-नाश के समय ही शब्द होता है। लकड़ी जलते समय चड़्-चड़् शब्द करती है। सम्पूर्ण जल जाने पर फिर शब्द नहीं रहता।

''तुम दिन पर दिन शुद्ध होते जाओगे। तुम्हारी दिन-दिन खूब उन्नति होगी। लोग देखकर अवाक् हो जाएँगे। मैं अधिक नहीं आ सकूँगा, जैसा भी हो, तुम्हारा ऐसे ही हो जाएगा।''

ठाकुर श्रीरामकृष्ण का भाव फिर और घनीभूत हो रहा है। फिर और, माँ के संग बातें कर रहे हैं, 'माँ! जो भला है उसको अच्छा करने में क्या बहादुरी है? माँ, मरे को मारने से क्या होगा? जो खड़ा हुआ है, उसको मारने में ही तो है तुम्हारी महिमा!'

ठाकुर किञ्चित् स्थिर होकर हठात् कुछ ऊँचे स्वर में कहते हैं— ''मैं दक्षिणेश्वर से आया हूँ। जा रहा हूँ माँ!'' जैसे एक बच्चा दूर से माँ की पुकार सुनकर उत्तर देता है!

ठाकुर की अब फिर निस्पन्द देह है, समाधिस्थ बैठे हुए हैं। भक्तगण अनिमेष-लोचन निःशब्द देख रहे हैं।

ठाकुर भाव में फिर और कहते हैं, ''मैं लुचि (पूरी) अब नहीं खाऊँगा।''

मुहल्ले से दो-एक गोस्वामी आए थे। वे उठकर चले गए।

चतुर्थ परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण देवेन्द्र के घर भक्तों के संग)

ठाकुर भक्तों के संग आनन्द में कथावार्ता कर रहे हैं। चैत्र मास। बड़ी गर्मी है। देवेन्द्र ने कुल्फी-बरफ तैयार की है। ठाकुर और भक्तों को खिला रहे हैं। भक्तगण कुल्फी खाकर आनन्द कर रहे हैं। मणि धीरे-धीरे कह रहे हैं— 'एंकोर! एंकोर।' (अर्थात् और कुल्फी दो) और सब हँस रहे हैं। कुल्फी देखकर ठाकुर को बिलकुल बालक की न्यायीं आनन्द हुआ है।

श्रीरामकृष्ण— सुन्दर कीर्त्तन हुआ। गोपियों की अवस्था सुन्दर कही— 'री माधवी, मेरा माधव दे'— गोपियों की प्रेमोन्माद की अवस्था। कैसा आश्चर्य! कृष्ण के लिए पागल!

एक भक्त और एक को दिखाकर कह रहा है— इनका सखी-भाव है, गोपी-भाव।

राम— इनके भीतर दोनों ही हैं। मधुर भाव और फिर ज्ञान का कठोर भाव भी है।

श्रीरामकृष्ण— क्या भाई ?

ठाकुर अब सुरेन्द्र की बात कह रहे हैं!

राम— मैंने खबर दी थी, आया कहाँ?

श्रीरामकृष्ण— कर्म में रहकर फिर निकल नहीं सकता।

एकजन भक्त— रामबाबू, आपकी बातें लिख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्या लिखा है ?

भक्त— 'परमहंस की भक्ति'— इस नाम से एक विषय लिखा है।

श्रीरामकृष्ण— तब फिर क्या, राम का खूब नाम होगा।

गिरीश *(सहास्य)*— वह आपके चेले के नाम से।

श्रीरामकृष्ण— मेरा चेला-शेला नहीं है। मैं हूँ राम का दासानुदास।

मुहल्ले के कोई-कोई व्यक्ति आए थे। किन्तु उन्हें देखकर ठाकुर को आनन्द नहीं हुआ। ठाकुर एक बार बोले, "यह कैसा मुहल्ला है ? यहाँ कोई भी नहीं देख रहा हूँ।"

देवेन्द्र अब ठाकुर को घर के भीतर ले जा रहे हैं। वहाँ पर ठाकुर के जलपान का आयोजन हुआ है। ठाकुर भीतर गए। ठाकुर सहास्यवदन। घर के अन्दर से लौट आए और फिर बैठक में बैठ गए। भक्तगण निकट बैठे हैं। उपेन्द्र[1] और अक्षय[2] ठाकुर के दोनों ओर बैठ कर पदसेवा कर रहे हैं। ठाकुर देवेन्द्र के घर की स्त्रियों की बातें बतला रहे हैं— "बढ़िया स्त्रियाँ हैं, देहाती स्त्रियाँ हैं कि ना! खूब भक्ति।"

ठाकुर आत्माराम! अपने आनन्द में गाना गा रहे हैं। किस भाव में गाना गा रहे हैं! अपनी अवस्था स्मरण करके उनको कैसा भावोल्लास हुआ है! जभी क्या कई गाने गा रहे हैं ?

गाना— सहज मानुष ना होले सहजके ना जाय चेना।

[सरल मनुष्य हुए बिना 'सहज' को पहचाना नहीं जाता।]

गाना— दरवेश दाँड़ारे, साधेर करओोया किस्तिधारी।
दाँड़ारे ओ तोर भाव (रूप) नेहारि॥

[अरे रमते-राम संन्यासी, ज़रा रुको। अपना भिक्षा-पात्र हाथ में लिए तनिक ठहरो ताकि मैं तुम्हारा ज्योतिर्मय रूप निहार सकूँ।]

---

1 उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, ठाकुर के भक्त और 'वसुमती' के मालिक।

2 श्री अक्षय कुमार सेन, ठाकुर के भक्त-कवि। ये ही 'श्रीरामकृष्ण पुन्थी' लिखकर चिरस्मरणीय हो गए हैं। बाँकुड़ा जिले के अन्दर मयनापुर ग्राम इनकी जन्म-भूमि है।

गाना— ऐसेछेन एक भावेर फकिर।
(ओ से) हिन्दुर ठाकुर, मुसलमानेर पीर॥
[एक भाव के फकीर आए हैं। वे हिन्दुओं के ठाकुर हैं और मुसलमानों के पीर।]

गिरीश ने ठाकुर को प्रणाम करके विदा ग्रहण की। ठाकुर ने भी गिरीश को नमस्कार किया।

देवेन्द्र आदि भक्तों ने ठाकुर को गाड़ी में बिठा दिया।

देवेन्द्र ने बैठक के दक्षिणी आँगन में आकर देखा कि तख्तपोश के ऊपर उनके मुहल्ले का एक व्यक्ति अब भी सोया हुआ है। वे बोले, "उठ, उठ"! व्यक्ति आँखें मलता-मलता उठकर बोला, "क्या परमहंसदेव आ गए?" सब ही हो-हो कर के हँसने लगे। यह व्यक्ति ठाकुर के आने से पहले आया था, ठाकुर को मिलने के लिए। गरमी लगने से हवा में आँगन में तख्तपोश पर चटाई बिछाकर सो गया था।

ठाकुर दक्षिणेश्वर जा रहे हैं। गाड़ी में मास्टर से आनन्द में कहते हैं— "खूब कुल्फी खाई! तुम (मेरे लिए) ले आना कोई चार-पाँच।" ठाकुर फिर और कह रहे हैं, "अब इन कई छोकरों (लड़कों) के ऊपर मन खिंच रहा है— छोटे नरेन, पूर्ण और तुम्हारा सम्बन्धी।"

मास्टर— द्विज?

श्रीरामकृष्ण— ना, द्विज तो है ही। (अब) उससे बड़े के ऊपर मन जा रहा है।

मास्टर— ओह!

ठाकुर आनन्द में गाड़ी में जा रहे हैं।

चतुर्दश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बलराम-मन्दिर में भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर के निज मुख द्वारा कथित साधना-विवरण)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलकत्ता में श्रीयुक्त बलराम की बैठक में भक्तों के संग बैठे हुए हैं। गिरीश, मास्टर, बलराम— क्रमश: छोटे नरेन, पल्टु, द्विज, पूर्ण, महेन्द्र मुखुज्ये इत्यादि— अनेक भक्त उपस्थित हैं। धीरे-धीरे ब्राह्मसमाज के श्रीयुक्त त्रैलोक्य सान्याल, जयगोपाल सेन आदि अनेक भक्त आ गए हैं। स्त्री भक्त भी अनेक आई हैं। वे चिक की ओट में बैठकर ठाकुर के दर्शन कर रही हैं। मोहिनी की स्त्री भी आई है— पुत्रशोक में उन्मादिनी की न्यायीं— वे और उनके जैसी सन्तप्त बहुत-सी आई हैं। यही विश्वास है कि ठाकुर के निकट निश्चय ही शान्ति प्राप्त होगी।

आज है पहला बैसाख, चैत्र की कृष्णा त्रयोदशी, 12 अप्रैल, 1885 ईसवी, रविवार। समय, 3 बजे होंगे।

मास्टर ने आकर देखा, ठाकुर भक्तों की मजलिस करके बैठे हैं और अपनी साधना का विवरण और नाना प्रकार की आध्यात्मिक अवस्था का वर्णन कर रहे हैं। मास्टर ने आकर ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और उनके आदेश से उनके निकट आकर बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— उस समय (साधना के समय) ध्यान में देखा करता था, सचमुच कोई जन निकट हाथ में शूल पकड़े हुए बैठा है। भय

दिखाता था— 'यदि ईश्वर के पादपद्मों में मन नहीं रखेगा तो शूल के आघात (वार) से मुझे मार देगा। मन ठीक (सच्चा) नहीं होने से छाती चली जाएगी।'

(नित्य-लीलायोग— पुरुष-प्रकृति— विवेकयोग)

"कभी-कभी माँ ऐसी अवस्था कर देती थीं कि मन नित्य से लीला में उतर आया करता। और फिर कभी लीला से नित्य में मन चढ़ जाता।

"जब लीला में मन उतर आता, तब कभी-कभी सीता-राम का चिन्तन रात-दिन किया करता था और सीता-राम-रूप सर्वदा दर्शन हुआ करते। रामलला (राम का अष्टधातु निर्मित छोटा विग्रह) को लेकर सर्वदा घूमता रहता, कभी नहलाता, कभी खिलाता और कभी-कभी राधा-कृष्ण के भाव में रहता। वही रूप सर्वदा दर्शन हुआ करते। और कभी-कभी गौरांग के भाव में रहा करता। दोनों ही भावों का मिलन— पुरुष और प्रकृति-भाव का मिलन। इस अवस्था में सर्वदा ही गौरांग का रूप-दर्शन होता था। फिर और अवस्था बदल गई! तब लीला त्याग करके नित्य में मन चढ़ गया! सहजन और तुलसी सब एक बोध होने लगे। ईश्वरीय रूप और अच्छे नहीं लगते थे। कहा था, 'तुमसे तो विच्छेद हो जाता है'। तब उनको (पैर के) तले के नीचे रख लिया था। कमरे में जितने ईश्वरीय पट व छवियाँ थीं, सब उतार डाली थीं। केवल उसी अखण्ड सच्चिदानन्द, उसी आदिपुरुष का चिन्तन करने लगा था। स्वयं दासी-भाव में रहता था— पुरुष की दासी।

"मैंने सब प्रकार के साधन किए हैं। साधना तीन प्रकार की है— सात्त्विक, राजसिक, तामसिक।

"**सात्त्विक साधना** में उनको व्याकुल होकर पुकारता है अथवा उनका शुद्ध नाम ही लेता रहता है और कोई भी फलाकांक्षा नहीं। **राजसिक साधना** में नाना प्रकार की प्रक्रिया करता है— इतनी बार पुरश्चरण करना होगा, इतना तीर्थ करना होगा, पंचतपा करना होगा, षोडशोपचार-पूजा करनी होगी इत्यादि। **तामसिक साधना** है तमोगुण-आश्रय करके साधना। जय काली! क्या! तू

दर्शन नहीं देगी? अपने गले पर छुरी मार लूँगा यदि नहीं दिखाई देगी। इस साधना में शुद्धाचार नहीं होता— जैसे तन्त्र की साधना।

"उस अवस्था (साधना की अवस्था) में अद्भुत सब दर्शन हुआ करते। आत्मा का रमण प्रत्यक्ष देखा करता था। मेरे जैसे रूप वाले एक जन ने मेरे शरीर में प्रवेश किया! और षट्पद्मों के प्रत्येक पद्म के संग रमण करने लगा। षट्पद्म बन्द थे— टक-टक करके रमण करता और एक पद्म प्रस्फुटित हो जाता और उर्ध्वमुख हो जाता! इस प्रकार मूलाधार, स्वाधिष्ठान, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्र, सहस्रार— सब पद्म खिल गए। और नीचे मुख था, ऊर्ध्वमुख हो गए, प्रत्यक्ष देखा था।"

(ध्यानयोग साधना— 'निवात निष्कम्पमिव प्रदीपम्')

"साधना के समय मैं ध्यान करते-करते आरोप करता था 'प्रदीप की शिखा— जब हवा नहीं होती, तनिक भी नहीं हिल रही होती'— उसका आरोप किया करता था।

"गम्भीर ध्यान में बाह्यज्ञान शून्य हो जाता है। एक व्याध पक्षी को मारने के लिए निशाना लगा रहा है। पास से वर चला जा रहा है। संग में बाराती हैं। कितनी रोशनी, बाजे, गाड़ियाँ, घोड़े! कितनी ही देर तक पास से चले गए। किन्तु व्याध को होश नहीं। उसे पता भी नहीं लगा कि पास से वर चला गया।

"कोई, अकेला एक तालाब के किनारे मछली पकड़ रहा है। बड़ी देर पश्चात् फातना[1] हिलने लगा, बीच-बीच में टेढ़ा होने लगा। वह तब छिप[2] हाथ में लेकर खींच मारने का उद्योग कर रहा है। ऐसे समय किसी पथिक ने निकट आकर पूछा, 'महाशय, अमुक बाँडुज्य का घर कहाँ पर है— बता सकते हैं?' कोई उत्तर नहीं। यह व्यक्ति तब छिप हाथ में लेकर खींच मारने

1 फातना मछली पकड़ने की बंसी की डोरी में बँधी हुई हल्की लकड़ी या सोले का टुकड़ा जो जल पर तैरता रहता है।

2 पतला बाँस जिसके सिरे पर मछली फँसाने के लिए सूत और बंसी लगी होती है।

का उद्योग कर रहा है। पथिक बार-बार उच्च स्वर में कहने लगा, महाशय, अमुक बाँडुज्य का घर कहाँ पर है— बता सकते हो? इस व्यक्ति को होश नहीं। इसका हाथ काँप रहा है, केवल फातना की ओर दृष्टि है। तब पथिक विरक्त (परेशान) होकर चला गया। वह काफी दूर चला गया। उस समय फातना डूब गया, और यह व्यक्ति खींच मारकर मछली को सूखे पर ले आया। तब अंगोछे से मुख पूँछकर, चीत्कार करके पथिक को पुकारता है— 'अरे भाई! सुनो-सुनो!' पथिक लौटना नहीं चाहता, बहुत पुकारने पर लौटा। आकर बोला, 'क्यों महाशय, अब फिर क्यों पुकार रहे हो?' तब यह बोला, 'तुम मुझ से क्या कह रहे थे?' पथिक ने कहा, 'तब इतनी बार पूछा था— और अब पूछते हो क्या कहता था!' यह बोला, 'तब तो फातना डूब रहा था, जभी मैं कुछ भी सुन नहीं पाया था।'

"ध्यान में इसी प्रकार एकाग्रता हो जाती है, अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देता, सुनाई भी नहीं देता। स्पर्श-बोध तक भी नहीं होता। साँप शरीर के ऊपर से चला जाता है, पता तक नहीं लगता। जो ध्यान करता है वह समझ नहीं सकता— साँप भी समझ नहीं सकता। गम्भीर ध्यान में इन्द्रियों के सभी कार्य बन्द हो जाते हैं। मन बहिर्मुख नहीं रहता— जैसे घर का बाहरी द्वार बन्द हो गया हो। इन्द्रियों के पाँच ही विषय हैं— रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द— बाहर पड़े रहेंगे।

"ध्यान के समय प्रथम-प्रथम इन्द्रियों के विषय सब सामने आते हैं— गम्भीर ध्यान में वे सब फिर और नहीं आते, बाहर पड़े रहते हैं। ध्यान करते-करते मेरा कितना कैसा-कैसा दर्शन हुआ करता था! प्रत्यक्ष देखा था— सामने रुपयों का ढेर, शाल, थाल भरा सन्देश, दो लड़कियाँ, उनके बड़े घेरे वाली नथें। फिर मन से पूछा था— 'मन, तू क्या चाहता है? कुछ भोग करना चाहता है क्या?' मन ने कहा, 'नहीं, कुछ भी नहीं चाहता। ईश्वर के पादपद्म छोड़ और कुछ भी नहीं चाहता।' लड़कियों का भीतर-बाहर समस्त देख लिया था— जैसे काँच के कमरे की समस्त वस्तुएँ बाहर से दिखाई देती हैं! उनके भीतर देखा था— आँतें, रक्त, विष्ठा, कृमि (कीड़े), कफ, नाल, पेशाब— यही सब हैं।"

(अष्ट सिद्धि और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— गुरुगिरि और वेश्या-वृत्ति)

श्रीयुक्त गिरीश ठाकुर का नाम करके रोग ठीक करेंगे— यह बात कभी-कभी कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश प्रभृति भक्तों के प्रति)*— जिनकी हीन बुद्धि है, वे ही सिद्धाई माँगते हैं। रोग ठीक करना, मुकदमा जिताना, जल के ऊपर पैदल चलना— ये सब। जो शुद्ध भक्त हैं, वे ईश्वर के पादपद्मों को छोड़ और कुछ भी नहीं माँगते। हृदे ने एक दिन कहा, 'मामा! माँ से कुछ शक्ति माँगो, कुछ सिद्धाई माँगो।' मेरा है बालक का स्वभाव— काली-मन्दिर में जप करते समय माँ से कहा, 'माँ, हृदे कुछ शक्ति माँगने, कुछ सिद्धाई माँगने को कहता है।' तुरन्त दिखा दिया सामने आकर पीछे मुड़कर उकड़ूँ (घुटने उठाकर केवल पैरों पर बैठना) पैरों के भार बैठ गई— एक बूढ़ी वेश्या, चालीस वर्षीया— धामा पोंद (टोकरी) जैसे चूतड़— काली कन्नी की धोती पहने पड़-पड़ करके हग रही है! माँ ने दिखा दिया कि सिद्धाई इसी बूढ़ी वेश्या की विष्ठा है! तब हृदे को जाकर धमकाया और कहा, 'तूने क्यों मुझको ऐसी बात सिखाई है? तेरे लिए ही तो मुझे इस प्रकार हुआ!'

"जिनके पास तनिक-सी सिद्धाई रहती है, उनकी प्रतिष्ठा, नाम, यश— ये सब हो जाता है। बहुतों की इच्छा होती है गुरुगिरि करें— पाँच जन (अनेक जन) मान्यता दें, शिष्य-सेवक हो जाएँ। लोग कहेंगे, गुरुचरण के भाई का आजकल बढ़िया समय है— कितने लोग आते-जाते हैं, शिष्य-सेवक बहुत हो गए हैं, घर में चीजों का ढेर लग रहा है। कितनी वस्तुएँ, कितने लोग ला देते हैं! वह यदि चाहे— उसकी ऐसी शक्ति हो गई है कि वह कितने ही लोगों को खिला सकता है।

"गुरुगिरि वेश्यागिरि जैसी है। तुच्छ रुपये-पैसे, नाम-यश, शरीर-सेवा— इन सबके लिए अपने-आप को बेचना! जिस शरीर, मन, आत्मा के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जाता है, उसी शरीर, मन, आत्मा को सामान्य वस्तु के लिए ऐसा बनाकर रखना ठीक नहीं।* किसी ने बताया था साबि का अब खूब समय है, अब इसका बढ़िया (रहन-सहन) हो गया है— एक कमरा

---

* आत्मानम् नावसादयेत्— गीता

किराए पर (भाड़े पर) ले लिया है; कण्डे (उपले) रे, गोबर रे, तख़्तपोश, दो-चार बर्तन हो गए हैं, बिछौना, चटाई (मादुर बारीक बढ़िया) तकिये— कितने लोग वशीभूत हैं, जाते-आते हैं! अर्थात् साबि अब वेश्या हो गई है। जभी सुख समाता नहीं। पहले वह भले व्यक्ति के घर की दासी थी, अब वेश्या हो गई है! सामान्य-सी वस्तु के लिए अपना सर्वनाश!''

(श्रीरामकृष्ण की साधना में प्रलोभन (temptation)— ब्रह्मज्ञान और अभेदबुद्धि)

श्रीरामकृष्ण और मुसलमान धर्म

''साधना के समय ध्यान करते-करते मैं और भी कितना कुछ देखा करता था। बेलतले में ध्यान कर रहा था। पाप-पुरुष आकर कितने प्रकार के लोभ दिखाने लगा। लड़ाकू गोरे का रूप धर कर आया था। रुपया, मान, रमण-सुख, नाना प्रकार की शक्ति— ये सब देना चाहता था। मैं माँ को पुकारने लगा। बड़ी गुह्य बात है। माँ ने दर्शन दिया। तब मैंने कहा था, 'माँ उसको काट डालो!' माँ का वही रूप— वही भुवनमोहन रूप— याद आ रहा है! कृष्णमयी* का रूप!— किन्तु उनकी (माँ की) दृष्टि में जैसे जगत डोल रहा है!''

ठाकुर चुप हो गए। ठाकुर फिर और कहते हैं—

''और भी कितना क्या-क्या पर बोलने नहीं देता!— मुख को जैसे कोई अटका रहा है! (बन्द कर रहा है)!

''सजना (सहजना) व तुलसी एक बोध होता! भेदबुद्धि दूर कर दी। बटतले ध्यान कर रहा था, दिखाया एक दाढ़ी वाला मुसलमान (मोहम्मद/ पैगम्बर) सानकि (चीनी मिट्टी की थाली) में भात लेकर सामने आ गया। सानकि में से म्लेच्छों को खिलाकर मुझको थोड़ा-सा दे गया। माँ ने दिखलाया, 'एक बोइ दुइ नाइ' (एक के अतिरिक्त दूसरा नहीं है)। सच्चिदानन्द ही नाना रूप

* कृष्णमयी— बलरामबसु की बालिका कन्या।

धारण किए हुए हैं। वे ही जीव-जगत समस्त बने हुए हैं। वे ही अन्न हुए हैं।''

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का बालक-भाव और भावावेश)

(गिरीश, मास्टर आदि के प्रति)— ''मेरा है बालक-स्वभाव। हृदे ने कहा, मामा! माँ से कुछ शक्ति की बात कहो— तुरन्त माँ से कहने चल पड़ा! ऐसी अवस्था में रखा हुआ था कि जो व्यक्ति पास रहेगा उस की बात सुननी ही पड़ती थी! छोटा बच्चा जैसे कोई पास न रहने से सब अन्धकार ही देखता है, मेरा भी वैसा ही होता। हृदय जब पास न रहता तो प्राण जाय-जाय होता। यह देखो, वही भाव ही आ रहा है!— बातें करते-करते उद्दीपन हो रहा है।''

अब बात करते-करते ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं। देश-काल-बोध हटा जा रहा है। अति कष्ट से भाव संवरण करने की चेष्टा कर रहे हैं। भाव में कह रहे हैं, 'अब भी तुम लोगों को देख रहा हूँ, किन्तु बोध हो रहा है जैसे चिरकाल से तुम लोग बैठे हुए हो, कब आए हो, कहाँ पर आए हो— यह सब कुछ भी स्मरण नहीं है।''

ठाकुर कितनी ही देर स्थिर हुए रहे।

किञ्चित् प्रकृतिस्थ होकर कह रहे हैं, 'जल पिऊँगा।' समाधि भंग होने के बाद मन को नीचे उतारने के लिए ठाकुर यही बात प्राय: कहते हैं। गिरीश नूतन आने लगे हैं, जानते नहीं हैं। तभी जल लाने के लिए उद्यत हुए। ठाकुर ने मना किया और कहा, 'नहीं भाई, अब नहीं पी सकूँगा।' ठाकुर और भक्तगण थोड़ी देर चुप रहे। अब ठाकुर फिर बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— हाँ जी, क्या मेरे से कुछ अपराध हो गया है— ये सब (गुह्य) बातें बताने से?

मास्टर क्या कहें! चुप किए रहे। तब ठाकुर फिर और कहते हैं, ''ना, अपराध क्यों होगा? मैं तो लोगों के विश्वास के लिए बताता हूँ।''

कितने समय पश्चात् जैसे कितना अनुनय करके कह रहे हैं, ''उनके संग मिला दोगे?'' (अर्थात् पूर्ण के संग में)।

मास्टर *(संकुचित भाव से)*— जी, अभी इसी समय ही खबर भेज दूँगा।

श्रीरामकृष्ण *(साग्रह)*— वहीं पर सिरा (कोना) मिल रहा है।

ठाकुर क्या कह रहे थे कि अन्तरंग भक्तों के भीतर पूर्ण अन्तिम (शेष) भक्त है, उनके पश्चात् प्राय: कोई नहीं है ?

द्वितीय परिच्छेद

(पूर्वकथा— श्रीरामकृष्ण का महाभाव— ब्राह्मणी की सेवा)

गिरीश, मास्टर आदि को सम्बोधन करके ठाकुर अपने महाभाव की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— उस अवस्था के पश्चात् जैसा आनन्द होता, पहले यन्त्रणा भी वैसी ही होती। महाभाव, ईश्वर का भाव— इस देह-मन को उलट-पुलट कर देता है। जैसे एक बड़ा हाथी फूस के घर में घुस जाता है। घर उलट-पुलट हो जाता है! शायद टूट-फूट जाता है।

"ईश्वर की विरह-अग्नि सामान्य नहीं होती। रूप-सनातन जिस पेड़ के नीचे बैठे रहते थे, वैसी अवस्था होने पर ऐसा है कि पेड़ के पत्ते झुलसकर जल जाते थे! मैं इस अवस्था में तीन दिन बेहोश रहा था। हिल-डुल नहीं सकता था। एक जगह पर पड़ा रहा था। होश आने पर बामनी (ब्राह्मणी)* मुझे पकड़कर स्नान के लिए ले गई थी। किन्तु हाथ द्वारा शरीर छूने योग्य नहीं था। शरीर मोटी चादर से ढका हुआ था। बामनी उसी चादर के ऊपर से हाथ के द्वारा पकड़ कर ले गई थी। शरीर पर जो मिट्टी लग गई थी, वह जल गई थी।

"जब वैसी अवस्था आती तो मेरुदण्ड (रीढ़) के भीतर से फाल (माला) चल जाती! 'प्राण गया, प्राण गया' ऐसा किया करता था। किन्तु तत्पश्चात् खूब आनन्द!"

भक्तगण इस महाभाव की अवस्था का वर्णन अवाक् होकर सुनते हैं।

---

* श्रीरामकृष्ण की तन्त्रसाधना की आचार्या भैरवी ब्राह्मणी।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— इतने का तुम लोगों को प्रयोजन नहीं है। मेरा भाव तो केवल दृष्टान्त के लिए है! तुम बहुतों को लेकर रहते हो, मैं एक को ही लेकर रहता हूँ। मुझे ईश्वर के अतिरिक्त कुछ अच्छा नहीं लगता। उनकी इच्छा है। *(सहास्य)*। एक डाल वाला वृक्ष भी है और फिर पाँच डालों वाला वृक्ष भी है। *(सब का हास्य)*।

"मेरी अवस्था दृष्टान्त के लिए है। तुम लोग संसार करो अनासक्त होकर। शरीर पर कीचड़ लगेगी किन्तु झाड़ डालोगे पांकाल मछली की भाँति। कलंक (कालिख) के सागर में तैरोगे— तो भी शरीर पर कलंक (कालिख) नहीं लगेगी।"

गिरीश *(सहास्य)*— आपका भी तो विवाह हुआ है। *(हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— संस्कार के लिए विवाह करना पड़ा, किन्तु गृहस्थ फिर कैसे होगा! गले में जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहना दिया और फिर वह खुल-खुल जाता है— सम्भाल नहीं सकता। एक मत में है शुकदेव का विवाह हुआ था— संस्कार के लिए एक कन्या भी शायद हुई थी। *(सबका हास्य)*।

"कामिनी-काञ्चन ही संसार है— ईश्वर को भुला देते हैं।"

गिरीश— कामिनी-काञ्चन ही कहाँ छूटता है?

श्रीरामकृष्ण— उन्हें व्याकुल होकर प्रार्थना करो, विवेक के लिए प्रार्थना करो। 'ईश्वर ही सत्य और सब अनित्य'— इसका ही नाम है विवेक! जल के छौंक द्वारा जल छौंक कर लेना चाहिए। गन्द एक ओर रह जाए— अच्छा जल एक तरफ रहे, विवेक रूप जल का छौंक आरोप करो। तुम लोग उनको जानकर संसार करो। इसका ही नाम है विद्या का संसार।

"देखो ना, औरतों की कैसी मोहिनी शक्ति है— अविद्यारूपिणी स्त्रियों की! पुरुषों को जैसे मूर्ख, अपदार्थ बनाकर रख देती हैं। जब भी देखता हूँ कि स्त्री-पुरुष एक साथ बैठे हुए हैं, तब कहता हूँ, आह! ये लोग गए! *(मास्टर की ओर ताकते हुए)*— हारु ऐसा सुन्दर लड़का था, उसे प्रेतनी ने पकड़ लिया था!— 'ओ रे हारु कहाँ गया? ओ रे हारु कहाँ गया?' फिर

हारु कहाँ गया! सब ने जाकर देखा हारु वटवृक्ष के नीचे चुपचाप बैठा है। वह रूप नहीं, वह तेज नहीं, वह आनन्द नहीं। वटवृक्ष की प्रेतनी ने हारु को पकड़ लिया था।

"स्त्री यदि कहती है 'जाओ तो एक बार'— झट उठकर खड़ा हो जाता है, 'बैठो तो'— झट बैठ गया।

"कोई उम्मीदवार बड़े बाबू के पास जा-जाकर हैरान हो गया था। काम नहीं मिलता था। आफिस के बड़े बाबू थे। उन्होंने कह दिया, अभी जगह खाली नहीं है, बीच-बीच में आकर पूछ जाना। इस प्रकार कितने ही दिन निकल गए। उम्मीदवार हताश हो गया। उसने किसी मित्र से दुःखड़ा कहा। मित्र ने कहा, 'तेरी कैसी बुद्धि! उसके पास आना-जाना करने में जूता क्यों तोड़ता है? तू गुलाब को पकड़, कल ही तेरा काम हो जाएगा।' उम्मीदवार बोला, 'अच्छा, ठीक! मैं अभी जाता हूँ।' गुलाब बड़े बाबू की रखेल है। उम्मीदवार ने मिलकर कहा— 'माँ, तुम नहीं करोगी तो नहीं होगा। मैं महाविपद में पड़ गया हूँ। ब्राह्मण का लड़का हूँ और कहाँ पर जाऊँ! माँ, बहुत दिनों से काम नहीं है, बच्चे बिना खाए मरे जा रहे हैं। तुम्हारी एक बात कहने से ही मेरा यह कार्य हो जाएगा।' गुलाब ब्राह्मण के लड़के से बोली, 'बच्चे, किसको कहने से होगा?' और सोचने लगी, हाय, ब्राह्मण का लड़का बड़े कष्ट में है! उम्मीदवार ने कहा, 'बड़े बाबू को केवल एक बार ही कहने से मेरा काम निश्चय ही हो जाएगा।' गुलाब ने कहा, 'मैं बड़े बाबू से आज ही कह कर ठीक कर रखूँगी।' उसके अगले दिन प्रातः उम्मीदवार के पास एक व्यक्ति पहुँचा। वह बोला, 'तुम आज ही बड़े बाबू के आफिस में चले जाओ। बड़े बाबू ने साहब से कह दिया, 'यह व्यक्ति बड़ा उपयुक्त है। इसको नियुक्त कर लिया गया है, इसके द्वारा आफिस का विशेष उपकार होगा।'

"इस कामिनी-काञ्चन को लेकर सब ही डूबे हुए हैं। मुझे किन्तु यह सब अच्छा नहीं लगता। कसम खाकर कहता हूँ, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।"

तृतीय परिच्छेद

(सत्य बोलना कलि की तपस्या— ईश्वरकोटि और जीवकोटि)

एक भक्त— महाशय, 'नव-हुल्लोल' नामक एक मत निकला है। श्रीयुक्त ललित चाटुज्ये उसमें हैं।

श्रीरामकृष्ण— नाना मत हैं। मत पथ। किन्तु सब ही सोचते हैं, मेरा मत ही ठीक है— मेरी घड़ी ठीक चल रही है।

गिरीश *(मास्टर के प्रति)*— पोप क्या कहते हैं?— It is with our judgements...* इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— क्यों भई, इसके क्या मायने हैं?

मास्टर— सब ही सोचते हैं, मेरी घड़ी ठीक चलती है, किन्तु घड़ियाँ परस्पर मिलती नहीं।

श्रीरामकृष्ण— फिर भी अन्य घड़ियाँ कितनी भी गलत क्यों न हों, सूर्य किन्तु ठीक चलता है। उसी सूर्य के साथ मिला लेनी चाहिए।

एक भक्त— अमुक बाबू बड़ी मिथ्या बातें करता है।

श्रीरामकृष्ण— सत्य वाणी कलि की तपस्या है। कलि में अन्य तपस्या कठिन है। सत्य पर रहने से भगवान को पा लेता है। तुलसीदास कहते हैं—

"सत्यकथा, अधीनता, परस्त्री मातृसमान,
इससे हरि न मिलें तुलसी झूठ जबान।"

"केशवसेन ने बाप का उधार मान लिया था। और व्यक्ति होता तो कभी न मानता, कुछ भी लिखत-पढ़त नहीं थी। जोड़ा सांको के देवेन्द्र के समाज में गया था। केशवसेन वेदी पर बैठा ध्यान कर रहा था। तब लड़का था। मैंने सेजोबाबू से कहा था, 'जितने जो सब ध्यान कर रहे हैं, इस लड़के का फता (फात्ना) डूबा हुआ है— बंसी के पास मछली घूम रही है।'

"एक व्यक्ति— उसका नाम नहीं लूँगा— उसने दस हजार रुपये के

---

* It is with our judgements as with our watches. None goes just alike, yet each believes his own.

लिए अदालत में झूठ बात कही थी। जीतने के लिए मुझ से माँ काली को अर्घ्य दिलवाया था। मैंने बालक बुद्धि से अर्घ्य दे दिया था! कहा था, 'बाबा यह अर्घ्य माँ को दे दो तो'!''

भक्त— अच्छा व्यक्ति!

श्रीरामकृष्ण— किन्तु इतना विश्वास कि मेरे देने से माँ सुनेंगी!

ललित बाबू की बात पर ठाकुर कहते हैं—

''अहंकार क्या जाता है जी? दो-एक जनों में नहीं दिखाई देता। बलराम का अहंकार नहीं है। और इनका नहीं। और व्यक्ति होता कितना ढेर तमो होता— विद्या का अहंकार होता। मोटे बामुन में अब भी थोड़ा-थोड़ा है! *(मास्टर के प्रति)* महिम चक्रवर्ती तो बहुत पढ़ा हुआ है ना?''

मास्टर— जी हाँ, बहुत पुस्तकें पढ़ीं हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उसके साथ गिरीश घोष की एक बार बातचीत हुई थी। उस पर कुछ विचार हुआ।

गिरीश *(सहास्य)*— लगता है, वे कहते हैं कि साधन करने पर श्रीकृष्ण जैसे सब ही हो सकते हैं?

श्रीरामकृष्ण— बिलकुल तो नहीं— तो भी आभास उसी प्रकार का होता है।

भक्त— जी, श्रीकृष्ण के जैसे सभी हो सकते हैं?

श्रीरामकृष्ण— अवतार व अवतार के अंश, इन्हें कहते हैं ईश्वरकोटि और साधारण लोगों को कहते हैं जीव या जीवकोटि। जो जीवकोटि हैं, वे साधना करके ईश्वर-लाभ कर सकते हैं, वे समाधिस्थ होकर फिर लौटते नहीं।

''जो ईश्वरकोटि हैं, वे हैं जैसे राजा का बेटा। सातों तल की चाबी उसके हाथ में होती है। वे सातों तलों पर चढ़ जाते हैं, और फिर इच्छानुसार नीचे आ सकते हैं। जीवकोटि जैसे छोटे कर्मचारी हैं, सात तला घर के थोड़े हिस्से में जा सकते हैं। बस वहाँ तक ही।''

(ज्ञान और भक्ति का समन्वय)

"जनक ज्ञानी थे, साधन करके ज्ञान-लाभ किया था; शुकदेव ज्ञान की मूर्त्ति थे।"

गिरीश— आहा!

श्रीरामकृष्ण— साधन करके शुकदेव को ज्ञान-लाभ करना नहीं पड़ा था। नारद का भी शुकदेव की तरह से ब्रह्मज्ञान था, किन्तु भक्ति लेकर रहते थे— लोकशिक्षा के लिए। प्रह्लाद कभी सोऽहं-भाव में रहते थे, कभी दास-भाव में— सन्तान-भाव में। हनुमान की भी वैसी ही अवस्था थी।

"सोचने से सब की ही वैसी अवस्था नहीं होती। किसी-किसी बाँस का अधिक खोल होता है, किसी-किसी बाँस का सुराख छोटा होता है।"

चतुर्थ परिच्छेद

(कामिनी-काञ्चन और तीव्र वैराग्य)

एक भक्त— आपका सब भाव दृष्टान्त के लिए है, तो फिर हमें क्या करना होगा?

श्रीरामकृष्ण— भगवान-लाभ करने के लिए तीव्र वैराग्य आवश्यक है। ईश्वर के पथ में जो विरुद्ध लगे, तत्क्षण उसका त्याग करना चाहिए। 'पीछे हो जाएगा' कहकर पड़ा रहने देना उचित नहीं। कामिनी-काञ्चन ईश्वर के पथ में विरोधी हैं। उससे मन हटा लेना पड़ेगा।

"ढिमे तेताला (lack of enthusiasm / spiritedness— धीमे तिताला) होने से नहीं होगा। कोई व्यक्ति अंगोछा (तौलिया) कन्धे पर रखकर स्नान करने जा रहा था। स्त्री बोली, 'तुम किसी काम के नहीं हो, आयु बढ़ रही है, अभी तक यह सब त्याग नहीं कर सके। मुझे छोड़कर तुम एक दिन भी रह नहीं सकते। किन्तु अमुक व्यक्ति कैसा त्यागी है!'

पति— क्यों, उसने क्या किया है?

स्त्री— उसकी सोलह औरतें हैं, वह एक-एक करके उनका त्याग कर रहा है। तुम कभी भी त्याग नहीं कर सकोगे।

पति— एक-एक करके त्याग! अरी पगली (नासमझ), वह त्याग कर नहीं सकेगा। जो त्याग करता है वह क्या थोड़ा-थोड़ा करके त्याग करता है!

स्त्री *(सहास्य)*— तो भी तुम्हारी अपेक्षा अच्छा है।

पति— पगली, तू समझती नहीं। उसका काम नहीं है। मैं ही त्याग कर सकूँगा। यह देख, मैं चल दिया।

"इसका नाम है तीव्र वैराग्य। जैसे ही विवेक आया, तत्क्षण त्याग कर दिया। अंगोछा कन्धे पर ही चला गया। गृहस्थ का सुप्रबन्ध करने नहीं आया। घर की ओर एक बार मुड़कर (लौटकर) देखा भी नहीं।

"जो त्याग करेगा उसमें मन का खूब बल चाहिए। डकैती पड़ने वाला भाव। अय्याय!!! हाऽय हाऽय— डकैती करने से पहले डाकू कहते हैं— मारो! लूटो! काटो!

"तुम फिर क्या करोगे?— उनमें भक्ति, प्रेम प्राप्त करके ही दिन काटना।

"कृष्ण के अदर्शन से यशोदा पागलवत् होकर श्रीमती के पास गईं। श्रीमती ने उनका शोक देखकर आद्याशक्ति-रूप में दर्शन दिया। बोलीं, 'माँ, मुझ से वर लो।' यशोदा बोलीं, 'माँ और क्या लूँ? किन्तु यही कहो कि जैसे कायमनोवाक्य से कृष्ण की ही सेवा कर सकूँ। इन चक्षुओं से उनके भक्तों का दर्शन; जहाँ-जहाँ पर उनकी लीला हो, इन पैरों से जैसे वहाँ पर जा सकूँ; इन हाथों से उनकी सेवा और उनके भक्तों की सेवा; सब इन्द्रियाँ जैसे उनका ही कार्य करें।"

यह बात कहते-कहते ठाकुर श्रीरामकृष्ण में फिर और भावावेश की तैयारी हो रही है। हठात् अपने-आप कहते हैं, "संहार मूर्ति काली! ना नित्यकाली!"

ठाकुर ने अतिकष्ट से भाव संवरण किया। अब थोड़ा-सा जल पिया। यशोदा की बात फिर और कहने लगते हैं। श्रीयुक्त महेन्द्र मुखुज्ये

आ गए। ये और इनके कनिष्ठ (छोटे) भाई श्रीयुक्त प्रिय मुखुज्ये ठाकुर के पास नए-नए आना-जाना करने लगे हैं। महेन्द्र की मैदे की चक्की (मिल) और अन्य व्यवसाय हैं। इनके भाई इन्जीनियर का काम करते हैं। इनका काम और लोग देखते हैं, इन्हें खूब अवसर है। महेन्द्र की वयस् 36 / 37 होगी, भाई की लगभग 34 / 35। इनका घर केदेटि ग्राम में है। कलकत्ता बागबाजार में एक निवास-स्थान है। उनके संग एक छोकरा भक्त आना-जाना करता है, उनका नाम है हरि। उनका विवाह हो गया है, किन्तु ठाकुर के ऊपर बड़ी भक्ति है। महेन्द्र बहुत दिन से दक्षिणेश्वर नहीं गए हैं। हरि भी नहीं गए— आज आए हैं। महेन्द्र गौरवर्ण और सदा हास्यमुख, शरीर दोहरा। महेन्द्र ने भूमिष्ठ होकर ठाकुर को प्रणाम किया। हरि ने भी प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण— क्यों, इतने दिन दक्षिणेश्वर नहीं गए जी?

महेन्द्र— जी, केदेटि गया था, कलकत्ता में नहीं था।

श्रीरामकृष्ण— क्यों जी, बाल-बच्चे नहीं। किसी की चाकरी नहीं करनी पड़ती— तब भी अवसर नहीं! भली ज्वाला! (अजब है!)।

भक्तगण सब चुप हैं। महेन्द्र थोड़े अप्रस्तुत (परेशान) हैं।

श्रीरामकृष्ण *(महेन्द्र के प्रति)*— तुम्हें क्यों कहता हूँ?— तुम सरल और उदार हो— तुम्हारी ईश्वर में भक्ति है।

महेन्द्र— जी, आप तो मेरे भले के लिए ही कह रहे हैं।

(विषयी और रुपये वाला साधु— सन्तान की माया)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— और यहाँ की यात्रा (खेल) पर प्याला (दर्शनी) देना नहीं पड़ता। यदु की माँ तभी तो कहती है, 'और साधु तो केवल देओ-देओ करते हैं। बाबा, तुम्हारा वैसा नहीं है'। विषयी व्यक्तियों का रुपया खर्च हो तो वे विरक्त (नाराज़) हो जाते हैं।

"एक जगह पर यात्रा (गान-नाटिका) हो रही थी। एक व्यक्ति की बैठ कर सुनने की बड़ी इच्छा थी। किन्तु उसने झाँक कर देखा कि सभा में

बैठने की दर्शनी पड़ रही है। तब वहाँ से धीरे-धीरे भाग गया। एक और स्थान पर यात्रा हो रही थी। उस स्थान पर गया। खोजने पर पता लगा कि यहाँ पर कोई भी दर्शनी नहीं दे रहा। बड़ी भीड़ हो गई। वह दोनों हाथों, कोहनियों द्वारा भीड़ को ठेल-ठेल कर सभा में जा उपस्थित हुआ। सभा में भली प्रकार बैठकर मूछों को उठाकर सुनने लगा। *(हास्य)*

''फिर तुम्हारे तो बाल-बच्चे नहीं हैं, जो मन अन्यमनस्क होगा। कोई डिप्टी आठ सौ रुपया महीना पाता था। केशवसेन के घर में नाटक (नववृन्दावन) देखने गया था। मैं भी गया था। मेरे साथ राखाल तथा और भी कोई-कोई गया था। नाटक सुनने के लिए मैं जहाँ पर बैठा था, वे मेरे पास बैठे थे। राखाल तब तनिक उठकर गया। डिप्टी आकर वहाँ बैठ गया और अपने छोटे बेटे को राखाल की जगह पर बिठा लिया। मैं बोला, यहाँ पर नहीं बैठोगे। मेरी अवस्था ऐसी थी कि जो पास बैठेगा, वह जो कहेगा वही करना पड़ता था, तभी राखाल को पास बिठाया था। जब तक नाटक हुआ डिप्टी की केवल बेटे के साथ बातें रहीं। साले ने एक बार भी थियेटर नहीं देखा! और फिर सुना है कि स्त्री का दास है— उठ कहने पर उठता है, बैठ कहने पर बैठता है— और फिर एक नक-बैठे बन्दर-से लड़के के लिए ऐसे! तुम ध्यान-श्यान तो करते हो?''

महेन्द्र— जी, थोड़ा-थोड़ा होता है।

श्रीरामकृष्ण— कभी-कभी जाओगे?

महेन्द्र *(सहास्य)*— जी, कहाँ पर गाँठ-टाँट हैं, आप तो जानते हैं। आप देखिएगा।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— पहले आया तो करो। तभी तो दबा-दबूकर देखूँगा, कहाँ पर क्या गाँठ है। आते क्यों नहीं?

महेन्द्र— काम की भीड़ के कारण आ नहीं पाता— और फिर केदेटि का घर बीच-बीच में देखना होता है।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों की ओर उंगली से निर्देश करके, महेन्द्र के प्रति)*— इन लोगों के क्या घर-बार नहीं और काजकर्म नहीं? ये लोग कैसे आते हैं?

(स्त्री का बन्धन)

श्रीरामकृष्ण *(हरि के प्रति)*— तू क्यों नहीं आता ? तेरी स्त्री आ गई है शायद ?

हरि— जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण— तो फिर क्यों भूल गया ?

हरि— जी, बीमार हो गया था।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— दुबला हो गया है— इसकी भक्ति तो कम नहीं है, भक्ति का वेग (चोट) कौन देखे! उत्पाती भक्ति। *(हास्य)*।

ठाकुर एक भक्त की स्त्री को 'हाबी की माँ' कहते हैं। हाबी की माँ का भाई आया है, कालेज में पढ़ता है। वयस् लगभग बीस होगी। वे क्रिकेट खेलने जाएँगे, उठ गए। छोटा भाई भी ठाकुर का भक्त है, वे भी संग में चले गए। कुछ क्षण पश्चात् द्विज के लौट आने पर ठाकुर बोले,

''तू नहीं गया ?''

एक भक्त ने कहा,

''वे गाना सुनेंगे। जभी शायद लौट आए हैं।''

आज ब्राह्मभक्त श्रीयुक्त त्रैलोक्य का गाना होगा। पल्टु आ गए। ठाकुर कह रहे हैं,

''क्या रे— पल्टु आ गया रे!''

और एक विशेष छोकरा भक्त (पूर्ण) आ उपस्थित हुए। ठाकुर ने उन्हें बड़ी मुश्किल से बुलाया है। घर के लोग किसी भी भाँति आने नहीं देते। मास्टर जिस विद्यालय में पढ़ाते हैं, उसी विद्यालय में पंचम श्रेणी में यह लड़का पढ़ता है। लड़के ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर उसको अपने निकट बिठाकर धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। मास्टर केवल पास बैठे हैं, और भक्तगण अन्यमनस्क हैं। गिरीश एक तरफ बैठे 'केशव-चरित्र' पढ़ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(उसी छोकरे भक्त के प्रति)*— यहाँ पर आओ।

गिरीश *(मास्टर के प्रति)*— कौन है यह लड़का ?

मास्टर *(विरक्त होकर)*— लड़का है, और कौन है ?

गिरीश *(सहास्य)*— It needs no ghost to tell me that. (यह मुझे किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है।)

मास्टर को भय है कि पीछे कहीं पाँच जनों को पता लगने पर लड़के के घर में झगड़ा-फसाद हो जाए और उनके नाम पर दोष आए। लड़के के साथ ठाकुर भी इसी कारण धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— वह सब करते हो, जो कहा था?

लड़का— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— स्वप्न में कुछ देखते हो?— अग्नि-शिखा, मशाल का आलोक? सधवा स्त्री, श्मशान-मशान?— ये समस्त देखना बहुत अच्छा है।

लड़का— आपको देखा है— बैठे हुए हैं— कुछ कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— क्या— उपदेश?— कैसे, एक बताओ तो देखूँ ज़रा।

लड़का— याद नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— जो हो, वह बहुत अच्छा है!— तुम्हारी उन्नति होगी। मेरे ऊपर टान (आकर्षण) तो है?

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर कह रहे हैं—

"क्यों, वहाँ पर नहीं जाओगे?"— अर्थात् दक्षिणेश्वर।

लड़के ने कहा,

"वह कह नहीं सकता।"

श्रीरामकृष्ण— क्यों, वहाँ पर तुम्हारा कोई रिश्तेदार है ना?

लड़का— जी हाँ, किन्तु वहाँ जाने की सुविधा नहीं होगी।

गिरीश 'केशव-चरित्र' पढ़ रहे हैं। ब्राह्मसमाज के श्रीयुक्त केशवसेन का वह जीवन-चरित्र लिखा गया है। उस पुस्तक में है कि परमहंसदेव पहले संसार के ऊपर बड़े विरक्त थे, किन्तु केशव के साथ मिलने-जुलने के बाद उन्होंने मत बदल लिया है। अब परमहंस कहते हैं कि संसार (गृहस्थ) में भी धर्म होता है। यह बात पढ़कर किसी-किसी भक्त ने ठाकुर को बताई है। भक्तों की इच्छा है कि त्रैलोक्य के साथ आज इसी

विषय को लेकर बातचीत हो। ठाकुर को पुस्तक से पढ़कर वे सब बातें सुना दी गई थीं।

(ठाकुर की अवस्था— भक्तसंग-त्याग)

गिरीश के हाथ में पुस्तक देखकर ठाकुर गिरीश, मास्टर, राम तथा अन्य भक्तों से कहते हैं,

"वे लोग वही लिए रहते हैं, तभी 'संसार-संसार' करते हैं!— कामिनी-काञ्चन के भीतर रह रहे हैं। उनको प्राप्त कर लेने पर फिर ऐसी बात नहीं कहता। ईश्वर का आनन्द पा लेने पर संसार काक-विष्ठा हो जाता है। मैंने पहले सब छिः-छिः कर दिया था। विषयी-संग तो त्याग किया था— और फिर बीच-बीच में भक्तसंग-वंग भी त्याग कर दिया था! देखा, सब पट्-पट् मर जाते हैं— सुनकर छटपटाता! अब फिर भी कुछ थोड़े लोग लेकर रहता हूँ!"

पञ्चम परिच्छेद

(संकीर्त्तनानन्द में भक्तों के संग)

गिरीश घर चले गए। फिर दोबारा आएँगे।

श्रीयुक्त जयगोपाल सेन के साथ त्रैलोक्य आ उपस्थित हुए। उन्होंने ठाकुर को प्रणाम किया और असान ग्रहण किया। ठाकुर उनसे कुशल-प्रश्न करते हैं। छोटे नरेन ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर बोले— क्यों, तू शनिवार को आया नहीं?

अब त्रैलोक्य गाना गाएँगे।

श्रीरामकृष्ण— आहा, तुमने उस दिन आनन्दमयी का गान किया—कैसा गाना! और सब लोगों का गाना आलुनि लगता है! उस दिन नरेन्द्र का गाना भी अच्छा नहीं लगा। वही फिर इस समय हो जाए ना!

त्रैलोक्य गा रहे हैं— 'जय शचीनन्दन।'

ठाकुर मुख धोने जा रहे हैं। स्त्री भक्तगण चिक के पास व्याकुल हुई बैठी हैं। उनके पास जाकर एक बार दर्शन देंगे।

त्रैलोक्य का गाना चल रहा है।

ठाकुर कमरे के मध्य से लौट आकर त्रैलोक्य से कह रहे हैं— ''थोड़ा-सा आनन्दमयी का गाना गाओ।'' त्रैलोक्य गा रहे हैं—

कतो भालोवासा गो मा मानव सन्ताने,
मने होले प्रेमधारा बहे दुनयने (गो मा)
तब पदे अपराधी, आछि आमि जन्मावधि,
तबु चेये मुख पाने प्रेम नयने, डाकिछ मधुर बचने,
मने होले प्रेमधारा बहे दुनयने।

तोमार प्रेमेर भार, बोहिते पारि ना गो आर,
प्राण उठिछे काँदिया, हृदय भेदिया, तव स्नेह दरशने,
लइनु शरण मा गो तब श्रीचरणे (गो मा)॥

[भावार्थ— माँ, आपका मानव-सन्तान के लिए कितना प्यार है! ओ माँ, याद आते ही दोनों नयनों से प्रेमधारा बहने लगती है। मैं आपके चरणों का जन्म-अवधि से ही अपराधी हूँ, फिर भी आप प्रेम-नयनों से मेरे मुख को देख रही हो, और मधुर वचनों में पुकार रही हो। याद आते ही दोनों नयनों से प्रेम-धारा बहने लगती है।

माँ, अब मैं तुम्हारे प्रेम का भार और सहन नहीं कर सकता। प्राण हृदय भेदन करके रो उठा है, तेरे स्नेह दर्शन से। माँ, अब श्रीचरणों की शरण में ले लो।]

गाना सुनते-सुनते छोटे नरेन गम्भीर ध्यान में निमग्न हो गए हैं, जैसे काष्ठवत्! ठाकुर मास्टर से कहते हैं,

''देख, देख, कैसा गम्भीर ध्यान! एकदम बाह्यशून्य!''

गाना समाप्त हो गया। ठाकुर ने त्रैलोक्य से यह गाना गाने के लिए कहा— 'दे मा पागल करे, आर काज नाइ ज्ञान विचारे।'

राम कह रहे हैं, कुछ हरिनाम हो जाय! त्रैलोक्य गा रहे हैं—

मन एक बार हरि बोल, हरि बोल।
हरि हरि हरि बोल, भवसिन्धु पारे चल।

मास्टर धीरे-धीरे कहते हैं, 'गौर-निताई तोमरा दुभाइ।'

ठाकुर भी उसी गाने को ही गाने के लिए कह रहे हैं। त्रैलोक्य और भक्तगण सब मिलकर गा रहे हैं—

गौर-निताइ तोमरा दुभाइ परम दयाल हे प्रभु!

ठाकुर ने भी योगदान किया। समाप्त होने पर और एक शुरु कर दिया—

जादेर हरि बोलते नयन झरे तारा दु'भाई एसेछे रे।
जारा मार खेये प्रेम जाचे तारा दु'भाई एसेछे रे।
जारा ब्रजेर कानाई-बलाई तारा तारा दु'भाई एसेछे रे।
जारा आचण्डाले कोल देय तारा तारा दु'भाई एसेछे रे।

[भावार्थ— जिनके हरि बोलते-बोलते नयन बरसते हैं, वे दो भाई आए हैं रे! जो मार खाकर प्रेम माँगते हैं, वे दो भाई आए हैं रे! जो ब्रज के कन्हाई-बलाई हैं, वे दोनों भाई आए हैं रे! जो चण्डाल तक को गोद में लेते हैं, वे दो भाई आए हैं रे!]

उसी गाने के संग ही ठाकुर और एक गाना गाते हैं—

नदे टलमल टलमल करे गौर प्रेमेर हिल्लोले रे!
[गौर-प्रेम की हिल्लोल से भाई, नदिया डोल रहा है।]

ठाकुर ने फिर और बोला—

के हरि बोल, हरि बोल, बोलिए जाय?
जा रे माधाइ जेने आय।
बुझि गौर जाए आर निताइ जाय रे।
जादेर सोनार नुपूर राँगा पाय।
जादेर न्याड़ा माथा छेड़ा कान्था रे।
जेनो देखि पागलेरइ प्राय।

[भावार्थ— कौन 'हरि बोल-हरि बोल' कहता हुआ जा रहा है? अरे मधाई, जा पता करके आ। लगता है रे, गौर जा रहे हैं और निताई जा रहे हैं। जिनके सोने के नुपूर और लाल चरण हैं। जिनका सिर मुण्डा हुआ और फटा हुआ कन्था (थेगलियों वाला कपड़ा) है, रे! दिखने में प्रायः पागल जैसे हों।]

छोटे नरेन विदा ले रहे हैं—

श्रीरामकृष्ण— तू माता-पिता की खूब भक्ति करियो। किन्तु ईश्वर के पथ में बाधा देने पर मत मानना! खूब तेज (रोख) लाइयो— शाला बाप!

छोटे नरेन— कौन जाने, मुझे कुछ भी भय नहीं होता।

गिरीश घर से होकर फिर दोबारा आ गए। ठाकुर ने त्रैलोक्य के साथ आलाप करवा दिया है और कहते हैं, 'तुम थोड़ा आलाप करो।' कुछ आलाप के पश्चात् त्रैलोक्य से कह रहे हैं, 'वही गाना ही फिर एक बार'। त्रैलोक्य गाते हैं—

(झिञ्झिट खम्बाज— ठुमरी)

जय शचीनन्दन, गौर गुणाकर, प्रेम-परशमणि, भाव-रस-सागर।
किवा सुन्दर मुरतिमोहन आँखिरंजन कनकवरण,
किवा मृणालनिन्दित, आजानुलम्बित, प्रेम प्रसारित, कोमल युगल कर।
किवा रुचिर बदन-कमल, प्रेमरसे ढलढल,
चिकुर कुन्तल, चारु गण्डस्थल, हरिप्रेमे विह्वल, अपरूप मनोहर।
महाभावे मण्डित, हरि रसे रञ्जित, आनन्दे पुलकित अंग,
प्रमत्त मातंग, सोनार गौरांग,
आवेशे विभोर अंग, अनुरागे गर-गर।
हरिगुणगायक, प्रेमरस नायक,
साधु-हृदिरंजक, अलोकसामान्य, भक्तिसिन्धु श्री चैतन्य,
आहा! 'भाई' बोलि चण्डाले, प्रेम भरे लोन कोले,
नाचेन दु'बाहु तुले, हरि बोल हरि बोले,
अविरल झरे जल नयने निरन्तर।
'कोथा हरि प्राणधन'— बोले करे रोदन,
महास्वेद कम्पन, हुंकार गर्जन,
पुलके रोमाञ्चित, शरीर कदम्बित, धुलाय विलुण्ठित सुन्दर कलेवर।
हरि-लीला-रस-निकेतन, भक्तिरस-प्रस्रवण,
दीनजन-बान्धव, बंगेर गौरव, धन्य-धन्य श्रीचैतन्य प्रेम शशधर।

[भावार्थ— जय शचीनन्दन, गौर गुणों की खान, प्रेम-पारसमणि, भाव-रस के सागर। कैसी सुन्दर मोहन मूरति, आँखों को प्रिय लगने वाला कनक वर्ण, कैसी मृणाल निन्दित (कमल की नाल— ककड़ी को सुन्दरता में हराने वाली) आजानुलम्बित (घुटनों तक लम्बी) बाहें, प्रेम से फैले हुए कोमल दोनों हाथ, प्रेम-रस में डूबा हुआ कैसा सुन्दर कमल-मुख, केशों की लटें फहरा रहीं, सुन्दर गण्डस्थल (गाल—cheek) हरिप्रेम में विह्वल, अपरूप मनोहर! महाभाव में मण्डित, हरि-रस में रंजित, आनन्द में पुलकित अंग, पागल हाथी, सोने के गौरांग, आवेश में विभोर अंग, ईश्वर-प्रेम में भरपूर! हरिगुण गायक, प्रेम-रस नायक, साधु-हृदय को आनन्द देने वाले प्रकाश जैसे श्री चैतन्य भक्ति के सिन्धु हैं। आहा! चण्डाल को 'भाई' कहकर प्रेम से भरकर गोद में लेते हैं, नयनों से अविरल जल झरता है! 'कहाँ हैं प्राणधन हरि'— कहकर रोदन करते हैं। महास्वेद (घना-पसीना), कम्पन, हुंकार के साथ गर्जन, पुलकित-रोमाञ्चित, कदम्बित (कदम्ब के फूल जैसा), धूल में लोटपोट सुन्दर कलेवर। हरि-लीला के रस का घर, भक्ति-रस का झरना, दीनजनों का बन्धु, बंगदेश का गौर, धन्य-धन्य श्री चैतन्य-प्रेम-शशधर (चन्द्र)!]

"गौर हँसते-रोते, नाचते-गाते हैं"— यह बात सुनकर ठाकुर भावाविष्ट होकर खड़े हो गए— बिलकुल बाह्यशून्य!

कुछ प्रकृतिस्थ होकर— त्रैलोक्य से अनुनय-विनय करके कहते हैं, "एक बार वही गाना ही!— 'कि देखिलाम रे'।"

त्रैलोक्य गाते हैं—

कि देखिलाम रे, केशव भारतीर कुटिरे,
अपरूप ज्योति गौरांग मूरति, दुनयने प्रेम बहे शत धारे।

[भावार्थ— केशव भारती की कुटीर में मैंने क्या देखा है, भाई!— अपरूप ज्योति— गौरांग की मूर्ति, दोनों नयनों से प्रेम सैंकड़ों-सैंकड़ों धाराओं में बह रहा है।]

गाना समाप्त हो गया। सन्ध्या हो गई। ठाकुर अब भी भक्तों के संग में बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(राम के प्रति)*— बाजना (ढाक वाद्य आदि) नहीं हैं! अच्छा बाजना हो तो गाना खूब जमता है। *(सहास्य)* बलराम का आयोजन कैसा है, जानते हो? बामुन की गोड्डि (गाय) खाएगी कम— दूध देगी हुड़-हुड़ करके (ढेरों)! *(सबका हास्य)*। बलराम का भाव है— आप लोग गाओ, आप लोग बजाओ! *(सबका हास्य)*।

षष्ठ परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और विद्यासागर— ईश्वर-लाभ के पश्चात् संसार)

सन्ध्या हो गई। बलराम की बैठक में और बरामदे में आलोक जला दिया गया। ठाकुर श्रीरामकृष्ण जगत की माता को प्रणाम करके मूलमन्त्र जप करके 'नाम' कर रहे हैं। भक्तगण चारों तरफ बैठे हैं और वही मधुर 'नाम' सुन रहे हैं। गिरीश, मास्टर, बलराम, त्रैलोक्य और अन्य बहुत-से भक्त अब भी हैं। 'केशव-चरित्र' ग्रन्थ में ठाकुर के सम्बन्ध में मत- परिवर्तन की बात जो लिखी हुई है, त्रैलोक्य के सामने वही बात उठाएँगे— भक्तों ने निश्चय किया है। गिरीश ने बात आरम्भ की। वे त्रैलोक्य से कहते हैं,

"आपने जो लिखा है कि संसार के सम्बन्ध में इनका मत-परिवर्तन हो गया है, वह वस्तुत: हुआ नहीं।"

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य और अन्यान्य भक्तों के प्रति)*— इधर का आनन्द पा लेने पर वह तो अच्छा नहीं लगता— भगवान का आनन्द-लाभ कर लेने पर संसार अलोना बोध होता है। शाल पा लेने पर फिर बनात अच्छी नहीं लगती।

त्रैलोक्य— जो संसार करेंगे, उनकी बात ही मैं कहता हूँ। जो त्यागी हैं, उनकी बात नहीं कहता।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारी यह समस्त कैसी बातें हैं! जो 'संसार-धर्म', 'संसार-धर्म' करते हैं, वे एक बार भी यदि भगवान का आनन्द पाते हैं तो उन्हें और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। काम का बन्धन कम हो जाता है। क्रमश: जितना आनन्द बढ़ता है, काम फिर कर नहीं सकता; केवल उसी आनन्द को खोजता फिरता है। भगवान के आनन्द के निकट विषयानन्द और रमणानन्द! एक बार भगवान के आनन्द का स्वाद पा लेने पर उसी आनन्द के लिए दौड़ता-भागता फिरता है, तब संसार रहे या जाए।

"चातक की तृष्णा से छाती फटी जा रही है। सात समुद्र, सभी नदियाँ सारे तालाब— सब हैं भरपूर! किन्तु वह जल नहीं पिएगा। छाती फटी जा

रही है तब भी नहीं पीता! स्वाति नक्षत्र की वर्षा के जल के लिए 'हॉ' करे (मुँह फैलाए) बैठा है। 'बिना स्वाती कि जल सब धूर'!''

(दो आना मद और दोनों दिक् रखना)

''कहता है 'दु'दिक रखूँगा। दो आना मद खाकर मनुष्य दोनों दिक् रखना चाहता है, और खूब मद खाकर क्या फिर 'दु 'दिक' रखा जाता है!

''ईश्वर का आनन्द पा लेने पर और कुछ अच्छा नहीं लगता। तब कामिनी-काञ्चन की बात पर जैसे छाती में पत्थर पड़ता है। (ठाकुर कीर्त्तन के सुर में कहते हैं) 'आन् लोकेर आन् कथा, किछु भालो लागे ना!' (दूसरे लोगों की दूसरी बात, कुछ भी अच्छा नहीं लगता)!''

त्रैलोक्य— संसार में रहने के लिए रुपया तो चाहिए ही, सञ्चय भी चाहिए। कितना कुछ है— दान! ध्यान!

श्रीरामकृष्ण— क्या! पहले रुपया सञ्चय करके तब ईश्वर! और दान-ध्यान-दया— कितनी! अपनी लड़की की शादी में हजारों-हजारों रुपया खर्च होता है और पास के घर में खाने को नहीं मिलता। उन्हें दो मुट्ठी चावल देते हुए कितना कष्ट होता है! बहुत हिसाब करके दिया जाता है। लोगों को खाने को नहीं मिलता। तो फिर क्या होगा? वे साले मरें या बचें— मैं और मेरे घर के सब ठीक रहने से ही हुआ। मुख से कहता है, सब जीवों पर दया!

त्रैलोक्य— गृहस्थ में तो अच्छे लोग भी हैं— पुण्डरीक विद्यानिधि चैतन्यदेव के भक्त थे। वे तो गृहस्थ में ही थे।

श्रीरामकृष्ण— उसने गले पर्यन्त मद खाया हुआ था। यदि और थोड़ा-सा खा लेता तो फिर गृहस्थ (संसार) नहीं कर सकता था।

त्रैलोक्य चुप किए रहे। मास्टर गिरीश को जनान्तिक से कहते हैं, 'तो फिर उन्होंने जो लिखा है, ठीक नहीं।'

गिरीश— तो फिर क्या आपने जो लिखा है, वह बात ठीक नहीं?

त्रैलोक्य— क्यों! गृहस्थ में धर्म होता है। ये क्या मानते नहीं?

श्रीरामकृष्ण— होता है। किन्तु ज्ञान-लाभ करके रहना चाहिए— भगवान को लाभ करके रहना चाहिए। 'तब कलंक सागरे भासे, तबु कलंक ना लागे गाय।' (तब काजल के सागर में तैरने पर भी काजल शरीर पर नहीं लगता)। तब पाँकाल मछली की भाँति रह सकता है। ईश्वर-लाभ के पश्चात् जो संसार (गृहस्थ) होता है, वह विद्या का संसार है। कामिनी-काञ्चन उसमें नहीं— केवल भक्ति, भक्त और भगवान। मेरी भी औरत है। घर में लोटा-कटोरी भी है। हरि के नाम पर खिला देता हूँ, और फिर जब हाबी की माँ हर आती हैं, उनके लिए भी सोचता हूँ।

सप्तम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और अवतार-तत्त्व)

एक जन भक्त *(त्रैलोक्य के प्रति)*— आपकी पुस्तक में देखा था, आप अवतार नहीं मानते। चैतन्यदेव की बातों में देखा था।

त्रैलोक्य— उन्होंने स्वयं ही प्रतिवाद किया है— पुरी में जब अद्वैत और अन्य भक्तों ने 'वे ही भगवान' यह बोलकर गाना गया था, गाना सुनकर चैतन्यदेव ने कमरे का द्वार बन्द कर दिया था। ईश्वर का अनन्त ऐश्वर्य है। ये जैसे कहते हैं, भक्त ईश्वर की बैठक है। तो क्या बैठक खूब सजी हुई होने के कारण उसके अतिरिक्त उनका और कुछ ऐश्वर्य नहीं है?

गिरीश— ये कहते हैं, प्रेम ही है ईश्वर का सारांश— जिस मनुष्य के द्वारा ईश्वर का प्रेम आता है, वही हमें प्रयोजनीय है। ये कहते हैं, गाय का दूध थनों से आता है, हमें थन ही प्रयोजनीय हैं। गाय के शरीर का और कुछ आवश्यक नहीं है; हाथ, पाँव या सींग।

त्रैलोक्य— उनका प्रेमदुग्ध अनन्त प्रणालियों द्वारा पड़ रहा है! वे तो अनन्त शक्ति हैं।

गिरीश— उस प्रेम के निकट क्या और कोई शक्ति ठहरती है?

त्रैलोक्य— जिनकी शक्ति है उनको याद करने से ही हो जाता है! सब ही

ईश्वर की शक्ति है।

गिरीश— और सब चाहे उनकी ही शक्तियाँ हैं, किन्तु अविद्या शक्ति?

त्रैलोक्य— अविद्या क्या वस्तु है! अविद्या नामक क्या कोई वस्तु है भी? अविद्या तो एक विशेष अभाव है। जैसे अन्धकार प्रकाश का अभाव है। उनका प्रेम हमारे लिए चाहे खूब बड़ा है। उनके बिन्दु में है हमारा सिन्धु! किन्तु वह ही जो अन्त है, यह बात कहने पर तो उनको सीमा में बाँधना हो गया।

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य तथा अन्य भक्तों के प्रति)*— हाँ, हाँ! वह तो है ही। किन्तु ज़रा-सा मद खा लेने पर ही हमें नशा हो जाता है। कलाल की दुकान पर कितना मद है, उसके हिसाब का हमें क्या काम! अनन्त शक्ति की खबर का हमें क्या काम?

गिरीश *(त्रैलोक्य के प्रति)*— आप अवतार मानते हैं?

त्रैलोक्य— भक्त में ही भगवान अवतीर्ण होते हैं। अनन्त शक्ति का manifestation (विकास, प्रकाश) होता नहीं, हो सकता नहीं!— किसी भी मनुष्य में हो सकता नहीं।

गिरीश— लड़कों की 'ब्रह्मगोपाल' कहकर सेवा कर सकते हैं, महापुरुष को ईश्वर कहकर क्या पूजा नहीं की जा सकती?

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य के प्रति)*— अनन्त में प्रवेश क्यों करना चाहते हो? तुम्हें छूने के लिए क्या तुम्हारे सारे शरीर को ही छूना होगा? यदि गंगास्नान करना है तो फिर क्या हरिद्वार से गंगासागर पर्यन्त छूते जाना होगा? "आमि गेले घुचिबे जंजाल" ('मैं' के जाते ही सब जंजाल खत्म हो जाएगा।) जब तक 'मैं'पन रहता है तब तक भेदबुद्धि है। 'मैं' के चले जाने पर क्या रह जाता है, उसे कोई जान नहीं सकता, मुख से बोला नहीं जाता। जो है, वही है। तब थोड़ा-सा प्रकाश इनमें हुआ है और बाकी बचा प्रकाश वहाँ पर हुआ है, यह सब मुख से नहीं बोला जाता। सच्चिदानन्द-सागर! उसके भीतर 'मैं' घट। जब तक घट है तब तक जैसे जल के दो भाग हैं, घट के भीतर का एक भाग, बाहर का एक भाग। घड़ा टूट गया— एक जल— वह भी कहा नहीं जाता! कौन कहेगा?

विचार के अन्त में ठाकुर त्रैलोक्य के संग मिष्टालाप करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— तुम तो आनन्द में हो?

त्रैलोक्य— कहाँ! यहाँ से उठते ही फिर दोबारा वैसा ही हो जाऊँगा, जैसा हूँ। अब तो खूब सुन्दर ईश्वर की उद्दीपना हो रही है।

श्रीरामकृष्ण— जूता पहने रहने पर काँटों के वन में फिर भय नहीं। 'ईश्वर सत्य और सब अनित्य'— यह बोध रहने से फिर कामिनी–काञ्चन का भय नहीं रहता।

त्रैलोक्य का मुँह मीठा करवाने के लिए कहने पर बलराम उन्हें कमरे के अन्दर ले गए। श्रीरामकृष्ण त्रैलोक्य और उनके मतावलम्बी लोगों की अवस्था का भक्तों से वर्णन करते हैं। रात के नौ बज गए।

(अवतार को क्या सभी पहचान सकते हैं?)

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश, मणि तथा अन्य भक्तों के प्रति)*— ये लोग कैसे हैं, जानते हो? एक छोटे कुएँ का मेंढ़क, 'कभी भी पृथ्वी नहीं देखी। छोटा कुआँ ही जानता है।' जभी विश्वास नहीं करेगा कि एक पृथ्वी भी है। भगवान के आनन्द का सन्धान नहीं मिला है, तभी 'संसार–संसार' करता है।

(गिरीश के प्रति)— "उन लोगों के साथ क्यों बक–बक (बहस) करते हो? वे दोनों को ही लिए हुए हैं। भगवान के आनन्द का आस्वाद बिना पाए उस आनन्द की बात समझ नहीं सकते। पाँच वर्ष के बालक को क्या रमण–सुख समझाया जाता है? विषयीगण जो ईश्वर–ईश्वर करते हैं, वह सुनी–सुनाई बात है। जैसी चाची–ताई के झगड़ा करते समय, उनसे बालक सुनकर सीख जाते हैं, 'मेरा ईश्वर है', 'तुझे ईश्वर की सौगन्ध'।

"वह होता रहे। उनका दोष नहीं। सब ही क्या उसी अखण्ड सच्चिदानन्द की धारणा कर सकते हैं? रामचन्द्र को केवल बारह ऋषि जान पाए थे। सब नहीं पकड़ पाए। कोई साधारण मनुष्य सोचता, कोई साधु–भाव में लेता— दो चार जनों ने अवतार–रूप में जाना था।

"जिसकी जैसी पूँजी— वह वस्तु का उसी प्रकार का मूल्य देता है। एक बाबू ने अपने चाकर से कहा, तू यह हीरा बाजार में ले जा। मुझे बताना कि कौन किस प्रकार की दर देता है। पहले बैंगन वाले के पास ले जा। चाकर पहले बैंगन वाले के पास ले गया। उसने घुमा-फिरा कर देख कर कहा— भाई, नौ सेर बैंगन मैं दे सकता हूँ। सेवक ने कहा, भाई, कुछ और थोड़ा-सा बढ़ो, चलो दस सेर दे दो। वह बोला, 'मैं बाजार की दर की अपेक्षा अधिक कह चुका हूँ, इसमें तुम्हें पुजे तो दे जाओ।' सेवक तब हँसते-हँसते उस हीरे को लौटाकर बाबू के पास ले जाकर बोला, 'महाशय, बैंगन वाला नौ सेर बैंगन से अधिक एक भी नहीं देगा।' उसने कहा है, 'मैं तो बाजार की दर की अपेक्षा अधिक कह चुका हूँ।'

"बाबू ने हँसकर कहा, अच्छा अब कपड़े वाले के पास ले जा। वह (बैंगनवाला) तो बैंगन लेकर रहता है, वह फिर कितना तक समझेगा! कपड़े वाले की पूँजी थोड़ी अधिक है— देखूँ, वह क्या कहता है। चाकर ने कपड़े वाले से कहा, 'अरे भाई, इसे लोगे? कितना मूल्य दे सकते हो?' कपड़े वाले ने कहा, 'हाँ, चीज तो अच्छी है, इससे सुन्दर गहना बन सकता है। तो भाई, मैं नौ सौ रुपया दे सकता हूँ।' नौकर ने कहा, 'भाई, और तनिक बढ़ो तो फिर तुम्हें दे जाऊँ। अधिक न हो, हजार रुपये दे दो।' कपड़े वाला बोला, 'भाई, और कुछ मत कहो, मैंने बाजार-भाव से अधिक कह दिया है। नौ सौ रुपये से अधिक तो एक भी रुपया मैं दे नहीं सकूँगा।' सेवक लौटकर मालिक के पास हँसता-हँसता गया और बोला कि कपड़ेवाला कहता है— नौ सौ रुपये से अधिक तो एक रुपया भी वह नहीं दे सकेगा। और भी उसने कहा है, मैंने बाजार की दर की अपेक्षा अधिक कह दिया है। तब मालिक ने हँसते-हँसते कहा, अब जौहरी के पास जाओ— वह क्या कहता, देखें। सेवक जौहरी के पास आया। जौहरी तनिक-सा देखते ही एकदम बोला, एक लाख रुपया दूँगा।"

(ईश्वरकोटि और जीवकोटि)

''संसार में ये लोग धर्म-धर्म करते हैं। जैसे कोई व्यक्ति कमरे में है, सारा बन्द— छत के छिद्र में से थोड़ा-सा प्रकाश आ रहा है। सिर पर छत हो तो क्या सूर्य दिखाई देता है? तनिक-से आलोक के आने से क्या होगा? कामिनी-काञ्चन छत है! छत को उठा न दिया जाए तो क्या सूर्य दिखाई देता है! संसारी लोग जैसे कमरे के अन्दर बन्द हैं।

''अवतार आदि ईश्वरकोटि हैं। वे खुली (उन्मुक्त) जगह में टहलते हैं। वे कभी भी संसार में बद्ध नहीं होते, बन्दी नहीं होते। उनका 'मैं' मोटा 'मैं' नहीं, संसारी लोगों की भाँति। संसारी लोगों का अहंकार, संसारी लोगों का 'मैं' है जैसे चारों ओर प्राचीर (चारदीवारी) और सिर के ऊपर छत। बाहर की कोई भी वस्तु दिखाई नहीं देती। अवतार आदि का 'मैं' पतला 'मैं' है। इस 'मैं' के भीतर से ईश्वर को सर्वदा देखा जाता है। जैसे कोई व्यक्ति चारदीवारी के एक ओर खड़ा हुआ है, चारदीवारी के दोनों ओर ही अनन्त मैदान है। उस प्राचीर में यदि छिद्र हो तो प्राचीर के उस तरफ का सब दिख जाता है। बड़ा छेद हो तो आना-जाना भी हो जाता है। अवतार आदि का 'मैं' यही सुराख वाला प्राचीर है। प्राचीर के इस ओर रहने पर भी अनन्त मैदान दिख जाता है। इसके मायने हैं, देह धारण करने पर भी वे सर्वदा योग में ही रहते हैं और फिर इच्छा होने पर बड़े छेद के उस पार जाकर समाधिस्थ हो जाते हैं। और फिर बड़ा छेद होने पर आना-जाना भी कर सकते हैं। समाधिस्थ होने पर भी फिर दोबारा उतर कर आ सकते हैं।''

भक्तगण अवाक् होकर अवतार-तत्त्व सुनते रहे।

पंचदश खण्ड

श्रीरामकृष्ण कलकत्ता के बसुबलराम-मन्दिर में

प्रथम परिच्छेद

(नरेन्द्र और हाजरा महाशय)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बलराम की दोतल की बैठक में भक्तों के संग बैठे हुए हैं। सहास्यवदन हैं। भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं। नरेन्द्र, मास्टर, भवनाथ, पूर्ण, पल्टु, छोटे नरेन, गिरीश, रामबाबू, द्विज, विनोद इत्यादि अनेक भक्त चारों ओर बैठे हुए हैं।

आज शनिवार है, समय 3 का। बैशाख कृष्णा दशमी तिथि; 9 मई, 1885 ईसवी।

बलराम घर में नहीं हैं। शरीर अस्वस्थ होने के कारण जलवायु-परिवर्तन के लिए मुंगेर गए हैं। ज्येष्ठा कन्या (अब स्वर्गगता) ने ठाकुर और भक्तों को निमन्त्रण करके बुलाकर महोत्सव किया है। ठाकुर खाने-पीने के बाद थोड़ा विश्राम कर रहे हैं।

ठाकुर मास्टर को बार-बार पूछ रहे हैं, "तुम बताओ, क्या मैं उदार हूँ?"

भवनाथ सहास्य कह रहे हैं, "वे फिर क्या कहेंगे, चुप रहेंगे!"

एक हिन्दुस्तानी भिखारी गाना गाने आए हैं। भक्तों ने दो-एक गाने सुने। गाना नरेन्द्र को अच्छा लगा है। उन्होंने गायक से कहा, "और गाओ।"

श्रीरामकृष्ण— बस रहने दे, और जरूरत नहीं। पैसे कहाँ? *(नरेन्द्र के प्रति)* तूने तो कह दिया!

भक्त *(सहास्य)*— महाशय, आप को अमीर समझता है, आप तकिये के सहारे जो बैठे हैं। *(सबका हास्य)*
श्रीरामकृष्ण *(हँसकर)*— बीमार हो गया है, समझता है।

हाजरा के अहंकार की बात चली। किसी कारणवश हाजरा को दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी त्याग करके चले जाना पड़ा था।

नरेन्द्र— हाजरा अब मानता है, उसको अहंकार हुआ था।
श्रीरामकृष्ण— उसकी बात पर विश्वास मत करो। दक्षिणेश्वर फिर दोबारा आने के लिए इस प्रकार बातें करता है। *(भक्तों से)* नरेन्द्र तो केवल कहता है, 'हाजरा खूब भला व्यक्ति है'।
नरेन्द्र— अब भी कहता हूँ।
श्रीरामकृष्ण— क्यों? इतना सब सुनकर भी!
नरेन्द्र— दोष थोड़ा-सा है, किन्तु गुण अनेक ही हैं।
श्रीरामकृष्ण— हाँ, निष्ठा तो है।

"वह मुझ से कहता है, अब तुमको मैं अच्छा नहीं लगता— किन्तु बाद में मुझको तुम्हें खोजना पड़ेगा। श्री रामपुर से एक गोसाईं आया था— अद्वैत-वंश। इच्छा हुई कि वहाँ पर एक-दो रात ठहरे। मैंने आदर से उसको ठहरने के लिए कहा था। हाजरा ने कहा कि 'उसको खजाञ्ची के पास भेज दो।' इस बात का मतलब यही है कि जो दूध-शूध, जो कुछ वह पीछे माँगेगा तो हाजरा के भाग में से ही कुछ देना पड़ेगा। मैंने कहा— किन्तु अरे साले! मैं उन्हें गोसाईं जानकर साष्टांग करता हूँ और तू संसार में रहकर कामिनी-काञ्चन लेकर नाना काण्ड करता है! अब थोड़ा-सा जप करता है तो इतना अहंकार हो गया है! लज्जा नहीं आती?

"सत्त्व गुण से ईश्वर मिलते हैं। रजोगुण-तमोगुण ईश्वर से दूर करते हैं। सत्त्वगुण की सफेद रंग से उपमा दी है। रजोगुण की लाल रंग के साथ और तमोगुण की काले रंग के साथ उपमा दी है। मैंने एक दिन हाजरा से पूछा, तुम बताओ किसका कितना सत्त्वगुण हुआ है। वह बोला, नरेन्द्र का सोलह आना, और मेरा एक रुपया दो आना। मैंने पूछा, मेरा कितना हुआ है?

तो बोला, तुम्हारे में अभी भी लाल-सी झलक मारती है— तुम्हारा बारह आना। *(सबका हास्य)*।

''दक्षिणेश्वर में बैठा हुआ हाजरा जप किया करता था और उसमें ही दलाली की चेष्टा भी किया करता। घर में कई हजार रुपया उधार देना था— उसी को देने की चिन्ता में था। रसोइये ब्राह्मण के विषय में कहा करता था, उन जैसे लोगों के संग क्या मैं बातें करता हूँ!''

(कामना ईश्वर-लाभ में विघ्न है, ईश्वर बालक-स्वभाव)

''बात क्या है, जानते हो? तनिक-सी भी कामना रहने पर भगवान को प्राप्त नहीं किया जाता। कर्म की है सूक्ष्मा गति! सूई में धागा (सूत) पिरोना है। किन्तु सूत में ज़रा भी रेशा रहने पर वह सूई के भीतर प्रवेश नहीं करेगा।

''तीस वर्ष माला जपता है, तब भी क्यों नहीं होता? विषैला घाव हो तो उपले की सेक दी जाती है। न देने पर केवल औषध से आराम नहीं होता।

''कामना रहने पर जितनी भी साधना क्यों न की जाए, सिद्धि-लाभ नहीं होता। किन्तु तब भी एक बात है— ईश्वर की कृपा होने पर, ईश्वर की दया होने पर एक क्षण में सिद्धि-लाभ कर सकता है। जैसे हजार वर्ष के अन्धेरे कमरे में हठात् यदि कोई प्रदीप ले आए, तो फिर एक क्षण में प्रकाश हो जाता है!

''गरीब का लड़का बड़े मनुष्य की नजर में पड़ गया। उसकी लड़की के संग उसका विवाह हो गया। तुरन्त गाड़ी-घोड़ा, दास-दासी, पोषाक, असबाव, घर— सब कुछ हो गया।''

एकजन भक्त— महाशय, कृपा कैसे होती है?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर बालक-स्वभाव हैं। जैसे कोई लड़का पल्ले में रत्न लेकर बैठा हुआ है। कितने ही लोग मार्ग से जा रहे हैं। बहुत-से उससे रत्न माँगते हैं। किन्तु वह कपड़े पर हाथ रखकर मुख मोड़कर कह देता है— नहीं, मैं नहीं दूँगा। और फिर शायद जिसने माँगा भी नहीं है, जा ही रहा है, पीछे-पीछे दौड़कर जाकर झट से उसको सब दे देता है!

(त्याग— तब ईश्वर-लाभ; पूर्व कथा— सेजो बाबू का भाव)

श्रीरामकृष्ण— त्याग बिना हुए ईश्वर को नहीं पाया जाता।

"मेरी बात कौन लेगा? मैं संगी खोजता हूँ— अपने भाव का व्यक्ति। खूब बड़ा भक्त देखकर मन में लगता है, शायद यही मेरा भाव ले सकेगा। फिर देखता हूँ, वह और ही एक प्रकार का हो जाता है।

"एक भूत संगी खोज रहा था। शनि-मंगलवार को अपघात मृत्यु होने पर भूत बनता है। वह भूत ज्यों ही देखता कि कोई शनि-मंगलवार को उस प्रकार मर रहा है, त्यों ही वहाँ दौड़कर जाता। सोचता, अब शायद मेरा संगी बना। किन्तु निकट पहुँचा और वह व्यक्ति खड़ा हो जाता। शायद छत से गिरा था, बेहोश हो गया था, फिर बच गया।

"सेजोबाबू (मथुरबाबू) को भाव हुआ। सर्वदा ही मतवाले की भाँति रहता— कोई भी काज नहीं कर सकता। तब सब ही कहने लगे कि इसके ऐसा हो जाने पर विषय (जगत का काम) कौन देखेगा? छोटे भट्टाचार्जी (रामकृष्ण) ने निश्चय कोई टोना किया है।"

(नरेन्द्र का बेहोश होना— गुरु-शिष्य की दो कहानियाँ)

"नरेन्द्र जब पहले-पहले आया, उसकी छाती पर हाथ देने से बेहोश हो गया। तब फिर चैतन्य होने पर रोने लगा— ए जी, मुझे ऐसा क्यों किया? मेरा बाप है, मेरी माँ जो है जी! 'मेरा', 'मेरा' करना— यही तो अज्ञान से होता है।

"गुरु ने शिष्य से कहा, संसार मिथ्या है, तू मेरे संग चला आ। शिष्य बोला, ठाकुर (महाराज), ये लोग सब मुझे इतना अधिक प्यार करते हैं— मेरा बाप, मेरी माँ, मेरी स्त्री— इनको छोड़कर कैसे चलूँ? गुरु बोले— तू 'मेरी', 'मेरा' तो चाहे करता है, और कहता है ये प्यार करते हैं, किन्तु यह सब भूल है। मैं तुझे कूट कौशल सिखा देता हूँ। उसे कर, तब तू समझ जाएगा कि वे सचमुच ही तुझे प्यार करते हैं कि नहीं! यह कहकर एक औषध की गोली उसके हाथ में देकर बोले, इसे खा ले। मृतक के समान हो जाएगा। तेरा होश (ज्ञान)

नहीं जाएगा, सब देख-सुन सकेगा। फिर मेरे आ जाने पर तेरी क्रमशः पूर्वावस्था हो जाएगी।

"उस शिष्य ने ठीक उसी प्रकार किया। घर में 'रोयाराट' मच गया। माँ, स्त्री, सब अछाड़-पिछाड़ खा-खाकर रोने लगे। ठीक इसी समय एक ब्राह्मण आकर बोला, क्या हो गया है भाई? उन सबने कहा, यह लड़का मर गया है। ब्राह्मण ने मरे मनुष्य का हाथ देखकर कहा, अरे यह क्या! यह तो मरा नहीं है। मैं एक औषध देता हूँ। खाते ही सब चला जाएगा। घर के सबने ही जैसे हाथ में स्वर्ग पा लिया। तब ब्राह्मण बोले, किन्तु एक बात है। औषध पहले एक व्यक्ति को खानी होगी, तत्पश्चात् उसको खानी होगी। जो पहले खाएगा, उसकी किन्तु मृत्यु हो जाएगी। देख रहा हूँ, इसके तो बहुत-से अपने जन हैं, कोई-न-कोई अवश्य खा लेगा। माँ और स्त्री— ये बहुत रो रही हैं। ये अवश्य खा सकेंगी।

"तब सब के सब क्रन्दन छोड़कर चुप हो गए! माँ बोली— ऐं! यह इतनी बड़ी गृहस्थी, मेरे चले जाने से कौन यह सब देखेगा, सम्भालेगा— यह कहकर चिन्ता में पड़ गई। स्त्री अभी-अभी यह कहकर रो रही थी, 'अरी दीदी, यह मेरा क्या हो गया जी!' वह बोली, यही तो— उनका तो जो होना था हो गया है। मेरे दो-तीन नाबालिग लड़के-लड़कियाँ हैं— मैं यदि चली गई तो इनको कौन देखेगा?

"शिष्य सब कुछ देख रहा था, सुन रहा था। वह तब उठकर खड़ा हो गया और बोला, गुरुदेव चलिए, आपके संग में चलता हूँ।" *(सबका हास्य)*।

"और एक शिष्य ने गुरु से कहा था, मेरी स्त्री बड़ी सेवा करती है, उसके लिए ही गुरुदेव मैं जा नहीं पा रहा हूँ। वह शिष्य हठयोग किया करता था। गुरु ने उसको एक कौशल सिखा दिया। एक दिन उसके घर में खूब रोयाराट मच गया। मुहल्ले के लोग आकर देखते हैं कि हठयोगी घर में आसन पर बैठा है— टेढ़ा-मेढ़ा, अकड़ा हुआ। सबने यही समझा कि उसका प्राणवायु निकल गया है। स्त्री अछाड़-पछाड़ खाकर रो रही है, 'अजी, यह मेरा क्या

हो गया— अजी, तुम हमारा क्या कर गए जी! अरी दीदी माँ, ऐसा हो जाएगा, ऐसा तो मैं नहीं जानती थी!' इधर रिश्तेदार खाट ले आए, उसको कमरे से बाहर निकालते हैं।

"तब एक गड़बड़ मची। टेढ़ा-मेढ़ा अकड़ा हुआ शरीर होने के कारण द्वार में से निकलता नहीं। तब कोई पड़ोसी दौड़कर एक कटारी लेकर द्वार की चौकाठ काटने लगा। स्त्री अस्थिर हुई रो रही थी, वह दुम्-दुम् शब्द सुनकर भाग आई। आकर रोते-रोते पूछा, अजी क्या हो गया! उन्होंने बताया, ये बाहर निकलते नहीं हैं तभी चौकाठ काट रहा हूँ। तब स्त्री ने कहा, अजी, ऐसा काम मत करें। मैं अब राँड (बेवा) हो गई हूँ। मेरा देखने वाला और कोई नहीं है, इन कई नाबालिगों को पालना है। इस द्वार के कट जाने पर फिर और तो बनेगा नहीं। अजी, उनका तो जो होना था वह तो हो ही गया है— उनके हाथ-पैर काट दो! तब हठयोगी खड़ा हो गया। उसका तब तक औषध का नशा चला गया था। खड़ा होकर कहता है, 'तो फिर ओ साली, मेरे हाथ-पैर काटेगी?' यह कहकर घर का त्याग करके गुरु के संग चला गया। *(सबका हास्य)*।

"बहुत-से लोग ढोंग करके शोक करते हैं। रोना पड़ेगा, इसलिए पहले ही नथ उतार लेती है और सब गहने उतार लेती है; खोलकर बक्स में ताले में रख देती है। तब फिर पीट-पीटकर अछाड़ें-पिछाड़ें खाकर रोती है, 'अरी मेरी दीदी री, मेरा यह क्या हो गया जी!"

द्वितीय परिच्छेद

(अवतार के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण के सम्मुख नरेन्द्रादि के विचार)

नरेन्द्र— Proof (प्रमाण) बिना मिले क्योंकर विश्वास करूँ कि ईश्वर मनुष्य बनकर आते हैं?

गिरीश— विश्वास ही sufficient proof (यथेष्ट प्रमाण) है। यह वस्तु यहाँ पर है, इसका प्रमाण क्या है? विश्वास ही प्रमाण है।

एकजन भक्त— External world (बहिर्जगत) बाहर है। फिलोसफर (दार्शनिकगण) कुछ prove (प्रमाणित) कर सके हैं? तभी कहते हैं irresistible belief (अदम्य विश्वास)।

गिरीश *(नरेन्द्र के प्रति)*— तुम्हारे सम्मुख आ जाने पर भी तो विश्वास नहीं करोगे! शायद कहोगे, वह कहता है, मैं ईश्वर मनुष्य होकर आया हूँ, वह झूठा, पाखण्डी है।

'देवतागण अमर हैं'— यह बात उठी।

नरेन्द्र— उसका प्रमाण कहाँ है?

गिरीश— तुम्हारे सामने आ जाने पर भी तो विश्वास नहीं करोगे।

नरेन्द्र— 'अमर, past-ages (अतीतकाल) में थे'— प्रूफ (प्रमाण) चाहिए।

मणि पल्टु से कुछ कहते हैं।

पल्टु *(नरेन्द्र के प्रति, सहास्य)*— अनादि का क्या प्रयोजन? अमर होना हो तो अनन्त होना आवश्यक है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— नरेन्द्र वकील का बेटा, पल्टु डिप्टी का बेटा *(सबका हास्य)*।

सब चुप हैं।

योगीन *(गिरीश आदि भक्तों के प्रति सहास्य)*— नरेन्द्र की बात ये (ठाकुर) और नहीं लेते।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— मैंने एक दिन कहा था, चातक आकाश के जल को छोड़ और कोई जल नहीं पीता। नरेन्द्र ने कहा, चातक यह जल भी पीता है। तब माँ से कहा था कि माँ, तो फिर क्या ये सब बातें मिथ्या हो गईं! भारी भावना हुई (बड़ी चिन्ता हुई) थी। और एक दिन फिर नरेन्द्र आया था। कमरे में कुछ पक्षी उड़ रहे थे, देखकर बोल उठा— 'वही! वही!' मैंने कहा, क्या? वह बोला, 'वही चातक! वही चातक!' देखा कितनी सारी चामचिकें*

* चामचिकें = छोटी जाति के चमगादड़ जो घरों में घोंसला बनाकर रहते हैं।

थीं। तब से उसकी बात फिर नहीं लेता। *(सबका हास्य)*।

(ईश्वर-रूप-दर्शन या मन की भूल ?)

श्रीरामकृष्ण— यदुमल्लिक के बागान में नरेन्द्र ने कहा, तुम ईश्वर के रूप-टूप जो देखते हो, वह मन की भूल है। तब अवाक् होकर उससे कहा था, क्या बात कहता है रे ? नरेन्द्र बोला, ऐसा होता है। तब माँ के पास आकर रोने लगा! कहा— माँ, यह क्या हो गया! यह समस्त क्या झूठ है ? नरेन्द्र ने ऐसी बात कही है! तब दिखला दिया— चैतन्य, अखण्ड चैतन्य— चैतन्यमय रूप। और कहा, 'ये समस्त बातें कैसे मिलती हैं, यदि मिथ्या होतीं तो!' तब कहा था, 'साले, तू मुझे अविश्वासी करता था! तू फिर मत आइयो!'

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण— शास्त्र और ईश्वर की वाणी— Revelation)

फिर और विचार होने लगा। नरेन्द्र विचार करते हैं। नरेन्द्र की वयस् अब 22 वर्ष चार महीने होगी।

नरेन्द्र *(गिरीश, मास्टर प्रभृति से)*— शास्त्र में ही फिर विश्वास कैसे करूँ! महानिर्वाणतन्त्र एक बार कहता है, ब्रह्मज्ञान न हो तो नरक होगा। और फिर कहता है, पार्वती की उपासना को छोड़ और उपाय नहीं। मनुसंहिता में मनु लिखते हैं मनु की ही बात। मोजिस (मूसा) लिखते हैं 'पेण्ट्याट्युक्'— उनकी अपनी मृत्यु का ही वर्णन!

''सांख्य दर्शन कहता है, 'ईश्वरासिद्धेः'— ईश्वर हैं, यह प्रमाणित नहीं किया जाता। और कहता है, वेद मानना चाहिए, वेद नित्य है।

''इस कारण यह समस्त नहीं है, यह मैं नहीं कहता! समझ नहीं पाता, समझा दो! शास्त्र का अर्थ जिसके मन में जो आया है, वही किया है। अब कौन-सा लूँ? व्हाइट लाइट (सफेद रोशनी) रेड मीडियम (लाल काँच) के द्वारा आने पर लाल दीखती है, ग्रीन (हरी) मीडियम से आने पर ग्रीन दीखती है।''

एकजन भक्त— गीता में भगवान ने कही है।

श्रीरामकृष्ण— गीता सब शास्त्रों का सार है। संन्यासी के पास और कुछ न हो, एक छोटी गीता तो जरूर रहेगी।

एकजन भक्त— गीता श्रीकृष्ण ने कही है!

नरेन्द्र— श्रीकृष्ण ने कही है, या इन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) कही है!

ठाकुर श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र की ये बातें अवाक् होकर सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— ये समस्त सुन्दर बातें हो रही हैं।

"शास्त्र का दो प्रकार का अर्थ है— शब्दार्थ और मर्मार्थ। केवल बस मर्मार्थ ही लेना चाहिए— जो अर्थ ईश्वर की वाणी के संग में मिलता है। चिट्ठी की बात और जिस व्यक्ति ने चिट्ठी लिखी है उसके मुख की बात में बड़ा अन्तर है। शास्त्र होता है, चिट्ठी की बात; ईश्वर की वाणी मुख की बात। मैं माँ के मुख की बात के संग में बिना मिलाए कुछ भी नहीं लेता।

फिर दोबारा अवतार की बात उठी।

नरेन्द्र— ईश्वर में विश्वास होने से ही हुआ। फिर वे कहाँ पर झूल रहे हैं या क्या कर रहे हैं, इसका मुझे प्रयोजन नहीं। अनन्त ब्रह्माण्ड! अनन्त अवतार!

'अनन्त ब्रह्माण्ड', 'अनन्त अवतार' सुनकर श्रीरामकृष्ण ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कह रहे हैं, 'आहा!'

मणि भवनाथ से कुछ कह रहे हैं।

भवनाथ— ये कहते हैं, 'हाथी जब देखा नहीं, तब वह सूई के भीतर जा सकता है या नहीं, कैसे जाना जाएगा? ईश्वर को जानता नहीं, अथच वे मनुष्य होकर अवतार हो सकते हैं कि नहीं, विचार द्वारा कैसे समझूँगा!'

श्रीरामकृष्ण— सब ही सम्भव है। वे जादू लगा देते हैं! जादूगर गले के भीतर छुरी लगा देता है, और फिर बाहर कर लेता है। ईंट के टुकड़े खा लेता है!

तृतीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और कर्म— उनकी ब्रह्मज्ञान की अवस्था)

भक्त— ब्राह्मसमाज के लोग कहते हैं, गृहस्थ (संसार) का कर्म करना कर्त्तव्य है। इस कर्म का त्याग नहीं करना होगा।

गिरीश— 'सुलभ समाचार' में इसी प्रकार लिखा हुआ है, मैंने देखा था। किन्तु ईश्वर को जानने के लिए जो समस्त कर्म हैं, वे ही पूरे किए नहीं जा पाते, फिर अन्य और कर्म!

श्रीरामकृष्ण ने ईषत् हँसकर मास्टर की ओर देखते हुए नयनों द्वारा इंगित किया, 'यह जो कहता है वही ठीक है।'

मास्टर समझ गए, कर्मकाण्ड बड़ा कठिन है।

पूर्ण आए हैं।

श्रीरामकृष्ण— किसने तुम्हें खबर दी!

पूर्ण— सारदा।

श्रीरामकृष्ण *(उपस्थित स्त्री भक्तों के प्रति)*— अरे, इसको (पूर्ण को) थोड़ा जलपान करने को दो तो।

अब नरेन्द्र गाना गाएँगे। ठाकुर श्रीरामकृष्ण और भक्तगण सुनेंगे। नरेन्द्र गा रहे हैं—

गान— परवत पाथार।
व्योमे जागो रुद्र उद्यत बाज।
देव-देव महादेव, काल-काल महाकाल,
धर्मराज शंकर शिव तारो हरो पाप।

[भावार्थ— पर्वत, समुद्र, व्योम में उद्यत (उठे हुए) वज्र वाले हे रुद्र, आप जागो। देवों के देव महादेव आप हैं। कालों के काल महाकाल आप हैं। हे धर्मराज शंकर शिव, आप हमारे पाप हरो।]

गान— सुन्दर तोमार नाम दीनशरण हे,
बहिछे अमृत-धार, जुड़ाय श्रवण, प्राण-रमण हे!

[भावार्थ— हे प्राण-रमण, तुम्हारा दीनशरण नाम बड़ा ही सुन्दर है। इसमें अमृत-धारा बहती है। और इसे सुनने से शान्ति (ठण्डक) मिलती है।]

गान— विपद-भय वारण, जे करे ओ रे मन, ताँरे केनो डाको ना;
मिछे भ्रमे भुले सदा, रयेछो भवघोरे मजि, एकि विडम्बना।
ए धन जन, ना रबे हेन ताँरे जेनो भुलो ना;
छाड़ि असार, भजहो सार, जावे भव जातना।
एखन हित बचन शोनो, जतने करि धारणा;
वदन भरि, नाम हरि, सतत करो घोषणा।
यदि ए भवे पार होबे छाड़ो विषय वासना;
संपिये तनु हृदय मन, ताँर करो साधना।

[भावार्थ— ओ मन, जो विपद के भय को रोकते हैं, उनको क्यों नहीं पुकारते? यह कैसी विडम्बना है कि झूठे भ्रम में सदा तू भव के नशे में डूबा रहता है। यह धन-जन तो नहीं रहेंगे, इसलिए उनको मत भूलो। असार को छोड़कर, सार को भजो, भव-यातना चली जाएगी। अब धारणा करके यत्न से हित-वचन सुनो; मुख में हरि का नाम भर कर सतत घोषणा करो कि यदि इस भव को पार करना है तो यह विषय-वासना छोड़ो। उनके पास हृदय-मन को सौंप, उनकी साधना करो।]

पल्टु— वह गाना गाओगे?

नरेन्द्र— कौन-सा?

पल्टु— देखिले तोमार सेइ अतुल प्रेम आनने, ...

नरेन्द्र वही गाना गाते हैं—

देखिले तोमार सेइ अतुल प्रेम आनने,
कि भय संसार शोक घोर विपद शासने।
अरुण उदये आँधार जेमन जाय जगत छाड़िये,
तेमनि देब तोमार ज्योति मंगलमय बिराजिले
भकत-हृदय बीतशोक तोमार मधुर सान्त्वने।
तोमार करुणा, तोमार प्रेम, हृदये प्रभु भाविले,

उथले हृदय नयन-बारि राखे के निबारिए?
जय करुणामय, जय करुणामय, तोमार प्रेम गाइए,
जाय यदि जाक् प्राण तोमार कर्म साधने।

[भावार्थ— जब आप का वही अतुल प्रेम-मुख देख लिया है तो संसार-शोक, घोर विपद, दमन (शासन) का क्या भय? अरुण उदय होने पर जैसे अन्धेरा जगत छोड़कर चला जाता है, वैसे ही हे देव! तुम्हारी मंगलमय ज्योति के विराजमान होने से, तुम्हारी मधुर सान्त्वना से, भक्त का हृदय वीतशोक हो जाता है। तुम्हारी करुणा, तुम्हारा प्रेम, हे प्रभु! हृदय में ग्रहण कर लेने पर हृदय नयन-जल बनकर उथल पड़ता है। तब कौन रोक कर रखे? जय करुणामय! जय करुणामय! तुम्हारा प्रेम गाते-गाते और तुम्हारे कर्म-साधन में यदि प्राण जाता है तो जाए।]

मास्टर के अनुरोध से फिर और गा रहे हैं। मास्टर और बहुत-से भक्तगण हाथ जोड़ कर गाना सुन रहे हैं।

गान— हरि-रस-मदिरा पिए मम मानस मातरे।
एक बार लुटइ अवनीतल, हरि-हरि बोलि काँद रे।
(गति कर कर बोले)।
गम्भीर निनादे हरिनामे गगन छाओ रे।
नाचो हरि बोले दुबाहु तुले, हरिनाम बिलाओ रे।
(लोकेर द्वारे-द्वारे)।
हरि प्रेमानन्दरसे अनुदिन भास रे,
गाओ हरिनाम, हओ पूर्णकाम; नीच वासना नाश रे॥

[भावार्थ— ऐ मेरे मानस (मन)! तू हरि-रस-मदिरा पीकर मस्त हो जा। एक बार धरती पर लोट-पोट होकर, हरि-हरि कहते हुए रो रे! (गति करो, गति करो कह-कहकर) हरि-नाम के गम्भीर निनाद (ध्वनि-गर्जन) को गगन में छा दो। दोनों बाहें उठाकर हरि बोलकर नाचो, और हरि-नाम वितरण करो लोगों के द्वार-द्वार पर जाकर। रात-दिन तुम हरि के प्रेमानन्द के रस में तैरो और हरि-नाम गाओ तथा पूर्णकाम हो जाओ, नीच वासना का नाश हो जाए।]

गान— चिन्तय मम मानस हरि चिद्घन निरञ्जन।

गान— चमत्कार अपार जगत रचना तोमार।

गान— गगनेर थाले रवि चन्द्र दीपक ज्वले,
तारकामण्डल चमके मोती रे।

धूप मलयानिल, पवन चामर करे,
सकल बनराजि फुटन्त ज्योति रे।
केमन आरति हे भवखण्डन तव आरति,
अनाहत शब्द बाजन्त भेरी रे॥

[भावार्थ— गगन के थाल में रवि-चन्द्र दीपक जल रहे हैं, तारक-मण्डल मोती रूप में चमक रहे हैं। मलयानिल धूप की गन्ध है, पवन चँवर डुला रही है, सब बनराजि की वनस्पतियाँ ज्योति विकसित कर रही हैं। यह कैसी तेरी आरती है! हे भव-खण्डन, अनाहत शब्द की भेरी बज रही है।]

गान— शेइ एक पुरातने पुरुष, निरञ्जने, चित्त समाधान करो रे।
[उसी एक पुरातन पुरुष, निरञ्जन पर चित्त को लगाओ भाई!]

नारायण के अनुरोध पर नरेन्द्र फिर और गा रहे हैं—

एसो मा एसो मा, ओ हृदय-रमा, पराण-पुतली गो।
हृदय आसने होओ मा आसीन, निरखि तोरे गो।
आछि जन्मावधि तोर मुख चेये,
जानो मा जननी कि दुख पेये,
एक बार हृदयकमल विकाश करिए,
प्रकाशो ताहे आनन्दमयी॥

[भावार्थ— ओ हृदय-रमा माँ, प्राण-पुतली माँ, आओ, आओ माँ! माँ, हृदय के आसन पर आसीन हो जाओ। हे माँ, तुम्हें तब निरखूँ। जन्म-अवधि में तेरे मुख की ओर देख रहा था, तुम तो माँ जानती हो, कैसा दुःख पाया है! एक बार हृदय-कमल विकसित करके उस पर प्रकाशित हो जाओ, आनन्दमयी!]

(श्रीरामकृष्ण समाधिमन्दिर में— उनकी ब्रह्मज्ञान की अवस्था)

नरेन्द्र अपनी मर्जी से गाना गाते हैं—

निबिड़ आँधारे मा तोर चमके ओ रूपराशि।
ताइ योगी ध्यान धरे होये गिरि-गुहा-वासी॥

[भावार्थ— घने अन्धकार में माँ, तेरी वह रूप-राशि चमक रही है। इसीलिए तो योगी ध्यान धर कर गिरि-गुहा-वासी हो गए हैं।]

समाधि के इस गाने को सुनते-सुनते ठाकुर समाधिस्थ हो रहे हैं। नरेन्द्र फिर और एक बार वही गाना ही गा रहे हैं—

हरिरस-मदिरा पिये मम मानस मातरे

श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हैं। उत्तरास्य हुए दीवार को ठेस दिए पाँव झुला कर तकिये के ऊपर बैठे हुए हैं। भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं।

भावाविष्ट हुए माँ के संग में अकेले बातें कर रहे हैं। ठाकुर कह रहे हैं—

"इस समय खाकर जाऊँगा। तू आ गई? तू क्या गठरी बाँधकर स्थान निश्चय करके आई है?"

ठाकुर क्या बतला रहे हैं, माँ तू क्या आ गई है? ठाकुर और माँ क्या अभेद हैं?

"अब मुझे कोई अच्छा नहीं लगता।"

"माँ, गाना क्यों सुनूँ? उससे तो मन थोड़ी देर को बाहर चला जाएगा।"

ठाकुर धीरे-धीरे और भी बाहरी ज्ञान-लाभ कर रहे हैं। भक्तों की ओर देखकर कह रहे हैं,

"पहले किसी को माछ (मछली) को जिन्दा रखे देखकर आश्चर्य किया करता था; मन में सोचता कि ये कैसे निष्ठुर हैं, बाद में इनकी हत्या करेंगे! अवस्था जब बदलने लगी तब देखा कि शरीरसमूह तो गिलाफ (खोल) मात्र हैं। रहे तो भी कुछ आता-जाता नहीं, जाने पर भी आता-जाता नहीं।"

भवनाथ— तो फिर मनुष्य-हिंसा की जाए!— मार डाला जाए?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, इस अवस्था में हो सकता है।* यह अवस्था सब की नहीं होती— ब्रह्मज्ञान की अवस्था!

"दो-एक स्तर नीचे आने पर तब ही फिर भक्ति और भक्त अच्छे लगते हैं।

---

* न हन्यते हन्यमाने शरीरे। (गीता 2/20)

"ईश्वर में विद्या-अविद्या दोनों ही हैं। यह विद्या-माया ईश्वर की ओर ले जाती है, अविद्या-माया मनुष्य को ईश्वर से दूर ले जाती है। विद्या का खेल— ज्ञान, भक्ति, दया, वैराग्य हैं। इन सबका आश्रय करने से ईश्वर के पास पहुँचा जाता है।

"और एक धाप (सीढ़ी) चढ़ते ही ईश्वर— ब्रह्मज्ञान! इस अवस्था में ठीक बोध हो रहा है, ठीक देख रहा हूँ— वे ही सब कुछ बने हुए हैं! त्याज्य-ग्राह्य नहीं रहता! किसी के ऊपर राग भी तो नहीं रहता।

"गाड़ी से जा रहा हूँ— बरामदे में खड़ी दो वेश्याएँ देखीं। देखा साक्षात् भगवती! देखकर प्रणाम किया।

"जब ऐसी अवस्था प्रथम हुई, तब माँ काली की पूजा करना और भोग देना नहीं कर पाया। हलधारी और हृदे ने कहा, खजाँची कहता है, भट्चाज्जि भोग नहीं देंगे तो क्या करेंगे? कुवाक्य कहा है, सुनकर मैं केवल हँसने लगा था, तनिक-सा भी तो क्रोध नहीं हुआ।

"यह ब्रह्मज्ञान-लाभ करके फिर लीला-आस्वादन करते हुए टहलो। एक साधु एक शहर का रंग देखता हुआ टहल रहा था। तब उसका एक परिचित साधु से मेल हुआ। वह बोला, 'तुम जो आमोद करते हुए टहल रहे हो, 'तल्पितल्पा' (बोरिया-बिस्तर) कहाँ है? उन्हें कोई चुराकर तो नहीं ले गया?' पहले साधु ने कहा, 'नहीं महाराज, पहले निवास-स्थान पकड़कर गठरी-वठरी ठीक-ठाक करके, कमरे में रखकर ताला लगाकर तब शहर का रंग देखता टहल रहा हूँ।" *(सबका हास्य)*।

भवनाथ— यह तो खूब ऊँची बात है।

मणि *(स्वगत)*— ब्रह्मज्ञान के बाद लीला-आस्वादन! समाधि के उपरान्त नीचे उतरना!

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर आदि के प्रति)*— ब्रह्मज्ञान क्या सहज ही होता है? मन का नाश बिना हुए नहीं होता। गुरु ने शिष्य से कहा था, तुम मुझे मन दो, मैं तुम्हें ज्ञान देता हूँ। न्याँगटा (नागा साधु तोतापुरी) कहा करता था, 'आरे मन बिलाते नाहि!' (अरे! मन को इधर-उधर नहीं जाने देना चाहिए।)

(**Biology— 'Natural law' in the spiritual world**)

''इस अवस्था में केवल हरि-कथा अच्छी लगती है और भक्त-संग।

(राम के प्रति)— ''तुम तो डॉक्टर हो— जब रक्त के साथ मिलकर एक हो जाएगा तब ही तो काम होगा। वैसे ही इस अवस्था में अन्दर-बाहर ईश्वर है— यह देखोगे। वे (ईश्वर) ही हैं देह, मन, प्राण, आत्मा!

मणि *(स्वगत)*— Assimilation!

श्रीरामकृष्ण— ब्रह्मज्ञान की अवस्था मन का नाश होने से ही होती है। मन का नाश होने पर ही 'अहं'-नाश— जो 'मैं-मैं' करता रहता है। यह भक्ति-पथ से भी होता है, और फिर ज्ञान-पथ अर्थात् विचार-पथ से भी होता है। 'नेति-नेति' अर्थात् 'यह सब माया, स्वप्नवत्' यही विचार ज्ञानी करते हैं। यह जगत 'नेति-नेति'— माया है। जगत जब उड़ जाता है, शेष रह जाते हैं कुछ जीव— 'मैं' रूप घट बीच में रहता है!

''कल्पना करो दस जल-पूर्ण घट हैं। उनके बीच सूर्य का प्रतिबिम्ब है। कितने सूर्य दिखाई देते हैं?''

भक्त— दस प्रतिबिम्ब और एक सत्य सूर्य तो है ही।

श्रीरामकृष्ण— कल्पना करो, एक घट टूट गया, अब कितने सूर्य दिखाई देते हैं?

भक्त— नौ। एक सत्य सूर्य तो है ही।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, नौ के नौ ही तोड़ दिए गए। कितने सूर्य दिखाई देंगे?

भक्त— एक प्रतिबिम्ब सूर्य। एक सत्य सूर्य तो है ही।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— अन्तिम घट के टूट जाने पर क्या रह जाता है?

गिरीश— जी, वही सत्य सूर्य।

श्रीरामकृष्ण— नहीं। क्या रहता है— वह मुख से नहीं कहा जाता। जो है, बस वही है। प्रतिबिम्ब सूर्य के न रहने पर सत्य सूर्य है, यह कैसे जानोगे! समाधिस्थ होने पर अहं तत्त्व का नाश हो जाता है। समाधिस्थ व्यक्ति नीचे उतर आने पर क्या देखता है— मुख से नहीं बोला जा सकता।

चतुर्थ परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण का भक्तों को आश्वासन-प्रदान और अंगीकार)

सन्ध्या हो गई है। बलराम की बैठक में प्रदीप-दिये जल रहे हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण अब भी भावस्थ हैं, भक्तों से घिरे हुए हैं। भाव में बोल रहे हैं—

''यहाँ पर और कोई नहीं है, जभी तुम लोगों से कह रहा हूँ— आन्तरिक ईश्वर को जो जानना चाहेगा, उसका ही होवेगा, होगा ही होगा। जो व्याकुल है, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, उसका ही होगा।

''यहाँ के जो लोग हैं (अन्तरंग भक्तगण) वे सब जुट गए हैं। और अब जो लोग आएँगे वे बाहर के लोग हैं। वे भी अब बीच-बीच में (दक्षिणेश्वर) जाएँगे। (माँ) उनसे कह देंगी, 'यह करो, इस प्रकार से ईश्वर को पुकारो'।''

(ईश्वर ही गुरु— जीव का एकमात्र मुक्ति का उपाय)

''क्यों ईश्वर की ओर (जीव का) मन नहीं जाता? ईश्वर की अपेक्षा उनका (महामाया का) जोर भी तो बहुत अधिक है। जज की अपेक्षा उसके चपरासी की क्षमता अधिक है *(सबका हास्य)*।

''नारद से राम ने कहा— नारद, मैं तुम्हारे स्तव से बड़ा प्रसन्न हूँ। मुझसे कोई वर लो! नारद ने कहा, राम! तुम्हारे पादपद्मों में जैसे मेरी शुद्धा भक्ति हो जाए, और जैसे तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ। राम बोले— तथास्तु, और कुछ वर लो! नारद बोले, राम और कुछ वर नहीं चाहिए।

''इस भुवनमोहिनी माया से सब मुग्ध हैं। ईश्वर देह धारण करते हैं तो वे भी मुग्ध हो जाते हैं। राम सीता के लिए रोते-रोते फिरते रहे थे। पञ्चभूत के बन्धन ब्रह्म करे क्रन्दन।'

"किन्तु फिर भी एक बात विशेष है— ईश्वर इच्छा करते ही मुक्त हो जाते हैं!"

भवनाथ— गार्ड (रेलगाड़ी का) अपनी इच्छा से रेल की गाड़ी में अपने-आपको बन्द कर लेता है और फिर मर्जी होने से नीचे उतर सकता है!

श्रीरामकृष्ण— ईश्वरकोटि— जैसे अवतार आदि— सोचने मात्र से ही मुक्त हो सकते हैं। जो जीवकोटि हैं, वे नहीं हो सकते। जीवगण कामिनी-काञ्चन में बद्ध हैं। घर के द्वार-खिड़कियाँ स्क्रुओं के द्वारा रुद्ध कर रखे हैं, बाहर कैसे निकलें?

भवनाथ *(सहास्य)*— जैसे रेल के थर्ड क्लास पैसेञ्जर (तृतीय श्रेणी के यात्री) चाबी से बन्द होते हैं, बाहर निकल नहीं सकते!

गिरीश— जीव यदि इसी प्रकार सब ओर से बद्ध है तो फिर उसका उपाय क्या है?

श्रीरामकृष्ण— किन्तु गुरु रूप बनकर ईश्वर स्वयं यदि माया-पाश छेदन करते हैं तो फिर भय नहीं।

ठाकुर क्या इंगित कर रहे हैं कि वे निज ही जीव का माया-पाश छेदन करने के लिए देह धारण करके, गुरुरूप होकर आए हैं?

षोडश खण्ड

भक्त-मन्दिर में भक्तों के संग में श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण राम के मकान पर)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण राम के घर आए हैं। उनके नीचे की बैठक में भक्तों से घिरे हुए बैठे हैं। सहास्यवदन हैं। ठाकुर भक्तों के साथ आनन्द में बातें कर रहे हैं।

आज शनिवार है। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तिथि। 23 मई, 1885। समय प्राय: पाँच का। ठाकुर के सम्मुख श्रीयुक्त महिमा बैठे हैं। राम की ओर मास्टर; चारों ओर पल्टु, भवनाथ, नित्यगोपाल, हरमोहन हैं। श्रीरामकृष्ण आते ही भक्तों का समाचार लेते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— छोटे नरेन नहीं आया?

छोटे नरेन कुछ क्षणों के पश्चात् आ उपस्थित हुए।

श्रीरामकृष्ण— वह नहीं आया?

मास्टर— जी?

श्रीरामकृष्ण— किशोरी? गिरीश घोष नहीं आएगा? नरेन्द्र नहीं आएगा?

कुछ समय पीछे आकर नरेन्द्र ने प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— केदार (चैटर्जी) होते तो अच्छा होता। गिरीश घोष के साथ खूब मेल-जोल है। *(महिमा के प्रति, सहास्य)* वह

(केदार) भी (अवतार) कहता है।

कमरे में कीर्त्तन होने का आयोजन हो रहा है। कीर्त्तनिया हाथ जोड़ कर कह रहा है— जी, आज्ञा करें तो गान आरम्भ हो।

ठाकुर कहते हैं, तनिक जलपान करूँगा।

जलपान करके बटुए से कुछ मसाला लिया। मास्टर को बटुआ बन्द करने के लिए कहा।

कीर्त्तन हो रहा है। खोल (पखावज) की आवाज से ठाकुर को भाव हो रहा है। 'गौर-चन्द्रिका' सुनते-सुनते एकदम समाधिस्थ हो गए हैं। निकट नित्यगोपाल थे, उनकी गोद पर पाँव फैला दिए। नित्यगोपाल भी भावमय हो रहे हैं। भक्तगण सब अवाक् होकर उस समाधि-अवस्था को एकदृष्टि से देख रहे हैं।

[Yog, subjective and objective, identity of God (the Absolute), the soul and the cosmos (जगत)]

ठाकुर थोड़ा-सा प्रकृतिस्थ होकर बातें कर रहे हैं—

"नित्य से लीला, लीला से नित्य। *(नित्यगोपाल के प्रति)*— तेरा क्या भाव है?"

नित्यगोपाल *(विनीत भाव से)*— दोनों ही अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण आँखें बन्द करके कहते हैं—

केवल ऐसे ही हैं क्या? आँखें बन्द करके ही वे हैं, और आँख खोलने पर नहीं हैं! जिनका नित्य है, उनकी ही लीला है; जिनकी लीला, उनका ही नित्य।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— तुम से भाई, एक बार कहा था।

महिमाचरण— जी, दोनों ही ईश्वर की इच्छा।

श्रीरामकृष्ण— कोई सात तले के ऊपर चढ़कर फिर उतर नहीं सकता, और फिर कोई चढ़कर नीचे आना-जाना कर सकता है।

"उद्धव ने गोपियों से कहा था, तुम लोग जिसको कृष्ण कहती हो, वे

सर्वभूतों में हैं, वे ही जीव-जगत बनकर रह रहे हैं।

"जभी तो कहता हूँ कि क्या आँखें बन्द करके ही ध्यान है, आँखें खोलकर फिर कुछ नहीं?"

महिमा— एक बात पूछनी है। भक्त को एक बार तो निर्वाण चाहिए?

(पूर्वकथा— तोता (पुरी) का क्रन्दन—Is Nirvaan the end of life?)

श्रीरामकृष्ण— निर्वाण चाहिए ही, ऐसा कुछ नहीं है। इस प्रकार है कि नित्यकृष्ण उनके नित्यभक्त! चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम!

"जैसे चाँद जहाँ, तारे भी वहाँ। नित्य कृष्ण, नित्य भक्त! तुम्हीं तो कहते हो भाई, अन्तः बहिः यदि हरिस्तपसा ततः किम्* और तुम से तो कहा था कि विष्णु-अंश में भक्ति का बीज नहीं जाता। मैं एक ज्ञानी के पल्ले पड़ गया था, ग्यारह मास वेदान्त सुनाया उसने! किन्तु भक्ति का बीज तो फिर (मेरा) नहीं गया। घूम-फिर कर फिर वही 'माँ-माँ'। जब मैं गाना गाया करता तो वह (न्यांगटा) रोता था— कहता, 'अरे, क्या रे!' देखो, इतना बड़ा ज्ञानी भी रो पड़ता! *(छोटे नरेन इत्यादि के प्रति)* इतना जान रखना कि अलखलता का जल पेट में जाने से पेड़ होता ही है। भक्ति का बीज एक बार पड़ जाने पर अव्यर्थ हो जाता है, क्रमशः वृक्ष, फल, फूल दिखाई देंगे ही।

" 'मूसलं कुलनाशनम्'। मूसल को कितना ही घिसा गया था, क्षय हो-होकर तनिक-सा, सामान्य-सा बचा था। उसी सामान्य से ही यदुवंश ध्वंस हो गया था। हजार ज्ञान-विचार करो, भीतर भक्ति का बीज रहने पर, घूम-फिर कर, लौट कर फिर हरि, हरि, हरिबोल।"

भक्त चुप करके सुन रहे हैं। ठाकुर हँसते-हँसते महिमाचरण से कहते हैं,

---

* अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्, नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्, नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
विरम विरम ब्रह्मन् किं तपस्यासु वत्सु, व्रज व्रज द्विज शीघ्रं शंकरं ज्ञानसिन्धुम्॥
लभ लभ हरिभक्तिं वैष्णवोक्तां सुपक्वाम्, भवनिगड़निबन्धच्छेदनीं कर्त्तरीञ्च॥

''आप को क्या अच्छा लगता है?''

महिमा *(सहास्य)*— कुछ भी नहीं, आम अच्छा लगता है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्या अकेले-अकेले? या, आप भी खाओगे और सबको थोड़ा-थोड़ा-सा दोगे?

महिमा *(सहास्य)*— इतनी देने की इच्छा नहीं है, अकेले ही हो जाने से हुआ।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का ठीक भाव)

श्रीरामकृष्ण— किन्तु मेरा भाव क्या है, जानते हो? आँखें खोलने पर क्या वे फिर नहीं हैं? मैं नित्य, लीला— दोनों ही लेता हूँ।

''उनको प्राप्त कर लेने पर पता लग जाता है कि वे ही स्वराट हैं, वे ही विराट हैं। वे ही अखण्ड-सच्चिदानन्द हैं, वे ही फिर जीव-जगत बने हुए हैं।''

(केवल शास्त्रज्ञान मिथ्या, साधन करने से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है)

''साधना चाहिए— केवल शास्त्र पढ़ने से नहीं होता। विद्यासागर को देखा था— बहुत पढ़ा हुआ है, किन्तु अन्त में क्या है, देखा नहीं? लड़कों को लिखना-पढ़ना सिखाने में ही आनन्द है। भगवान के आनन्द का आस्वाद पाया नहीं। खाली पढ़ने से क्या होगा? धारणा कहाँ? पंचांग में बीस आड़ा जल लिखा है, किन्तु पंचांग दबाने पर एक बूँद भी नहीं गिरता!''

महिमा— संसार में बहुत काम हैं, साधना का अवसर कहाँ?

श्रीरामकृष्ण— क्यों, तुम्हीं तो कहते हो सब स्वप्नवत् है?

''सम्मुख समुद्र देखकर लक्ष्मण ने धनुर्बाण हाथ में लेकर क्रुद्ध होकर कहा था, मैं वरुण का वध करूँगा, यह समुद्र हमें लंका नहीं जाने देता। राम ने समझाया, लक्ष्मण! यह जो कुछ देख रहे हो, सब तो स्वप्नवत् है, अनित्य है— समुद्र भी अनित्य है, तुम्हारा क्रोध भी अनित्य है। मिथ्या को मिथ्या द्वारा वध करना— वह भी मिथ्या है।''

महिमाचरण चुप किए रहे।

(कर्मयोग या भक्तियोग— सत्गुरु कौन ?)

महिमाचरण को गृहस्थ में बहुत-से काम हैं। और उन्होंने एक नया स्कूल बनाया है— परोपकार के लिए।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण फिर और बातें करते हैं—

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— शम्भु कहता है, मेरी इच्छा है इस रुपये को सत्कर्म में व्यय करूँ, स्कूल-डिस्पेन्सरी कर दूँ, रास्ता-घाट बना दूँ। मैंने कहा, निष्काम भाव में कर सको तब तो वह अच्छा है, किन्तु निष्काम कर्म है बड़ा कठिन— किस ओर से कामना आ पड़ती है! और भी एक बात तुमसे पूछता हूँ, यदि ईश्वर-साक्षात्कार हो तो फिर उनसे तुम क्या कुछ स्कूल, डिस्पेन्सरी, हस्पताल आदि माँगोगे ?

एकजन भक्त— महाशय! संसारियों के लिए उपाय क्या ?

श्रीरामकृष्ण— साधु-संग; ईश्वरीय कथा सुनना।

"संसारी लोग मतवाले हुए हैं, कामिनी-काञ्चन में मस्त हैं। मतवाले को भात का पानी (पीच, माण्ड) थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहने से धीरे-धीरे होश आ जाता है।

"और सत्गुरु के पास से उपदेश लेना चाहिए। सत्गुरु के लक्षण हैं। जो काशी गया है और देखी है, उससे काशी की बात सुननी चाहिए। कोरा पण्डित होने से नहीं होता। जिसको 'संसार अनित्य है'— यह बोध नहीं हुआ है, उस पण्डित से उपदेश लेना उचित नहीं। पण्डित को विवेक-वैराग्य होने पर ही तब वह उपेदश दे सकता है।

"सामाध्यायी ने कहा था, ईश्वर नीरस हैं। जो हैं रसस्वरूप, उन्हें नीरस कहा था। किसी ने कहा था, मेरे मामा के यहाँ एक गौशाला भर घोड़े हैं! *(सबका हास्य)*।"

(अज्ञान— मैं और मेरा— ज्ञान और विज्ञान)

"संसारीजन मतवाले हुए हैं। सर्वदा ही सोचते हैं, मैं ही यह सब कुछ कर रहा हूँ। और गृह-परिवार— यह सब मेरा है। छरकुटे (छितरे-पितरे,

अव्यवस्थित) दाँत वाला, दाँत निकालकर कहता है, 'इनका (औरत-बच्चों का) क्या होगा? मेरे बिना इनका कैसे चलेगा? मेरी स्त्री, मेरे परिवार को कौन देखेगा?' राखाल ने कहा, मेरी स्त्री का क्या होगा!''

हरमोहन— राखाल ने यह बात कही?

श्रीरामकृष्ण— वैसा नहीं कहेगा तो क्या करेगा? जिसे ज्ञान है उसे अज्ञान भी है। लक्ष्मण ने राम से कहा— राम, यह कैसा आश्चर्य है! साक्षात् वशिष्ठदेव— उन्हें पुत्रशोक हुआ? राम ने कहा— भाई, जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है। भाई, ज्ञान-अज्ञान के पार जाओ।

''जैसे किसी के पाँव में एक काँटा चुभ गया है, वह उस काँटे को निकालने के लिए और एक काँटा जुटाता (ढूँढ़कर लाता) है। फिर उस काँटे से पहला काँटा निकाल लेने पर दोनों ही काँटे फेंक देता है! अज्ञान-काँटा निकालने के लिए ज्ञान-काँटा जुटाना पड़ता है। फिर ज्ञान-अज्ञान दोनों ही काँटों को फेंक देने पर होता है विज्ञान। ईश्वर हैं— इसे ही बोधे बोध करके उनको विशेष रूप से जानना चाहिए, उनके संग विशेष रूप से आलाप करना चाहिए— इसी का नाम है विज्ञान। जभी तो ठाकुर (श्रीकृष्ण) ने अर्जुन से कहा था— तुम त्रिगुणातीत हो जाओ।

''इसी विज्ञान की प्राप्ति के लिए विद्या-माया को आश्रय करना चाहिए। 'ईश्वर सत्य, जगत अनित्य'— यह विचार अर्थात् विवेक-वैराग्य। और फिर उनका नाम-गुण-कीर्त्तन, ध्यान, साधु-संग, प्रार्थना— ये सब ही विद्या-माया के भीतर हैं। विद्या-माया जैसे छत पर चढ़ने वाली अन्तिम कुछ सीढ़ियाँ हैं, और एक धाप (सीढ़ी) चढ़ते ही छत। छत पर चढ़ना अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति।''

(संसारी लोग और कामिनी-काञ्चन त्यागी छोकरे)

''विषयीगण मतवाले हो रहे हैं— कामिनी-काञ्चन में मस्त हैं, होश नहीं। तभी तो छोकरों (लड़कों) को प्यार करता हूँ। उनके भीतर कामिनी-काञ्चन अभी तक प्रवेश नहीं कर पाया है। आधार अच्छा है, ईश्वर के काम में आ

सकता है। संसारियों के भीतर से काँटे चुनते-चुनते सब समाप्त हो जाता है, माछ नहीं मिलती।

"जैसे ओलों द्वारा चोट खाया हुआ आम— गंगाजल डाल कर लेना पड़ता है। ठाकुर (भगवान, देवता) की सेवा में प्राय: नहीं दिया जाता, ब्रह्मज्ञान लाकर तब काटना पड़ता है— अर्थात् वे सब कुछ बने हुए हैं, इस प्रकार मन को समझाकर।"

श्रीयुक्त अश्विनीकुमार दत्त और श्रीयुक्त बिहारी भादुड़ी के पुत्र के संग में एक थियोसोफिस्ट आए हैं। मुखर्जियों ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। आँगन में संकीर्त्तन का आयोजन हो गया है। ज्योंहि खोल बजा, ठाकुर कमरे को छोड़कर आँगन में जाकर बैठ गए। संग-संग ही भक्तगण भी जाकर उद्यान में बैठ गए।

भवनाथ अश्विनी का परिचय दे रहे हैं। ठाकुर ने मास्टर को अश्विनी को दिखा दिया। दोनों जन बातें कर रहे हैं, नरेन्द्र आँगन में बैठ गए। ठाकुर अश्विनी से कह रहे हैं, "इसका ही नाम नरेन्द्र है।"

सप्तदश खण्ड

श्रीरामकृष्ण
काप्तेन, नरेन्द्रादि भक्तों के संग
दक्षिणेश्वर में

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर के गले के असुख का सूत्रपात)

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में काली-मन्दिर में उसी पूर्वपरिचित कमरे में विश्राम कर रहे हैं। आज शनिवार, 13 जून, 1885। ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा, ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति। समय तीन का। ठाकुर आहार के पश्चात् छोटी खाट पर थोड़ा विश्राम कर रहे हैं।

पण्डित जी फर्श पर चटाई पर बैठे हुए हैं। एक शोकातुरा ब्राह्मणी कमरे के उत्तर के दरवाजे के पास खड़ी हुई है। किशोरी भी हैं। मास्टर ने आकर प्रणाम किया। संग में द्विज इत्यादि हैं। अखिलबाबू के पड़ोसी भी बैठे हैं। उनके संग में एक आसामी लड़का है।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कुछ अस्वस्थ हैं। गले में गुठली होने से सर्दी का भाव है। गले के रोग का यही प्रथम सूत्रपात है।

सख्त गर्मी पड़ने के कारण मास्टर का भी शरीर अस्वस्थ है। ठाकुर के सर्वदा दर्शन करने के लिए दक्षिणेश्वर आ नहीं सकते।

श्रीरामकृष्ण— अरे, यह तो तुम आ गए! सुन्दर वेला है। तुम कैसे हो?

मास्टर— जी, पहले से कुछ अच्छा हूँ।

श्रीरामकृष्ण— बड़ी गर्मी पड़ रही है। थोड़ी-थोड़ी बरफ खाइयो। मुझे भी

भाई सख्त गर्मी पड़ने से कष्ट हो रहा है। गर्मी में कुल्फी, बरफ— ये सब अधिक खाए गए हैं। तभी गले में गुठली हो गई है। बलगम में ऐसी गन्दी गन्ध नहीं देखी।

"माँ से कहा था, माँ! ठीक कर दो। फिर कुल्फी नहीं खाऊँगा।

"उसके पश्चात् फिर और कहा था, बरफ नहीं खाऊँगा।"

(श्रीरामकृष्ण और सत्य वचन— उनकी ज्ञानी और भक्त की अवस्था)

"माँ से जब कह दिया है 'खाऊँगा नहीं' और खाना होगा भी नहीं। किन्तु फिर भी हठात् ऐसी भूल हो जाती है। कहा था, रविवार को माछ नहीं खाऊँगा। अब एक दिन भूल से खा ली थी।

"किन्तु जानबूझ कर नहीं होने वाला। उस दिन गाड़ू लेकर किसी को झाऊतले की ओर जाने को कह दिया था। अब वह बाहर गया था, तभी कोई और ले आया था। मैंने बाह्य करके आकर देखा कि कोई और गाड़ू लेकर खड़ा है। उस गाड़ू का जल मैं ले नहीं सका। क्या करूँ? मिट्टी लिए खड़ा रहा, जब तक कि उसने ही जल लाकर नहीं दिया।

"माँ के पादपद्मों में फूल देकर जब सब त्याग करने लगा था, तब कहने लगा था, 'माँ! यह लो अपनी शुचि, यह लो अपनी अशुचि; यह लो अपना धर्म, यह लो अपना अधर्म; यह लो अपना पाप, यह लो अपना पुण्य; यह लो अपना भला; यह लो अपना मन्दा; मुझे शुद्धा भक्ति दो।' किन्तु 'यह लो अपना सत्य, यह लो अपना मिथ्या— यह बात नहीं कह सका था'।"

कोई भक्त बरफ लाए हैं। ठाकुर पुनः पुनः मास्टर से पूछ रहे हैं,
"क्यों भई, खा लूँ क्या?"

मास्टर विनीत भाव से कहते हैं,
"जी, किन्तु माँ के साथ परामर्श बिना किए ना खाएँ।"

ठाकुर ने फिर बरफ नहीं खाई।

श्रीरामकृष्ण— शुचि, अशुचि— यह तो भक्त के लिए है। ज्ञानी के लिए नहीं। विजय की सास ने कहा, 'कहाँ, मेरा क्या हुआ है? अभी तक भी सब का खा नहीं सकती!' मैंने कहा था, सब का खाने से ही क्या ज्ञान हो जाता है? कुत्ता जो-सो खा लेता है, इसी कारण क्या कुत्ता ज्ञानी है?

(मास्टर के प्रति)— मैं पाँच (कई) व्यंजनों के साथ क्यों खाता हूँ? कहीं पीछे एकघेये (कट्टर) हो जाने पर इन्हें (भक्तों को) न छोड़ना पड़े।

"केशवसेन से कहा था, 'और भी आगे बढ़कर बातें करने से तुम्हारा दल-वल नहीं रहेगा!'

"ज्ञानी की अवस्था में दल-वल है मिथ्या— स्वप्नवत्...।

"माछ छोड़ दी। पहले-पहले कष्ट हुआ करता था, फिर उतना कष्ट नहीं होता था। पक्षी का वासा (घोंसला) यदि कोई जला देता है, तो वह उड़ता-उड़ता फिरता रहता है, आकाश को आश्रय करके। देह, जगत यदि ठीक-ठीक मिथ्या बोध हो जाए तो फिर आत्मा समाधिस्थ हो जाती है।

"पहले वही ज्ञानी की अवस्था थी। लोग अच्छे नहीं लगते थे। हाटखोला में एक ज्ञानी है, या एक भक्त है, यही सुना था। और कुछ दिन पश्चात् सुना कि वह मर गया है! जभी फिर लोग अच्छे नहीं लगते थे। उसके पश्चात् उन्होंने (माँ ने) मन को नीचे उतारा, भक्ति-भक्त पर मन रख दिया।"

मास्टर अवाक्! ठाकुर की अवस्था-परिवर्तन का विषय सुन रहे हैं। ईश्वर मनुष्य होकर क्यों अवतार होते हैं, ठाकुर अब यही बतला रहे हैं।

(अवतार या नर-लीला का गुह्य अर्थ— द्विज और पूर्व संस्कार)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— मनुष्य-लीला क्यों, जानते हो? इसके भीतर उनकी कथा (बातें) सुनाई देती है। इसके भीतर उनका विलास है, इसके भीतर वे रसास्वादन करते हैं।

"और सब भक्तों के भीतर उनका ही थोड़ा-थोड़ा प्रकाश है! जैसे

वस्तु बहुत चूसते–चूसते थोड़ा रस, फूल चूसते–चूसते थोड़ा मधु। *(मास्टर के प्रति)* तुम इसे समझे हो?''

मास्टर— जी हाँ, खूब समझ गया हूँ।

ठाकुर द्विज के साथ बातें करते हैं। द्विज की वयस् 15/16, बाप ने दूसरा विवाह किया है। द्विज प्राय: मास्टर के संग आते हैं। ठाकुर उन्हें स्नेह करते हैं। द्विज कह रहे थे, पिता उनको दक्षिणेश्वर नहीं आने देते।

श्रीरामकृष्ण *(द्विज के प्रति)*— तेरे भाई भी क्या मेरी अवज्ञा करते हैं?

द्विज चुप हैं।

मास्टर— संसार में और दो–चार ठोकरें खा लेने पर जिनमें जो भी एक–आध ज़रा–सी अवज्ञा है, चली जाएगी।

श्रीरामकृष्ण— विमाता है, चोट (blow) तो खा रहे हैं।

सब चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— इसको (द्विज को) पूर्ण के संग मिलवा देना।

मास्टर— जो आज्ञा। *(द्विज के प्रति)* पेनेटी में जाना।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, यही तो सबको कहता हूँ— इसको भेज दियो, उसको भेज दियो। *(मास्टर के प्रति)* तुम नहीं जाओगे?

ठाकुर पेनेटी के महोत्सव में जाएँगे। जभी भक्तों को वहाँ पर जाने को कह रहे हैं।

मास्टर— जी, इच्छा है।

श्रीरामकृष्ण— बड़ी नौका होगी, टलटल नहीं करेगी। गिरीश घोष नहीं जाएगा?

(‘हाँ’, ‘ना’— ‘everlasting yea, everlasting nay’)

ठाकुर द्विज को एक दृष्टि से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, इतने छोकरे हैं, यही फिर क्यों आता है? तुम बताओ, पहले का अवश्य कुछ था!

मास्टर— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— संस्कार। पिछले जन्म में कर्म किया हुआ है। अन्तिम जन्म में सरल होता है, अन्तिम जन्म में पागलपन (अत्यन्त आनन्द से मतवाले) का भाव रहता है।

“किन्तु पता है, क्या है?— उनकी इच्छा। उनकी ‘हाँ’ से जगत का सब हो रहा है; उनकी ‘ना’ से होना बन्द हो जाता है।

“मनुष्य को आशीर्वाद क्यों नहीं करना चाहिए?

“मनुष्य की इच्छा से कुछ नहीं होता, उनकी ही इच्छा से होता है।

“उस दिन काप्तेन के वहाँ गया था। देखा, सड़क पर लड़के जा रहे हैं। वे और प्रकार के थे। एक लड़का देखा, उन्नीस-बीस वर्ष आयु, टेढ़ी माँग, सीटी बजाता जा रहा है। कोई यह बोलता जा रहा है— ‘नगेन्द्र! क्षीरोद!’

“किसी को देखा घोर तमो में— बंसी बजा रहा है— उससे ही थोड़ा अहंकार हो गया है। *(द्विज के प्रति)* जिसको ज्ञान हो गया है, उसे निन्दा का क्या भय? उसकी कूटस्थ बुद्धि— लुहार की निहाई (जिस लोहे पर धातु पीटते हैं), उसके ऊपर कितने हथौड़ों की चोटें पड़ती हैं, किसी से भी कुछ नहीं होता।

“मैंने (अमुक के) बाप को देखा था, सड़क पर जा रहा था।”

मास्टर— व्यक्ति तो बड़ा ही सरल है।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु आँखें लाल हैं।

(काप्तेन का चरित्र और श्रीरामकृष्ण— पुरुष-प्रकृति-योग)

ठाकुर काप्तेन के घर गए थे— उसी की बातें करते हैं। जितने लड़के ठाकुर के पास आते हैं, काप्तेन ने उनकी निन्दा की थी। हाजरा महाशय से शायद उनकी निन्दा सुनी थी।

श्रीरामकृष्ण— काप्तेन के साथ बातें हुई थीं। मैंने कहा, पुरुष और प्रकृति को छोड़ और कुछ नहीं है। नारद ने कहा था, हे राम, जितने पुरुष देखते हो, सब तुम्हारा अंश हैं; और जितनी स्त्रियाँ देखते हो सब सीता का अंश हैं।

"काप्तेन बहुत खुश हुआ। कहने लगा, 'आप को ही ठीक (यथार्थ) बोध हुआ है, सब पुरुष राम के अंश से राम हैं, सब स्त्रियाँ सीता के अंश से सीता हैं।'

"यह बात अभी-अभी कही और फिर झट बाद ही लड़कों की निन्दा आरम्भ कर दी। कहा, 'वे अंग्रेज़ी पढ़ते हैं— जो-सो खाते हैं, वे तुम्हारे पास सर्वदा आते हैं— यह अच्छा नहीं। उससे तुम्हारी हानि हो सकती है। हाजरा तो एक विशेष व्यक्ति है, अच्छा आदमी है। उन लड़कों को इतना न आने दें।' पहले तो कहा, आते हैं तो क्या करूँ?

"फिर मैंने उसको खूब रौंदा (सुनाया)। उसकी लड़की हँसने लगी। कहा, जिस व्यक्ति की विषयबुद्धि है, वह व्यक्ति ईश्वर से बहुत दूर है। विषयबुद्धि यदि न रहे, तो उस व्यक्ति के हाथ के भीतर वे (ईश्वर) होते हैं— अति निकट। काप्तेन ने राखाल की बात पर कहा कि वह सब के घर खा लेता है। लगता है हाजरा से सुना है। तब कहा, व्यक्ति हजार तप-जप करे, यदि विषयबुद्धि रहती है तो फिर कुछ भी नहीं होगा। और शूकर (सूअर) का माँस खाकर भी यदि ईश्वर में मन रहे तो वह व्यक्ति धन्य है। उसे धीरे-धीरे ईश्वर-लाभ होगा ही। हाजरा इतना जप-तप करता है किन्तु उसमें भी दलाली करे, इसी चेष्टा में रहता है।

"तब काप्तेन बोला— हाँ, तब वह बात तो ठीक है। उसके बाद मैंने कहा, अभी तो तुमने कहा है कि सब पुरुष राम के अंश से राम हैं, सब स्त्रियाँ सीता के अंश से सीता हैं, और फिर अभी ऐसी बात कहते हो!

"काप्तेन बोला— यह तो है, किन्तु तुम सब को तो प्यार नहीं करते!

"मैंने कहा, 'आपो नारायण:' सब ही जल है, किन्तु कोई तो जल पिया जाता है, किसी से नहाया जाता है, किसी जल से शौच किया जाता है। यही जो तुम्हारी स्त्री और लड़की बैठी हुई हैं, मैं देख रहा हूँ साक्षात् आनन्दमयी! काप्तेन तब कहने लगा, 'हाँ, हाँ, वह ठीक है! तब फिर-फिर मेरे पाँव पकड़ने लगा।"

यह कहकर ठाकुर हँसने लगे। अब ठाकुर, काप्तेन में कितने गुण हैं, यह बता रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— काप्तेन में अनेक गुण हैं। रोज नित्यकर्म— स्वयं देव-पूजा, स्नान के मन्त्र, कितना कुछ! काप्तेन एक बड़ा कर्मी है, पूजा, जप, आरती, स्तव— ये सब नित्यकर्म करता है।

(काप्तेन और पाण्डित्य— काप्तेन और ठाकुर की अवस्था)

"मैं काप्तेन को डाँटने लगा; कहा, तुम पढ़कर ही सब खराब कर रहे हो। और मत पढ़ो!

"मेरी अवस्था पर काप्तेन बोला, उड्डीयमान भाव। जीवात्मा और परमात्मा; जीवात्मा जैसे एक पक्षी है, और परमात्मा जैसे आकाश— चिदाकाश! काप्तेन ने कहा, 'तुम्हारा जीवात्मा चिदाकाश में उड़ जाता है— तभी समाधि।' *(सहास्य)* काप्तेन ने बंगालियों की निन्दा की। कहा, बंगाली लोग निर्बोध हैं! निकट ही माणिक रहता है, पहचान नहीं!"

(गृहस्थ भक्त और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— कर्म कितने दिन)

"काप्तेन का बाप खूब बड़ा भक्त था। अंग्रेज़ों की फौज में सूबेदार का काम किया करता था। युद्धक्षेत्र में पूजा के समय पूजा करता— एक हाथ में शिव-पूजा, एक हाथ में तलवार-बन्दूक!

(मास्टर के प्रति)— "किन्तु फिर भी जानते हो क्या है? रात-दिन विषय-

कर्म!— जब भी जाता, देखता— स्त्री, बाल-बच्चों में घिरा रहता है! और फिर लोगों के हिसाब का खाता (कापी) भी बीच-बीच में लाता है, कभी एक-एक बार ईश्वर में भी मन जाता है। जैसे प्रलाप (विकार) का रोगी; प्रलाप (विकार) का रोग लगा ही रहता है, कभी-कभी बेहोशी (चट्का) टूटती है! तब 'पानी पिऊँगा-पानी पिऊँगा' कह कर चिल्ला उठता है; और फिर जल देते ही बेहोश हो जाता है— कुछ भी होश नहीं रहती। मैंने इसीलिए तो उससे कहा, तुम कर्मी हो। काप्तेन बोला, 'जी, मुझे पूजा आदि करने में आनन्द होता है— जीव का कर्म के अतिरिक्त और उपाय नहीं है'।

"मैंने कहा था, किन्तु कर्म क्या सर्वदा करना होगा? मधुमक्खी भन्-भन् कब तक करती है— जब तक फूल पर नहीं बैठती। मधु-पान के समय भनभनानी चली जाती है। काप्तेन ने कहा, 'आपकी भाँति हम क्या पूजा और कर्म त्याग सकते हैं?' किन्तु उसकी बातों का निश्चय नहीं है। कभी कहता है, 'ये सब झूठ है', कभी कहता है, 'यह सब चैतन्य।' मैं कहता हूँ, जड़ फिर क्या है? सब ही चैतन्य!"

(पूर्ण और मास्टर— जबरदस्ती करके विवाह और श्रीरामकृष्ण)

पूर्ण की बात ठाकुर मास्टर से पूछते हैं।

श्रीरामकृष्ण— पूर्ण को एक बार और देख लेने पर मेरी व्याकुलता कुछ कम हो जाएगी! कैसा चतुर है! मेरे ऊपर बहुत आकर्षण है। वह कहता है— मेरी छाती भी कैसे-कैसे करती है आपको देखने के लिए।

(मास्टर के प्रति)— तुम्हारे स्कूल से उसको हटा लिया है, उससे तुम्हारी क्या कुछ क्षति होगी?

मास्टर— यदि वे (विद्यासागर) कहें कि तुम्हारे कारण ही उसको स्कूल से उठा लिया है, तो फिर मेरे पास जवाब देने का पथ है।

श्रीरामकृष्ण— क्या कहोगे?

मास्टर— बस, यही कहूँगा, साधु-संग से ईश्वर-चिन्तन होता है, वह तो फिर बुरा काम नहीं है। और आप लोगों ने जो पुस्तक पढ़ाने के लिए दी हुई है,

उसमें ही है— ईश्वर को प्राणों के साथ प्यार करोगे।

ठाकुर हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण— काप्तेन के घर में छोटे नरेन को बुला लिया था। कहा, तेरा घर कहाँ है? चल चलें— वह बोला, 'आइए'। किन्तु भय के साथ चलने लगा— पीछे बाप को पता लगा तो! *(सब का हास्य)*।

(अखिलबाबू के पड़ोसी से)— "हाँ जी, तुम बहुत दिनों से नहीं आए? सात-आठ मास हो गए होंगे!"

पड़ोसी— जी, एक वर्ष हो गया होगा।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारे साथ और भी एक बाबू आया करते थे।

पड़ोसी— जी हाँ, नीलमणिबाबू।

श्रीरामकृष्ण— वे क्यों नहीं आते?— एक बार उन्हें आने के लिए कहो, उनके साथ मिलवा दिओ! *(पड़ोसी के संगी बालक को देखकर)* यह लड़का कौन है?

पड़ोसी— इस लड़के का घर आसाम में है।

श्रीरामकृष्ण— आसाम कहाँ है? किस ओर?

द्विज आशु की बात कह रहे हैं। आशु के बाप उसका विवाह करेंगे। आशु की इच्छा नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— देखो, देखो, उसकी इच्छा नहीं है। जबरदस्ती विवाह कर रहा है।

ठाकुर एक भक्त को ज्येष्ठ भाई की भक्ति करने को कहते हैं— "ज्येष्ठ भाई, पिता सम, खूब मानोगे।"

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और श्रीराधिका-तत्त्व— जन्म-मृत्यु-तत्त्व)

पण्डित जी बैठे हैं, उत्तर-पश्चिम प्रदेश के व्यक्ति हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, मास्टर के प्रति)*— भागवत के बड़े पण्डित हैं।

मास्टर और भक्तगण पण्डित जी को एक दृष्टि से देखते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(पण्डित के प्रति)*— अच्छा जी! योगमाया क्या है?

पण्डित जी ने योगमाया की एक प्रकार से व्याख्या की।

श्रीरामकृष्ण— राधिका को क्यों योगमाया नहीं कहते?

पण्डित जी ने इस प्रश्न का उत्तर एक प्रकार से दिया। तब ठाकुर स्वयं ही कहते हैं, राधिका विशुद्ध सत्त्व प्रेममयी! योगमाया के भीतर तीनों गुण ही हैं— सत्त्व, रज, तम। श्रीमती के भीतर विशुद्ध सत्त्व के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। *(मास्टर के प्रति)* नरेन्द्र अब श्रीमती को खूब मानता है, वह कहता है, सच्चिदानन्द को यदि प्यार करना सीखना हो तो श्रीमती के पास से सीखा जाए।

"सच्चिदानन्द ने स्वयं रसास्वादन करने के लिए राधिका की सृष्टि की है। सच्चिदानन्द कृष्ण के अंग से राधा निकली हैं। सच्चिदानन्द कृष्ण ही 'आधार' और निज ही श्रीमती रूप में 'आधेय' हैं— अपना रस आस्वादन करने के लिए— अर्थात् सच्चिदानन्द को प्यार करके आनन्द-सम्भोग करने के लिए।

"वही वैष्णवों के ग्रन्थ में है, राधा ने जन्म ग्रहण करके आँखें नहीं खोलीं अर्थात् यह भाव कि इन आँखों से और किसको देखेगी! राधिका को देखने यशोदा जब कृष्ण को गोद में लेकर गई, तब कृष्ण को देखने के लिए राधा ने आँखें खोलीं। कृष्ण ने खेल के बहाने राधा की आँखों पर हाथ लगाया था। *(आसामी बालक के प्रति)* क्या तुमने देखा है, छोटा बच्चा आँखों पर हाथ लगाता है?"

(संसारी व्यक्ति और शुद्धात्मा लड़कों का प्रभेद)

पण्डित जी ठाकुर से विदा लेते हैं।

पण्डित जी— मैं घर जा रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(सस्नेह)*— कुछ हाथ में हुआ?

पण्डित जी— बाजार बड़ा मंदा है। रोजगार नहीं है।

पण्डित जी ने कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर को प्रणाम करके विदा ली।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— देखो, विषयी लोगों और इन छोकरों में कितना अन्तर है! यह पण्डित रात-दिन रुपया-रुपया करता है! कलकत्ता आया है, पेट के लिए। वह न हो तो घर वालों के पेट का नहीं चलता। इसीलिए इस-उसके द्वार पर जाना पड़ता है। मन एकाग्र करके ईश्वर-चिन्तन कब करेगा! किन्तु लड़कों के भीतर कामिनी-काञ्चन नहीं है। इच्छा करने से ही ईश्वर में मन दे सकते हैं।

"छोकरे विषयी के संग प्यार नहीं करेंगे। राखाल कभी-कभी कहता था, विषयी व्यक्ति को आते देखकर भय लगता है।

"मेरी जब प्रथम ऐसी अवस्था हुई थी, तब विषयी व्यक्ति को आते देखकर कमरे का दरवाजा बन्द कर लेता था।"

(पुत्र-कन्या-वियोग के लिए शोक और श्रीरामकृष्ण— पूर्वकथा)

"देश में श्री राममल्लिक को इतना प्यार किया करता था, किन्तु यहाँ पर जब वह आया तो छू तक भी नहीं सका।

श्री राम (मल्लिक) के साथ बचपन में खूब प्रीति थी। रात-दिन एक साथ रहता था। एक साथ सोता था। तब सोलह-सत्रह वर्ष की आयु थी। लोग कहते, इनमें से एक लड़की होता तो दोनों का विवाह हो जाता। उनके घर में दोनों जन खेला करते थे, तब की सब बातें याद आ रही हैं। उनके रिश्तेदार पालकी में चढ़कर आते, कहार लोग (उठाने वाले) 'हिंजोड़ा-हिंजोड़ा' कहते रहते थे।

"श्री राम को देखने के लिए कितनी बार आदमी भेजे हैं, अब चानके में दुकान की है। उस दिन आया था, दो दिन यहाँ पर था।

"श्री राम ने कहा, लड़का-बच्चा नहीं हुआ। भतीजे को पाला था, वह भी मर गया। कहते-कहते श्री राम ने दीर्घ निश्वास छोड़ी, आँखों में जल आ गया, भतीजे के लिए खूब शोक हुआ है।

"और फिर बताया कि बच्चा नहीं होने के कारण स्त्री का सारा स्नेह उसी भतीजे के ऊपर पड़ा था; अब वह शोक में अधीर हो गई है। मैं उससे कहता हूँ, 'पगली! शोक करने से फिर क्या होगा? तू काशी जाएगी'?

" 'पगली' (क्षेपी) कहते ही वह एकदम डाइल्यूट (dilute) हो गया (गल गया)! उसको छू नहीं सका। देख लिया उसमें और कुछ नहीं है।"

ठाकुर शोक-सम्बन्ध में ये सब बातें बता रहे हैं। इधर कमरे के उत्तर के दरवाजे के निकट वे ही शोकातुरा ब्राह्मणी खड़ी हुई हैं। ब्राह्मणी विधवा है। उसकी एकमात्र कन्या का बहुत बड़े घर में विवाह हुआ था। लड़की का पति राधा उपाधिकारी, कलकत्ता निवासी, जमींदार था। लड़की जब बाप के घर आती थी, तब संग में सिपाही-संतरी आते, माँ की छाती जैसे दस हाथ हो आती। वही एकमात्र कन्या कई दिन हुए इस लोक को त्याग कर चली गई है।

ब्राह्मणी ने खड़े होकर भतीजे के लिए वियोग-जन्य श्री राममल्लिक के शोक की बात सुनी। वे कई दिन से बागबाजार से पागलवत् दौड़ी-दौड़ी ठाकुर श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने आ रही हैं, यदि कोई उपाय हो जाए; यदि वे इस दुर्जय शोक निवारण की कोई व्यवस्था कर सकें! ठाकुर फिर और बातें करते हैं—

श्रीरामकृष्ण *(ब्राह्मणी और भक्तों के प्रति)*— एक व्यक्ति आया था। ज़रा-सी देर बैठकर कहने लगा, 'जाऊँ, एक बार बेटे का चाँद मुखड़ा देखूँ'।

"मैं और रह नहीं सका। बोला, अरे साले! तब क्यों नहीं उठ जाता यहाँ से?— ईश्वर के चाँद मुख की अपेक्षा बेटे का चाँदमुख!"

(जन्म-मृत्यु-तत्त्व— जादूगर का जादू)

(मास्टर के प्रति)— "बात क्या है, जानते हो? ईश्वर ही सत्य है और सब अनित्य! जीव, जगत, मकान, घर-द्वार, बाल-बच्चे— ये सब जादूगर का जादू है! जादूगर लकड़ी से ढोल बजाता है और कहता है, देख जादू मेरा, यह देख जादू! ढक्कन खोलते ही, कितने ही पक्षी आकाश में उड़ गए! किन्तु बाजीगर ही सत्य है और सब अनित्य! अभी हैं, अभी नहीं!

"कैलाश में शिव बैठे हैं, नन्दी निकट हैं। तब एक बड़े जोर का शब्द हुआ। नन्दी ने पूछा, महाराज! यह किसका शब्द हुआ? शिव ने बताया, 'रावण ने जन्म ग्रहण किया है, जभी यह शब्द हुआ है।' थोड़ी देर बार फिर और एक भयानक शब्द हुआ! नन्दी ने पूछा, 'अब किसका शब्द है?' शिव ने हँसकर कहा, 'अब रावण-वध हो गया!' जन्म-मृत्यु— यह समस्त जादू के जैसा है! अभी है, अभी नहीं! ईश्वर सत्य और सब अनित्य। जल ही सत्य है, जल के बुलबुले— अभी हैं, अभी नहीं; बुलबुले जल में मिल जाते हैं— जिस जल में से उत्पत्ति, उसी जल में लय।

"ईश्वर जैसे महासमुद्र हैं, जीवगण जैसे बुलबुले; उनमें ही जन्म, उनमें ही लय।

"लड़के, लड़की— जैसे एक बड़े बुलबुले के संग 5-6 छोटे बुलबुले।

"ईश्वर ही सत्य हैं। उनके ऊपर किस प्रकार भक्ति हो, उनको किस प्रकार से प्राप्त किया जाए— अब यही चेष्टा करना। शोक करने से क्या होगा?"

सब चुप हैं। ब्राह्मणी बोली, 'तो फिर मैं जाती हूँ।'

श्रीरामकृष्ण *(ब्राह्मणी के प्रति सस्नेह)*— तुम अब जाओगी? बड़ी धूप है! क्यों, इनके संग में गाड़ी में चली जाना।

आज ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति, समय प्राय: तीन-चार का। बड़ी गर्मी है। एक भक्त ने ठाकुर को एक नया चन्दन का पंखा लाकर दिया। ठाकुर पंखा लेकर आनन्दित हुए और बोले, "वाह! वाह! ॐ तत् सत्! काली!"

यह कहकर प्रथम ही देवताओं को हवा कर रहे हैं। उसके पश्चात् मास्टर से कह रहे हैं, "देखो, देखो, कैसी हवा!" मास्टर भी आनन्दित होकर देख रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(पक्का-मैं या दास-मैं)

काप्तेन लड़कों को साथ लेकर आए हैं।

ठाकुर ने किशोरी से कहा, "इन्हें सब दिखा लाओ तो— ठाकुर-मन्दिर!"

ठाकुर काप्तेन के साथ बातें करते हैं।

मास्टर, द्विज इत्यादि भक्तगण फर्श पर बैठे हैं। दमदमा के मास्टर भी आए हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण छोटी खाट पर उत्तरास्य बैठे हुए हैं,उन्होंने काप्तेन को छोटी खाट के एक ओर अपने सम्मुख बैठने के लिए कहा।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारी बात इन्हें बताई थी— कितनी भक्ति, कितनी पूजा, कितनी प्रकार की आरती!

काप्तेन *(सलज्ज भावे)*— मैं क्या पूजा, आरती करूँगा! मैं क्या हूँ!

श्रीरामकृष्ण— जो 'मैं' कामिनी-काञ्चन में आसक्त है, उसी 'मैं' में ही दोष है। मैं ईश्वर का दास, इस 'मैं' में दोष नहीं। और बालक का मैं— बालक किसी भी गुण के वश नहीं। अभी झगड़ा कर रहा है और फिर प्रीति! अभी घरौंदा बनाया कितने यत्न से, और फिर झट से तोड़ डाला! दास-मैं— बालक का मैं, इसमें कोई भी दोष नहीं। यह 'मैं' मैं के मध्य नहीं है, जैसे मिश्री मिठाइयों के मध्य में नहीं है। और मिठाई से असुख होता है, किन्तु मिश्री से वरन् अम्लनाश होता है। और जैसे 'ऊँकार' शब्दों के मध्य में नहीं है।

"इसी अहं के द्वारा सच्चिदानन्द को प्यार किया जाता है। अहं तो जाएगा नहीं— जभी 'दास-मैं', 'भक्त-मैं'। वैसा न हो तो मनुष्य क्या लेकर रहे? गोपियों का कैसा प्यार! *(काप्तेन के प्रति)* तुम गोपियों की कुछ बातें

बताओ। तुम इतना भागवत पढ़ते हो!''

काप्तेन— जब श्रीकृष्ण वृन्दावन में थे, कोई भी ऐश्वर्य नहीं था, तब भी गोपियों ने उनको प्राणों से अधिक प्यार किया था। जभी कृष्ण ने कहा था, मैं उनका ऋण कैसे शोध करूँगा? जिन गोपियों ने मेरे प्रति सब समर्पण किया हुआ है— देह, मन, चित्त।

श्रीरामकृष्ण भाव में विभोर हो रहे हैं। 'गोविन्द! गोविन्द! गोविन्द!'! यह शब्द बोलते-बोलते भावाविष्ट हो रहे हैं! और प्राय: बाह्यशून्य। काप्तेन सविस्मय कह रहे हैं, ''धन्य! धन्य!''

काप्तेन और समवेत सब भक्तगण ठाकुर की ऐसी अद्‌भुत प्रेमावस्था देख रहे हैं। जब तक वे प्रकृतिस्थ हुए, तब तक वे लोग चुपचाप एकटक देखते रहे।

श्रीरामकृष्ण— उसके उपरान्त?

काप्तेन— वे योगियों के अगम्य— 'योगिभिरगम्यम्'— आपकी न्यायीं योगियों के अगम्य, किन्तु गोपियों के गम्य! योगियों ने कितने ही वर्षों तक योग करके जिनको नहीं पाया, किन्तु गोपियों ने अनायास में उनको पा लिया।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— गोपियों के पास खाना, खेलना, रोना, प्यार से जिद्द करना— यह समस्त हुआ है।

(श्रीयुक्त बंकिम और श्रीकृष्ण-चरित्र— अवतारवाद)

कोई भक्त कहते हैं, श्रीयुक्त बंकिम ने 'कृष्ण-चरित्र' लिखा है।

श्रीरामकृष्ण— बंकिम श्रीकृष्ण को मानते हैं, श्रीमती को नहीं मानते।

काप्तेन— लगता है लीला नहीं मानते।

श्रीरामकृष्ण— और फिर कहता है कि काम आदि— ये सब आवश्यक हैं।

दमदम मास्टर— नवजीवन में बंकिम ने लिखा है— धर्म का यही प्रयोजन है कि इसमें शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि समस्त वृत्तियों की स्फूर्ति होती है।

काप्तेन— 'काम आदि प्रयोजनीय है', किन्तु लीला नहीं मानते। ईश्वर मनुष्य होकर वृन्दावन में आए थे, राधाकृष्ण-लीला— यह क्यों नहीं मानते?

(पूर्णब्रह्म का अवतार— केवल पाण्डित्य और प्रत्यक्ष का प्रभेद Mere Booklearning and Realisation)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ये सब बातें अखबार में तो नहीं हैं, कैसे फिर माना जाए!

"किसी ने अपने बन्धु से कहा, 'अरे भाई! कल उस मुहल्ले से जा रहा था, उस समय देखा, वह घर हुड़मुड़ करके गिर पड़ा।' बन्धु बोला, अरे ज़रा ठहरो भाई, एक बार अखबार देख लूँ। घर के हुड़मुड़ करके गिरने की बात अखबार में कुछ भी नहीं थी। तब वह बोला, 'कहाँ, अखबार में तो कुछ भी नहीं है!— वह सब काम की बात नहीं है।' उस व्यक्ति ने कहा, मैं जो देखकर आया हूँ। वह बोला, 'वैसा हो तो सकता है चाहे, किन्तु जब अखबार में नहीं है, तो फिर उस बात का विश्वास कैसे करूँ?' ईश्वर मनुष्य होकर लीला करते हैं— इस बात का कैसे विश्वास करूँ? यह बात उनकी अंग्रेज़ी पढ़ाई-लिखाई के भीतर है जो नहीं! पूर्ण अवतार को समझना बड़ा कठिन है, क्या कहते हो? 'चौदह पाव' (साढ़े तीन हाथ) के भीतर अनन्त का आना!"

काप्तेन— 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहते समय पूर्ण और अंश कहना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण— पूर्ण और अंश— जैसे अग्नि और उसका स्फुलिंग। अवतार भक्त के लिए है— ज्ञानी के लिए नहीं। अध्यात्म रामायण में है— हे राम! तुम्हीं व्याप्य हो, तुम्हीं व्यापक, 'वाच्यवाचकभेदेन त्वमेव परमेश्वर।'

काप्तेन— 'वाच्यवाचक' अर्थात् व्याप्य-व्यापक।

श्रीरामकृष्ण— 'व्यापक' अर्थात् जैसे छोटा-सा एक रूप, जैसे अवतार मनुष्य-रूप बने हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

(अहंकार ही विनाश का कारण और ईश्वर-लाभ में विघ्न)

सब बैठे हैं। काप्तेन और भक्तों के साथ ठाकुर बातें कर रहे हैं। इस समय ब्राह्मसमाज के जयगोपाल सेन और त्रैलोक्य ने आकर प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। ठाकुर सहास्य त्रैलोक्य की ओर देखते हुए (ताकते हुए) बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— अहंकार है, इसी कारण ईश्वर-दर्शन नहीं होता। ईश्वर के घर के दरवाजे के सामने यही अहंकार रूप वृक्ष का तना (गुंड़ि) पड़ा हुआ है। इसी गुंड़ि का उल्लंघन बिना किए उनके घर में प्रवेश नहीं किया जाता।

''कोई भूत-सिद्ध हो गया था। सिद्ध हो जाने पर ज्योंहि पुकारा त्योंहि भूत आ गया। आकर बोला, 'क्या काम करना है, बताओ। यदि काम नहीं दे सकोगे तो तुरन्त तुम्हारी गर्दन तोड़ दूँगा।' उस व्यक्ति को जितना काम आवश्यक था, उसने सब धीरे-धीरे करवा लिया। तब फिर और काम नहीं मिला। उस भूत ने कहा, 'अब तुम्हारी गर्दन तोड़ूँ?' वह बोला, 'तनिक ठहरो, मैं अभी आता हूँ।' यह कहकर गुरुदेव के पास गया, बोला, 'महाशय! बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। यह बात है, अब क्या करूँ?' गुरु ने तब कहा, तू एक काम कर, उसको यह एक बाल सीधा करने के लिए कह। भूत दिन-रात वही करने लगा। बाल क्या कभी सीधा होता है? जैसा टेढ़ा था, वैसा ही रहा! अहंकार भी अभी गया और फिर आ गया।

''अहंकार का त्याग न किया जाए तो ईश्वर की कृपा नहीं होती।

''उत्सव के घर में यदि किसी को भण्डारी बनाया जाता है तो जब तक वह भण्डार में रहता है तब तक मालिक नहीं आता। जब वह स्वयं अपनी इच्छा से भण्डार छोड़कर चला जाता है, तब ही मालिक कमरे में ताला लगाकर अपने-आप स्वयं भण्डार का बन्दोबस्त करता है।

''नाबालिग का ही वली (प्रबन्ध करने वाला) होता है। बालक अपने-आप अपनी सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सकता, राजा भार लेते हैं।

अहंकार त्याग न किया जाए तो ईश्वर भार नहीं लेते।

"वैकुण्ठ में लक्ष्मीनारायण बैठे हैं, हठात् नारायण उठकर खड़े हो गए। लक्ष्मी पदसेवा कर रही थीं; बोलीं, 'ठाकुर, कहाँ जा रहे हैं?' नारायण बोले, 'मेरा एक भक्त बड़ी विपद में पड़ा है, तभी उसकी रक्षा करने जा रहा हूँ!' यह कहकर नारायण बाहर निकल पड़े। किन्तु तत्क्षण फिर लौट आए। लक्ष्मी बोली, भगवन्! इतनी शीघ्र लौट आए? नारायण ने हँसकर कहा, 'वह भक्त प्रेम में विह्वल होकर सड़क पर चल रहा था, धोबी कपड़े सुखा रहे थे, भक्त उन्हें पैरों तले रौंदता हुआ जा रहा था, यह देखकर धोबी लाठी लेकर उसे मारने आया था। तभी मैं उसकी रक्षा करने गया था।' लक्ष्मी ने फिर कहा, 'फिर वापिस क्यों आ गए?' नारायण हँसते-हँसते बोले, 'वह भक्त स्वयं ही धोबियों को मारने के लिए ईंट उठा रहा है, मैंने देख लिया। *(सब का हास्य)*। तभी फिर मैं नहीं गया।"

(पूर्वकथा— केशव और गौरी— सोऽहं अवस्था के पश्चात् दास-भाव)

"केशवसेन से कहा था, 'अहं का त्याग करना होगा'। उस पर केशव बोला— तब फिर तो महाशय, दल कैसे रहेगा?

"मैंने कहा, 'तुम्हारी यह कैसी बुद्धि!— तुम कच्चा 'मैं' त्याग करो— जो मैं कामिनी-काञ्चन में आसक्त करता है। किन्तु पक्का मैं, दास-मैं, भक्त का मैं— त्याग करने के लिए नहीं कहता। मैं ईश्वर का दास, मैं ईश्वर की सन्तान— इसका नाम है पक्का मैं। इसमें कोई दोष नहीं।"

त्रैलोक्य— अहंकार जाना बड़ा ही कठिन है। मनुष्य सोचता है, समझ गया हूँ।

श्रीरामकृष्ण— पीछे फिर कहीं अहंकार न हो जाए, गौरी 'मैं' नहीं कहता था— कहता 'ये'। मैं भी देखा-देखी कहता 'ये' (इनि); 'मैंने खाया है', न कहकर कहता, 'इन्होंने खा लिया है'। सेजोबाबू (मथुरबाबू) वह देखकर एक दिन बोले— यह क्या बाबा, तुम ऐसे क्यों कहते हो? वे लोग वैसे कहें,

उनका अहंकार है। तुम्हारा तो नहीं है। तुम्हें वैसे बोलने का प्रयोजन नहीं।

"केशव से कहा था, 'यह तो फिर जाएगा नहीं, अतएव वह दास-भाव में रहे— जैसे दास।' प्रह्लाद दोनों भावों में रहते थे, कभी-कभी बोध करते 'तुम ही मैं, मैं ही तुम'— 'सोऽहम्'। और फिर जब अहंबुद्धि आती, तब देखते— मैं दास, तुम प्रभु! एक बार 'सोऽहम्' हो जाने पर फिर तब दास-भाव में रहना— जैसे 'मैं' दास।"

(ब्रह्मज्ञान के लक्षण— भक्त का मैं— कर्मत्याग)

(काप्तेन के प्रति)— ब्रह्मज्ञान हो गया है, कुछ लक्षणों से समझ में आ जाता है। श्रीमद्‌भागवत में ज्ञानी की चार अवस्थाओं की बात है— (1) बालकवत्, (2) जड़वत्, (3) उन्मादवत् और (4) पिशाचवत्। पाँच वर्ष के बालक की अवस्था हो जाती है। और फिर कभी-कभी पागल की न्यायीं व्यवहार करता है।

"कभी जड़ की न्यायीं रहता है। इस अवस्था में कर्म नहीं कर सकता, कर्मत्याग हो जाता है। फिर भी यदि कहो कि जनक आदि ने कर्मत्याग किया था, वह बात यह है कि उस समय के लोग कर्मचारियों के ऊपर भार देकर निश्चिन्त हो जाते थे। और तब के लोग भी बड़े विश्वासी थे।"

श्रीरामकृष्ण कर्मत्याग की बात कर रहे हैं, और फिर जिन्हें कर्म में आसक्ति है, उनको अनासक्त होकर कर्म करने के लिए कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— ज्ञान हो जाने पर अधिक कर्म नहीं कर सकता।

त्रैलोक्य— क्यों? पवहारी बाबा ऐसे योगी हैं किन्तु लोगों का झगड़ा-विवाद मिटा देते हैं— यहाँ तक कि मुकदमे का फैसला कर देते हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, हाँ, वैसा होता है। दुर्गाचरण डॉक्टर इतना शराबी, चौबीस घण्टे मद खाता रहता, किन्तु काम के समय ठीक रहता, चिकित्सा करने के समय किसी प्रकार की भूल नहीं होती। भक्ति-लाभ करके कर्म करने में दोष नहीं है। किन्तु बड़ा कठिन है, खूब तपस्या चाहिए।

''ईश्वर ही समस्त कर रहे हैं, हम लोग यन्त्र स्वरूप हैं! काली-मन्दिर के सामने सिखों ने कहा था, 'ईश्वर दयामय' हैं। मैंने कहा, दया किन के ऊपर? सिखों ने कहा, 'क्यों महाराज? हम सब पर'! मैंने कहा, हम सब उनके बच्चे हैं, और बच्चों के ऊपर फिर दया कैसी? वे बच्चों को देख रहे हैं। यदि वे नहीं देखेंगे तो क्या बामुनपाड़े के लोग आकर देखेंगे? अच्छा, जो 'दयामय' कहते हैं, वे लोग यह नहीं सोचते कि हम क्या पराये बच्चे हैं?''

काप्तेन— जी हाँ! कारण, ईश्वर अपने हैं— यह बोध नहीं रहता।

(भक्त और पूजादि— ईश्वर भक्तवत्सल— पूर्णज्ञानी)

श्रीरामकृष्ण— तो क्या फिर दयामय नहीं कहेगा? जब तक साधना की अवस्था है तब तक कहेगा। उन्हें पा लेने पर तब फिर ठीक (बिलकुल) 'अपने बाप' या 'अपनी माँ' ही बोध हो जाता है। जब तक ईश्वर-लाभ नहीं होता तब तक बोध रहता है— हम सब दूर के व्यक्ति हैं, अन्य के बेटे।

''साधना-अवस्था में उनको सब ही कहना चाहिए। हाजरा ने एक दिन नरेन्द्र से कहा था, 'ईश्वर अनन्त, उनका ऐश्वर्य अनन्त। वे क्या फिर सन्देश, केला खाएँगे? या गाना सुनेंगे? यह समस्त मन की भूल है'।

''नरेन्द्र तुरन्त दस हाथ नीचे उतर गया। तब मैंने हाजरा से कहा, तुम कैसे पाजी हो! उनसे ऐसी बातें कहने पर वे कहाँ खड़े होंगे? भक्ति चली जाए तो मनुष्य क्या लेकर रहे? उनका अनन्त ऐश्वर्य है, तो भी वे हैं भक्ताधीन! बड़े आदमी का दरबान आकर बाबू की सभा में एक ओर खड़ा है। हाथ में कुछ वस्तु है, कपड़े से ढकी हुई! अति संकोच भाव में है। बाबू ने पूछा, क्या बात है दरबान, हाथ में क्या है? दरबान ने अति संकोच से एक शरीफा निकालकर बाबू के सम्मुख रखा— इच्छा है, बाबू इसे खाएँ। बाबू ने दरबान का भक्ति-भाव देखकर शरीफे को बड़े आदर से लिया और कहा, 'आहा! बढ़िया शरीफा है। तुम इसे कहाँ से कष्ट करके लाए?'

''वे हैं भक्ताधीन! दुर्योधन ने बहुत प्यार-आदर दिखाया और कहा, यहाँ पर खाएँ— रहें। ठाकुर (श्रीकृष्ण) किन्तु विदुर की कुटीर में गए। वे

हैं भक्तवत्सल, विदुर का शाक-पात सुधा की न्यायीं खाया!

"पूर्णज्ञानी का एक लक्षण और है— पिशाचवत्! खाने-पीने का विचार नहीं— शुचि-अशुचि का विचार नहीं! पूर्णज्ञानी और पूर्ण मूर्ख, दोनों के ही बाहर के लक्षण एक प्रकार के होते हैं। पूर्णज्ञानी ने शायद गंगास्नान, मन्त्र-पाठ नहीं किया, ठाकुर-पूजा करते समय फूल आदि शायद एक संग सारे के सारे भगवान के चरणों में देकर चला आया— कोई भी तन्त्र-मन्त्र नहीं।"

(कर्मी और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— कर्म कब तक ?)

"जितने दिन संसार में भोग करने की इच्छा रहती है, उतने दिन कर्मत्याग नहीं कर सकता। जब तक भोग की आशा, तब तक कर्म।

"एक पक्षी जहाज के मस्तूल पर अन्यमनस्क हुआ बैठा था। जहाज गंगा के भीतर था, धीरे-धीरे महासमुद्र में आ गया। तब पक्षी को होश आया, उसने चारों ओर देखा— कूल-किनारा नहीं। तब किनारे पर जाने के लिए उत्तर की ओर उड़ गया। बहुत दूर जाकर शान्त हो गया, किन्तु कूल-किनारा नहीं दिखाई दिया। तब फिर क्या करता, लौटकर आकर फिर मस्तूल पर बैठ गया।

"थोड़ी देर पश्चात् वह पक्षी फिर दोबारा उड़ गया। अब की बार पूर्व दिशा में गया। उस ओर भी कुछ नहीं देख पाया, चारों दिशाओं में केवल अकूल पाथार (विशाल जलराशि)! तब बड़ा ही परिश्रान्त होकर फिर दोबारा लौटकर जहाज के मस्तूल के ऊपर बैठ गया। अनेक क्षण विश्राम करके एक बार दक्षिण की ओर गया, इसी प्रकार फिर पश्चिम की ओर गया। जब देख लिया कहीं भी कूल-किनारा नहीं है, तब उसी मस्तूल के ऊपर बैठ गया और फिर उठा नहीं। निश्चेष्ट होकर बैठा रहा। तब मन में और कोई भी व्यस्त भाव (चञ्चलता, जल्दबाजी, उतावलापन) और अशान्ति नहीं। निश्चिन्त हो गया और कोई चेष्टा भी नहीं रही।"

काप्तेन— आहा, क्या दृष्टान्त है!

(भोगान्त होने पर व्याकुलता और ईश्वर-लाभ)

श्रीरामकृष्ण— संसारी लोग जब सुख के लिए चारों ओर घूमते-घूमते फिर अन्त में परिश्रान्त हो जाते हैं— जब कामिनी-काञ्चन में आसक्त होकर केवल दुःख पाते हैं, तब वैराग्य आता है, त्याग आता है। भोग किए बिना बहुतों का त्याग नहीं होता। कुटीचक और बहूदक। साधकों के भीतर कोई-कोई बहुत से तीर्थों पर घूमते हैं। एक जगह पर स्थिर होकर बैठ नहीं सकते; अनेक तीर्थों का उदक अर्थात् जल पीते हैं। जब फिर-फिर कर क्षोभ मिट जाता है, तब एक जगह कुटी बनाकर बैठता है। फिर निश्चिन्त और चेष्टाशून्य होकर भगवान का चिन्तन करता है।

''किन्तु संसार में क्या भोग करेगा? कामिनी-काञ्चन भोग? उस में तो क्षणिक आनन्द है! अभी है, अभी नहीं।

''प्रायः मेघ और वर्षा लगी हुई है, सूर्य दिखाई नहीं देता! दुःख का भाग ही है अधिक। और कामिनी-काञ्चन रूप मेघ सूर्य को देखने नहीं देते।

''कोई-कोई मुझ से पूछता है, महाराज, ईश्वर ने क्यों ऐसा संसार बनाया है? हमारे लिए क्या कोई उपाय नहीं है?

(उपाय—व्याकुलता— त्याग)

''मैं कहता हूँ, उपाय क्यों नहीं होगा? उनके शरणागत होओ, और व्याकुल होकर प्रार्थना करो, जिससे अनुकूल हवा बहे— जिससे शुभ योग घटे। व्याकुल होकर पुकारने से वे सुनेंगे ही सुनेंगे।

''किसी के लड़के का जाय-जाय हो रहा था। वह व्यक्ति व्याकुल होकर इसके पास, उसके पास उपाय पूछता फिर रहा था। किसी ने कहा, तुम यदि यह एक जुगाड़ कर सको तो अच्छा हो— स्वाति-नक्षत्र का जल खोपड़ी के ऊपर पड़े। उस जल को एक मेंढक पीने जाए। उस मेंढक पर एक साँप पीछा करके धावा करे। मेंढक को डंक मारते समय साँप का विष उस खोपड़ी में पड़े और वह मेंढक भाग जाए। वही विषजल ज़रा-सा लेकर रोगी को खिलाना होगा।

"वह व्यक्ति इतना व्याकुल होकर उसी औषध की खोज में स्वाति-नक्षत्र में निकल पड़ा। उसी समय वर्षा हो रही थी। तब व्याकुल होकर ईश्वर से कहता है, ठाकुर! अब खोपड़ी मिला दो। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते देखा, एक खोपड़ी खुली है, उसमें स्वाति-नक्षत्र का जल पड़ रहा है। तब वह फिर और प्रार्थना करके कहने लगा, दुहाई ठाकुर! अब ये कुछ और भी मिला दो— मेंढक और साँप। उसकी ऐसी व्याकुलता कि झटपट सब कुछ मिल गया। देखते ही देखते एक साँप मेंढक का पीछा करता हुआ आ रहा है, और काटने लगते ही उसका विष उसी खोपड़ी के भीतर पड़ गया।

"ईश्वर के शरणागत होकर, उनको व्याकुल होकर पुकारने पर वे सुनेंगे ही सुनेंगे— सब सुयोग कर देंगे।"

काप्तेन— क्या दृष्टान्त है!

श्रीरामकृष्ण— हाँ, सब सुयोग कर देते हैं। हो सकता है— विवाह नहीं हुआ, सम्पूर्ण मन ईश्वर को दे सका। शायद भाई रोजगार करने लग गए अथवा एक लड़का बड़ा हो गया, वैसा होने पर फिर तुम्हें गृहस्थी नहीं देखनी पड़ी। तब तुम अनायास ही सोलह आना मन ईश्वर में दे सकते हो। किन्तु कामिनी-काञ्चन-त्याग बिना हुए नहीं होगा। त्याग हो जाने पर ही फिर अज्ञान, अविद्या नष्ट होते हैं। आतशी (शीशे) के ऊपर सूर्य की किरणें पड़ने पर कितनी वस्तुएँ जल जाती हैं। किन्तु घर के भीतर छाया होती है, वहाँ पर आतशी काँच ले जाने पर वैसा नहीं होता। घर त्याग करके बाहर आकर खड़े होना होता है।"

(ईश्वर-लाभ के उपरान्त संसार— जनक आदि का)

"किन्तु ज्ञान-प्राप्ति के बाद कोई-कोई संसार में रहते हैं। वे घर-बार दोनों ही देख पाते हैं। ज्ञान का आलोक गृहस्थ के भीतर पड़ता है, तभी वे भला-मन्दा, नित्य-अनित्य— ये सब उस आलोक में देख लेते हैं।

"जो अज्ञानी हैं, ईश्वर को नहीं मानते, और संसार में हैं, वे जैसे मिट्टी के घर के भीतर रह रहे हैं। क्षीण आलोक में केवल घर के भीतर का ही देख

पाते हैं। किन्तु जिन्होंने ज्ञान-लाभ कर लिया है, ईश्वर को जानते हैं, उसके बाद गृहस्थ में हैं, वे मानो शीशे के (द्वारों वाले) घर के भीतर वास करते हैं। घर के भीतर का भी देख पाते हैं, घर के बाहर की वस्तु भी देख लेते हैं। ज्ञान-सूर्य का आलोक घर के भीतर खूब प्रवेश करता है। वह व्यक्ति घर के भीतर की चीज़ें खूब स्पष्ट रूप से देख लेता है— कौन-सी भली, कौन-सी मन्दी; कौन-सी नित्य, कौन-सी अनित्य।

"ईश्वर ही कर्त्ता हैं और सब हैं उनके यन्त्र स्वरूप।

"जभी तो ज्ञानी भी अहंकार नहीं रखता। 'महिम्नस्तव' जिसने लिखा था, उसको अहंकार हो गया था। शिव के साँड ने दाँत बाहर निकाल कर दिखाए, तब उसका अहंकार चूर्ण हो गया। देख लिया, एक-एक दाँत ही एक-एक मन्त्र है! उसका अर्थ क्या है, जानते हो? — ये सब मन्त्र अनादि काल से थे। तुमने केवल उद्धार किया है।

"गुरुगिरि करना अच्छा नहीं। ईश्वर का आदेश बिना पाए आचार्य नहीं हुआ जाता। जो स्वयं कहता है, 'मैं गुरु' वह हीनबुद्धि है। तराजू के पलड़े देखे नहीं?— हल्की दिशा ऊँची होती है। जो व्यक्ति स्वयं ऊँचा हो जाता है, वह हल्का है। सब ही गुरु बनना चाहते हैं!— शिष्य मिलता नहीं।"

त्रैलोक्य छोटी खाट के उत्तरी किनारे पर फर्श पर बैठे हैं। त्रैलोक्य गाना गाएँगे। ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "आहा! तुम्हारा कैसा गान! त्रैलोक्य तानपूरा लेकर गाना गाते हैं—

तुझसे हमने दिल को लगाया, जो कुछ है सो तूँ ही है॥

गाना— तुमि सर्वस्व आमार (हे नाथ) प्राणाधार सारात्सार।
नाहि तोया बिने केहो त्रिभुवने आपनार बोलिबार॥

[हे नाथ! प्राणाधार! सारात्सार! तुम मेरे सर्वस्व हो। तुम्हारे बिना त्रिभुवन में मेरा अपना कहने के लिए कोई नहीं है।]

गाना सुनकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण भाव में विभोर हो रहे हैं और कह रहे हैं, "आहा! तुम ही सब! आहा! आहा!"

गान समाप्त हो गया। छः बज गए हैं। ठाकुर मुख धोने झाऊतले की ओर जा रहे हैं। संग में मास्टर हैं।

ठाकुर हँसते-हँसते बातें करते जा रहे हैं। मास्टर से हठात् बोले, "कहाँ, तुम लोगों ने तो खाया नहीं? और उन्होंने भी नहीं खाया?"

ठाकुर भक्तों को प्रसाद देने के लिए उतावले (व्यस्त, व्यग्र) हो गए हैं।

(नरेन्द्र और ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

आज सन्ध्या होने पर ठाकुर की कलकत्ता जाने की बात है। झाऊतला से लौटते समय मास्टर से कहते हैं— "तो किसकी गाड़ी में जाऊँ?"

सन्ध्या हो गई है। ठाकुर के कमरे में प्रदीप जला दिया गया और धूना दे दिया है। ठाकुर-मन्दिर में सब स्थानों पर फराश (बत्ती आदि करने वाला सेवक) ने रोशनी कर दी है! रोशनचौकी बज रही है। अब बारह शिव-मन्दिर, विष्णु-मन्दिर और काली-मन्दिर में आरती होगी।

छोटी खाट पर बैठकर देवताओं के नाम के कीर्त्तन के बाद ठाकुर श्रीरामकृष्ण माँ का ध्यान कर रहे हैं। आरती हो गई। कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर कमरे में इस ओर से उस ओर पायचारी कर रहे हैं (टहल रहे हैं) और भक्तों के संग बीच-बीच में बातें करते हैं और कलकत्ता जाने के लिए मास्टर से परामर्श कर रहे हैं।

इस समय नरेन्द्र आ उपस्थित हुए। साथ में शरत् तथा और भी दो-एक लड़के हैं। उन्होंने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

नरेन्द्र को देखकर ठाकुर का स्नेह उथला पड़ रहा है। जैसे छोटे बच्चे को प्यार करते हैं, ठाकुर नरेन्द्र के मुख पर हाथ देकर आदर-प्यार करने लगे और स्नेहपूर्ण स्वर में बोले, "तुम आए हो"!

कमरे के बीच पश्चिमास्य हुए ठाकुर खड़े हुए हैं। नरेन्द्र और कुछ लड़के ठाकुर को प्रणाम करके पूर्वास्य हुए उनके सम्मुख बातें करते हैं। ठाकुर मास्टर की ओर मुँह फेरकर कह रहे हैं— "नरेन्द्र आया है, फिर जाया जाए! एक व्यक्ति को नरेन्द्रहर को बुलाने भेजा था; अब फिर जाया जाए! क्या कहते हो?"

मास्टर— जो आज्ञा, आज फिर रहने दें।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, कल जाऊँगा— चाहे नौका से, नहीं तो गाड़ी से। *(अन्य भक्तों के प्रति)* तो फिर तुम लोग आज चलो, रात हो गई है।

भक्तों ने सबने अकेले-अकेले प्रणाम करके विदा ग्रहण की।

अष्टादश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलकत्ता नगरी में भक्त-मन्दिर में

प्रथम परिच्छेद

(बलराम-मन्दिर में श्रीरामकृष्ण)

श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग बलराम की बैठक में बैठे हुए हैं— सहास्यवदन। अब समय प्राय: तीन का है। विनोद, राखाल, मास्टर इत्यादि पास बैठे हैं। छोटे नरेन आ उपस्थित हुए।

आज है मंगलवार, 28 जुलाई, 1885 ईसवी; आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा। ठाकुर बलराम के घर में सुबह आए हैं और भक्तों के संग आहार आदि किया है। बलराम के घर पर श्री श्री जगन्नाथदेव की सेवा है। इसीलिए, ठाकुर कहते हैं, ''बड़ा शुद्ध अन्न है''।

नारायण आदि भक्तों ने बताया था, नन्दबसु के घर में अनेक ईश्वरीय छवियाँ हैं। आज ठाकुर उन्हें ही देखने उनके घर जाकर अपराह्न में छवियाँ देखेंगे। एक भक्त ब्राह्मणी का घर नन्दबसु के घर के निकट है, वहाँ पर भी जाएँगे। कन्या-शोक में सन्तप्ता ब्राह्मणी प्राय: दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के लिए जाती हैं। उन्होंने अतिशय व्याकुल होकर ठाकुर को आमन्त्रित किया है। उनके घर जाना होगा तथा और भी एक स्त्री भक्त की माँ के घर भी जाना है।

ठाकुर बलराम के घर आकर छोकरा भक्तों को भक्तों द्वारा बुला भेजते हैं। छोटे नरेन ने कभी कहा था, 'मुझे काम है, इस कारण मैं सर्वदा नहीं आ सकता। परीक्षा के लिए पढ़ना है' इत्यादि। छोटे नरेन के आ

जाने पर ठाकुर उसके साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(छोटे नरेन से)*— तुझे बुलाने के लिए नहीं भेजा।

छोटे नरेन *(हँसते-हँसते)*— तो फिर क्या हो गया?

श्रीरामकृष्ण— फिर तुम्हारा नुकसान होगा, अवसर मिलने पर आना।

ठाकुर ने जैसे रूठकर (अभिमान से) यह बात कही।

पालकी आ गई है। ठाकुर श्रीयुक्त नन्दबसु के घर जाएँगे।

ईश्वर का नाम करते-करते ठाकुर पालकी में बैठ गए। पैरों में काला वार्निष्ड चटि जूता (स्लीपर), लाल फीतापाड़ धोती; उत्तरीय (चादर) नहीं। जूते के जोड़े को मणि ने पालकी के एक किनारे पर रख दिया। पालकी के संग-संग मास्टर जा रहे हैं। क्रमशः परेश आकर मिल गए।

नन्दबसु के गेट के भीतर पालकी ने प्रवेश किया। क्रमशः घर के सामने वाली प्रशस्त भूमि पर से होकर पालकी घर में आ उपस्थित हुई।

गृहस्वामी के रिश्तेदार ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। ठाकुर ने मास्टर से चटि जूता देने के लिए कहा। पालकी से उतर कर ऊपर के हॉल कमरे में आए। बहुत बड़ा और खुला हॉल कमरा है। देव-देवियों की छवियाँ चारों ओर हैं।

मालिक और उसके भाई पशुपति ने ठाकुर के साथ बातें कीं। क्रमशः पालकी के पीछे-पीछे आकर भक्तगण इसी हॉल कमरे में इकट्ठे हुए। गिरीश के भाई अतुल आए हैं। प्रसन्न के पिता श्रीयुक्त नन्द के घर में सर्वदा आना-जाना करते हैं। वे भी उपस्थित हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीयुक्त नन्दबसु के घर में शुभागमन)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण अब छवियाँ देखने के लिए उठे। संग में मास्टर तथा और भी कई भक्त हैं। गृहस्वामी के भाई श्रीयुक्त पशुपति भी संग-संग रहकर छवियाँ दिखला रहे हैं।

ठाकुर पहले तो चतुर्भुज विष्णु-मूर्ति-दर्शन कर रहे हैं। देखते ही भाव में विभोर हो गए। खड़े हुए थे, बैठ गए। कुछ समय भाव में आविष्ट हुए रहे।

द्वितीय छवि— श्रीरामचन्द्र की भक्तवत्सल मूर्त्ति।

श्रीराम हनुमान के मस्तक पर हाथ लगाकर आशीर्वाद कर रहे हैं। हनुमान की दृष्टि है श्रीराम के पादपद्मों में। ठाकुर श्रीरामकृष्ण अनेक क्षण तक इसी छवि को देखते हैं। भाव में कहते हैं, ''आहा! आहा!''

तृतीय छवि— वंशीवदन श्रीकृष्ण कदमतले खड़े हैं।

चतुर्थ— वामनावतार। छाता सिर पर, बलि के यज्ञ में जा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, ''वामन''! एवं एक दृष्टि से देख रहे हैं।

अब नृसिंहमूर्त्ति-दर्शन करके ठाकुर गोष्ठ (चरागाह) की छवि-दर्शन कर रहे हैं। श्रीकृष्ण राखालों (चरवाहों, गोपों) के साथ वत्सगण (बछड़े) चरा रहे हैं। श्री वृन्दावन और यमुना-पुलिन!

मणि बोल उठे— बहुत सुन्दर छवि है!

सप्तम छवि देखकर ठाकुर कह रहे हैं—
'धूमावती'। *अष्टम*— षोडशी, *नवम*— भुवनेश्वरी, *दशम*— तारा, *एकादश*— काली। इन सब मूर्त्तियों को देखकर कह रहे हैं— 'ये सब उग्र मूर्त्तियाँ हैं! ये मूर्तियाँ घर में नहीं रखते। ऐसी मूर्त्ति घर में रखने पर पूजा देनी चाहिए। किन्तु आप लोगों के भाग्य (अदृष्ट) का जोर है, आप रखे हुए हैं।''

श्री श्रीअन्नपूर्णा-दर्शन करके ठाकुर भाव में कह रहे हैं, 'बा! बा!'

तदुपरान्त राइ राजा (राधा राजा के वेश में)। निकुञ्जवन में सखियों से घिरी हुईं सिंहासन पर बैठी हुई हैं। श्रीकृष्ण कुञ्ज के द्वार पर कोतवाल सजे बैठे हुए हैं। फिर हिण्डोले की छवि (दोलकी)। ठाकुर अनेक क्षणों तक इसके बाद की छवि देखते रहे। ग्लासकेस के भीतर वीणापाणि की मूर्त्ति; देवी— वीणा हाथ में, मतवाली होकर राग–रागणी आलाप कर रही हैं।

छवि देखना समाप्त हो गया। ठाकुर फिर दोबारा गृहस्वामी के निकट आ गए। खड़े–खड़े ही गृहस्वामी से कह रहे हैं—

"आज खूब आनन्द हुआ। वाह! आप तो खूब बड़े हिन्दू हैं। अंग्रेज़ी छवियाँ न रखकर जो ये छवियाँ रखी हैं— बड़ा आश्चर्य!"

श्रीयुक्त नन्दबसु बैठे हुए हैं। वे ठाकुर को आह्वान करके कह रहे हैं, "बैठिए! खड़े हुए क्यों हैं?"

श्रीरामकृष्ण *(बैठकर)*— ये पट खूब बड़े–बड़े हैं। तुम अच्छे हिन्दू हो।

नन्दवसु— अंग्रेज़ी छवि भी है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वे सब ऐसी नहीं हैं। अंग्रेज़ी की ओर तुम्हारी वैसी नजर नहीं है।

कमरे की दीवार के ऊपर श्रीयुक्त केशवसेन के नवविधान की छवि टँगी हुई थी। श्रीयुक्त सुरेश मित्र ने उस छवि को बनवाया था! वे ठाकुर के एक प्रिय भक्त हैं। उस छवि में परमहंस केशव को दिखला रहे हैं— भिन्न–भिन्न पथों द्वारा सब धर्म–अवलम्बीगण ईश्वर की ओर जा रहे हैं, केवल पथ अलग हैं।

श्रीरामकृष्ण— ओ, यह तो सुरेन्द्र का है!

प्रसन्न के पिता *(सहास्य)*— आप भी उसके भीतर हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वह तो एक तरह की है, उसके भीतर सब कुछ है।— इदानीम् भाव (अब का भाव)!

यह बात बोलते–बोलते हठात् ठाकुर भाव–विभोर हो रहे हैं। ठाकुर जगन्माता के संग बात कर रहे हैं।

कुछ देर बाद मतवाले की न्यायीं कह रहे हैं—
"मैं बेहोश नहीं हुआ।" (*मकान की ओर दृष्टि करके कह रहे हैं,*) "बड़ो बाड़ी। एते कि आछे? ईंट, काठ, माटि!" (बड़ा घर! इसमें क्या है?— ईंट, काठ, मिट्टी!)

थोड़ी-सी देर बाद कहते हैं,
"सब ईश्वरीय मूर्त्तियाँ देखकर बड़ा आनन्द हुआ।"

और फिर कह रहे हैं,
"उग्रमूर्त्ति, काली, तारा (शव-शिवा मध्ये श्मशानवासिनी) रखना अच्छा नहीं, रखने पर पूजा देनी चाहिए।"

पशुपति *(सहास्य)*— वह वे जितने दिन चलाएँगे, उतने दिन ही चलेगा।

श्रीरामकृष्ण— वह तो है ही, किन्तु ईश्वर में मन रखना अच्छा है। उनको भूलकर रहना ठीक नहीं।

नन्दवसु— उनमें मति ही कहाँ होती है?

श्रीरामकृष्ण— उनकी कृपा होने पर होती है।

नन्दवसु— उनकी कृपा कहाँ होती है? उनमें क्या कृपा करने की शक्ति है?

(ईश्वर कर्त्ता— या कर्म ही ईश्वर)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— समझता हूँ, तुम्हारा पण्डितों वाला मत है— जो जैसा कर्म करेगा वैसा फल पाएगा। इसे छोड़ दो! ईश्वर के शरणागत हो जाने पर कर्मक्षय हो जाता है। मैंने माँ के निकट फूल हाथ में लेकर कहा था— 'माँ! यह लो अपना पाप, यह लो अपना पुण्य; मैं कुछ भी नहीं माँगता, तुम मुझे शुद्धाभक्ति दो। यह लो अपना भला, यह लो अपना मन्दा; मुझे भला-मन्दा कुछ भी नहीं चाहिए, मुझे शुद्धाभक्ति दो। यह लो अपना धर्म, यह लो अपना अधर्म; मैं धर्म-अधर्म कुछ भी नहीं चाहता, मुझे शुद्धाभक्ति दो। यह लो अपना ज्ञान, यह लो अपना अज्ञान; मैं ज्ञान-अज्ञान कुछ भी नहीं चाहता, मुझे शुद्धाभक्ति दो। यह लो अपनी शुचि, यह लो अपनी अशुचि; मुझे शुद्धाभक्ति दो।'

नन्दबसु— कानून को वे बदल सकते हैं?

श्रीरामकृष्ण— यह क्या! वे ईश्वर हैं, वे सब कर सकते हैं। जिन्होंने कानून बनाया है, वे कानून बदल सकते हैं।

(चैतन्यलाभ भोग के अन्त होने पर— या उनकी कृपा से)

"किन्तु वैसी बात तुम कह सकते हो। क्योंकि तुम्हारी भोग करने की इच्छा है, जभी तुम ऐसी बात कहते हो। एक मत तो है कि भोग की शान्ति बिना हुए चैतन्य नहीं होता! किन्तु भोग ही फिर क्या करेगा? कामिनी-काञ्चन का सुख तो अभी है, अभी नहीं, क्षणिक! कामिनी-काञ्चन के भीतर क्या है?— खटास, गुठली और छिलका— खाने पर अम्लशूल (पेट दर्द) होता है। 'संदेश' ज्योंहि निगल लिया, फिर नहीं!"

(ईश्वर क्या पक्षपाती? अविद्या क्यों?— उनकी खुशी)

नन्दबसु थोड़ा चुप रहे, उसके पश्चात् कहते हैं—

"वैसा कहते तो हैं! ईश्वर क्या पक्षपाती हैं? उनकी कृपा से यदि हो जाता है, तो फिर कहना पड़ेगा ही कि ईश्वर पक्षपाती हैं!"

श्रीरामकृष्ण— वे निज ही सब हैं, ईश्वर निज ही जीव, जगत सब हुए हैं। जब पूर्ण ज्ञान होगा, तब वही बोध होगा। वे मन, बुद्धि, देह, चौबीस तत्त्व— सब हुए हैं। वे फिर पक्षपात किसके ऊपर करेंगे?

नन्दबसु— वे नाना रूप क्यों हुए हैं?— कहीं पर ज्ञान, कहीं पर अज्ञान?

श्रीरामकृष्ण— उनकी खुशी।

अतुल— केदारबाबु (चटर्जी) ने सुन्दर कहा है। किसी ने पूछा था, ईश्वर ने सृष्टि क्यों की? उस पर कहा था कि जिस मीटिंग में उन्होंने सृष्टि का प्लान किया था, उस मीटिंग में मैं नहीं था। *(सबका हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण— उनकी खुशी।

यह कहकर ठाकुर गाना गाते हैं—

सकलि तोमार इच्छा इच्छामयी तारा तुमि।
तोमार कर्म तुमि करो मा लोके बोले करि आमि।
पंके बद्ध करो करी, पंगुरे लंघाओ गिरि,
कारे दाओ मा! ब्रह्मपद, कारे करो अधोगामी॥
आमि यन्त्र तुमि यन्त्री, आमि घर तुमि घरणी।
आमि रथ तुमि रथी, जेमन चालाओ तेमनि चलि॥

[भावार्थ— सब तुम्हारी इच्छा है। हे माँ तारा, तुम इच्छामयी हो। अपना कर्म तुम कर रही हो, जगत में सब कहते हैं, मैं कर रहा हूँ। पंक में, कीचड़ में, तुम हाथी को बद्ध कर देती हो और पंगु को गिरि लंघा देती हो। किसी को माँ, तुम ब्रह्म-पद दे देती हो और किसी को अधोगामी बना देती हो। मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो; मैं घर हूँ, तुम घरणी हो। मैं रथ हूँ, तुम रथी हो— जैसे चलाती हो, वैसे ही चलता हूँ।]

"वे आनन्दमयी हैं! सृष्टि-स्थिति-प्रलय की लीला करती हैं। असंख्य जीव हैं, उसमें से कोई दो-एक ही मुक्त होते हैं। उसमें ही उन्हें आनन्द है। लाखों पतंगों में से दो-एक को काट कर, हँस कर तुम हाथ से ताली बजाती हो। कोई संसार में बद्ध हो रहा है, कोई मुक्त हो रहा है।

"भवसिन्धु माझे मन उठछे डुबछे कतो तरी।"
[भवसागर में मन रूपी कितनी नौकाएँ तैरती और डूबती हैं।]

नन्दबसु— उनकी तो खुशी है! हम जो मर रहे हैं!

श्रीरामकृष्ण— तुम कहाँ पर हो? वे ही सब बनी हुई हैं। जब तक उनको जान नहीं लेते तब तक 'मैं', 'मैं' करते हो!

"सब उनको जान पाएँगे, सब ही उद्धार पाएँगे। किन्तु कोई सुबह-सुबह खाना पा जाता है, कोई दोपहर के समय, और फिर कोई सन्ध्या के समय; किन्तु कोई भूखा नहीं रहेगा! सब ही अपने स्वरूप को जान पाएँगे।"

पशुपति— जी हाँ, वे ही सब हुए हुए हैं— बोध होता है।

श्रीरामकृष्ण— 'मैं' क्या हूँ, इसे खोजो तो ज़रा। मैं क्या हाड़-माँस या रक्त, या अंतड़ियाँ हूँ? 'मैं' को खोजते-खोजते 'तुम' आ पड़ता है, अर्थात् ? अन्तर में उसी ईश्वर की शक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। 'मैं' नहीं— 'वे'।

तुम्हें अभिमान नहीं! इतना ऐश्वर्य! 'मैं' एकदम त्याग नहीं होता; किन्तु यदि जाएगा नहीं तो फिर रहे साला ईश्वर का दास होकर *(सबका हास्य)*। ईश्वर का भक्त, ईश्वर का बेटा, ईश्वर का दास— यह अभिमान अच्छा है। जो 'मैं' कामिनी-काञ्चन में आसक्त हो जाता है, वह 'मैं' कच्चा मैं है, वह 'मैं' त्याग करना चाहिए।

अहंकार की ऐसी व्याख्या सुनकर गृहस्वामी तथा अन्य सभी ने अत्यन्त प्रीति-लाभ किया।

(ऐश्वर्य का अहंकार और मस्ती)

श्रीरामकृष्ण— ज्ञान के दो लक्षण हैं— प्रथम, अभिमान नहीं रहेगा। दूसरा शान्त स्वभाव। तुम्हारे दोनों लक्षण ही हैं। अतएव तुम्हारे ऊपर ईश्वर का अनुग्रह है।

"अधिक ऐश्वर्य होने पर, ईश्वर को भूल जाता है। ऐश्वर्य का स्वभाव ही यही है। यदुमल्लिक का अधिक ऐश्वर्य हुआ है, वह आजकल ईश्वरीय बात नहीं करता। पहले-पहले तो ईश्वर की बहुत सुन्दर बातें किया करता था।

"कामिनी-काञ्चन एक प्रकार का मद है। बहुत मद पी लेने पर चाचा-ताऊ-बोध नहीं रहता। उनसे ही कह देता है, तेरे वंश का... । मतवाले को बड़ा-छोटा-बोध रहता नहीं।"

नन्दबसु— वह तो है।

(Theosophy— क्षणिक योग से मुक्ति— शुद्धाभक्ति-साधन)

पशुपति— महाशय! ये सब क्या सत्य हैं— spiritualism, theosophy (आध्यात्मवाद, ब्रह्मवाद)? सूर्यलोक, चन्द्रलोक, नक्षत्रलोक?

श्रीरामकृष्ण— भाई, मैं तो नहीं जानता! इतना हिसाब क्यों? आम खाओ। कितने आम्रवृक्ष, कितनी लाख डालें, कितने करोड़ पत्ते— यह हिसाब करने

का मुझे क्या प्रयोजन? मैं बाग में आम खाने आया हूँ, खा के जाऊँ।

"चैतन्य यदि एक बार हो जाए, यदि एक बार ईश्वर को कोई जान सके तो फिर वे सब बेकार (व्यर्थ के) विषय जानने की इच्छा नहीं होती। विकार (पागलपन) रहने पर कितना क्या बोलता है— 'मैं पाँच सेर चावलों का भात खाऊँगा रे', 'मैं एक मटका जल पिऊँगा रे'। वैद्य कहता है, 'खाएगा? अच्छा, खाइयो!'— यह कहकर वैद्य तम्बाकू पीता है। विकार हट जाने पर जो कहेगा वही सुनना होगा।"

पशुपति— हमारा विकार चिरकाल रहेगा शायद?

श्रीरामकृष्ण— क्यों! ईश्वर में मन रखो, चैतन्य होगा।

पशुपति *(सहास्य)*— हमारा ईश्वर का योग क्षणिक है— तम्बाकू पीने में जितनी देर लगती है। *(सबका हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण— वह चाहे हो! क्षण भर उनके संग योग होने से ही मुक्ति है।

"अहल्या ने कहा, 'राम! शूकर-योनि में ही जन्म हो या जहाँ पर ही हो, जैसे तुम्हारे पादपद्मों में मन रहे, जैसे शुद्धाभक्ति हो जाए!'

"नारद ने कहा, राम! तुम्हारे पास से और कोई वर नहीं चाहता, मुझे शुद्धाभक्ति दो, और जैसे तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ— यही आशीर्वाद करो। उनके निकट आन्तरिक प्रार्थना करने पर, उनमें मन हो जाता है— ईश्वर के पादपद्मों में शुद्धाभक्ति हो जाती है।"

(पाप और परलोक— मृत्युकाल में ईश्वर-चिन्तन— भरत राजा)

" 'हमारा क्या विकार जाएगा!' 'हमारा फिर क्या होगा!' 'हम पापी!'— ऐसी बुद्धि का त्याग करो। *(नन्दबसु के प्रति)* और यही चाहता हूँ— 'एक बार राम कहा है, मुझे भी फिर पाप'!"

नन्दबसु— परलोक है क्या? और पाप का दण्ड?

श्रीरामकृष्ण— तुम आम खाओ ना! तुम्हें इतने सब हिसाब का प्रयोजन क्या? 'परलोक है कि नहीं'— इससे क्या होता है— ऐसी बातों से?

"आम खाओ। 'आम' का प्रयोजन है— उनमें भक्ति का—"

नन्दबसु— आम्रवृक्ष कहाँ है? आम कहाँ से पाऊँ?

श्रीरामकृष्ण— वृक्ष? वे अनादि, अनन्त ब्रह्म! वे हैं ही, वे नित्य! किन्तु एक बात है— वे हैं 'कल्पतरु'!

"काली कल्पतरु मूले रे मन, चारि फल कुड़ाए पाबि!*

"कल्पतरु के पास जाकर प्रार्थना करनी चाहिए, तभी फल मिलता है, तभी फल वृक्ष के मूल में गिरता है। तब बटोर कर लाया जाता है। चारों फल— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

"ज्ञानीजन मुक्ति (मोक्षफल) चाहते हैं, भक्तजन भक्ति चाहते हैं— अहेतुकी भक्ति। वे धर्म, अर्थ, काम नहीं चाहते।

"परलोक की बात कहता है? गीता का मत है, मृत्युकाल में जो सोचेगा, वही होगा। भरत राजा ने 'हरिण' 'हरिण' करते-करते शोक में प्राण-त्याग किए थे। तभी उनको हरिण होकर जन्म लेना पड़ा था। इसीलिए जप, ध्यान, पूजा इत्यादि का रात-दिन अभ्यास करना चाहिए। तभी फिर मृत्यु के समय ईश्वर-चिन्तन होता है— अभ्यास के गुण से। इस प्रकार मृत्यु होने पर ईश्वर का स्वरूप पाता है।

"केशवसेन ने भी परलोक की बात पूछी थी। मैंने केशव से कहा था, 'इस समस्त हिसाब की तुम्हें क्या आवश्यकता है?' फिर और भी कहा था, 'जब तक ईश्वर-प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक पुनः-पुनः संसार में यातायात करना पड़ेगा। कुम्हार हण्डी, कसोरे धूप में सुखाने के लिए रखते हैं। गाय-बकरी पैरों तले यदि रौंद कर तोड़ देते हैं तो फिर पके हुए तैयार लाल हण्डी आदि फेंक देता है। किन्तु कच्चों को फिर दोबारा लेकर मिट्टी के संग मिला डालता है और फिर दोबारा चाक पर रखता है!"

---

* उस काली-कल्पतरु के नीचे तुम्हें चारों फल मिलेंगे।

तृतीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और गृहस्थ की मंगल कामना— रजोगुण का चिह्न)

अभी तक गृहस्वामी ने ठाकुर का मिष्टमुख करने के लिए कोई चेष्टा नहीं की। ठाकुर अपने-आप उद्यत होकर गृहस्वामी से कह रहे हैं—

''कुछ खाना चाहिए। यदु की माँ से तभी तो उस दिन कहा था— 'अजि कुछ (खाने को) दो! ऐसा न हो तो गृहस्थ का पीछे अमंगल होता है!''

गृहस्वामी ने कुछ मिठाई मँगवा दी। ठाकुर खाते हैं। नन्दबसु तथा और सब ठाकुर की ओर एक दृष्टि से देख रहे हैं। देख रहे हैं— वे क्या-क्या करते हैं।

ठाकुर हाथ धोएँगे, चादर के ऊपर रकाबी (तश्तरी) में मिठाई रख दी गई थी, वहाँ पर हाथ नहीं धोएँगे। हाथ धोने के लिए एक भृत्य (नौकर) ने पीकदानी ला दी।

पीकदानी रजोगुण का चिह्न है। ठाकुर देखते ही बोल उठे, ''ले जाओ, ले जाओ।'' गृहस्वामी कहते हैं, ''हाथ धोएँ।''

ठाकुर हैं अन्यमनस्क। बोले, ''क्या?— हाथ धोऊँगा?''

ठाकुर उठकर दक्षिण के बरामदे की ओर गए। मणि को आज्ञा की, ''मेरे हाथ पर जल दो।'' मणि ने भृंगार से जल डाल दिया। ठाकुर अपने कपड़े से हाथ पोंछकर फिर दोबारा बैठने के स्थान पर लौट आए। सज्जनों के लिए रकाबी में पान लाए गए थे। उसी रकाबी का पान ठाकुर के निकट ले जाया जाने पर उन्होंने पान नहीं लिया।

(इष्टदेवता को निवेदन— ज्ञानभक्ति और शुद्धाभक्ति)

नन्दबसु *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— एक बात कहूँ?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्या?

नन्दबसु— पान क्यों नहीं खाया? सब ठीक हुआ है, बस वही एक अन्याय (दोष, गलत) हुआ।

श्रीरामकृष्ण— इष्ट को देकर खाता हूँ, यही एक भाव है।

नन्दबसु— वह तो इष्ट में ही पड़ता।

श्रीरामकृष्ण— ज्ञानपथ एक है; और भक्तिपथ एक है। ज्ञानी के मत में सब वस्तुएँ ही ब्रह्म-ज्ञान से ली जाती हैं। भक्ति-पथ में थोड़ी-सी भेदबुद्धि होती है।

नन्द— वही तो दोष हुआ है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वह मेरा एक विशेष भाव है। तुम जो कहते हो, वह भी ठीक है— वह भी है।

ठाकुर गृहस्वामी को मुसाहिबों (चाटुकारों) से सावधान कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— और एक विशेष सावधानी! मुसाहिबगण (दरबारीगण) स्वार्थ के लिए घूमते हैं। *(प्रसन्न के पिता से)* आप क्या यहाँ पर ही रहते हैं?

प्रसन्न के पिता— जी नहीं, इसी मुहल्ले में रहता हूँ। तम्बाकू पीने की इच्छा है?

श्रीरामकृष्ण *(अति विनीत भाव में)*— नहीं रहने दो, आप पिएँ। मेरी अब इच्छा नहीं है।

नन्दबसु की बाड़ी बहुत बड़ी है। तभी ठाकुर कह रहे हैं— यदु की बाड़ी इतनी बड़ी नहीं है, वही उससे उस दिन कह दिया था।

नन्द— हाँ, उन्होंने जोडासांको में नूतन बाड़ी बनाई है।

ठाकुर नन्दबसु को उत्साह दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नन्दबसु के प्रति)*— तुमने संसार में रहते हुए ईश्वर के प्रति मन रखा हुआ है। यह क्या कम बात है? जो संसार-त्यागी है वह तो ईश्वर को पुकारेगा ही। उसमें फिर क्या बहादुरी है? संसार में रहकर जो पुकारता है, वही है धन्य! वह व्यक्ति बीस मन पत्थर सरकाकर तब देखता है।

"एक ही भाव का आश्रय करके उनको पुकारना चाहिए। हनुमान की ज्ञानभक्ति, नारद की शुद्धाभक्ति।

"राम ने पूछा था, 'हनुमान! तुम मेरी किस भाव में अर्चना करते

हो?' हनुमान बोले, 'कभी देखता हूँ, तुम पूर्ण हो, मैं अंश; कभी देखता हूँ, तुम प्रभु हो मैं दास; और राम! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब देखता हूँ— तुम ही मैं, मैं ही तुम'।

"राम ने नारद से कहा, तुम वर लो। नारद बोले— राम! यही वर दो जैसे तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धाभक्ति हो, और जैसे तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ!"

अब ठाकुर उठेंगे।

श्रीरामकृष्ण *(नन्दबसु के प्रति)*— गीता में है, बहुत-से आदमी जिसे मानते और पूजते हैं, उसमें ईश्वर की विशेष शक्ति है। तुम में ईश्वर की शक्ति है।

नन्दबसु— शक्ति सभी मनुष्यों में समान है।

श्रीरामकृष्ण *(विरक्त होकर)*— बस वही तुम लोगों की एक ही बात है— सब लोगों की शक्ति क्या समान हो सकती है? विभु के रूप में वे सर्वभूतों में चाहे एक से बने हुए हैं किन्तु शक्ति विशेष है!

"विद्यासागर ने भी वही बात कही थी— 'उन्होंने क्या किसी को अधिक शक्ति, किसी को कम शक्ति दी है?' तब मैंने कहा था— यदि शक्ति भिन्न न होती तो फिर हम लोग तुम्हें देखने क्यों आते? तुम्हारे सिर पर क्या दो सींग निकल आए हैं?"

ठाकुर उठे। भक्तगण भी संग-संग उठ गए। पशुपति ने संग-संग जाकर दरवाज़े तक पहुँचा दिया।

ऊनविंश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलकत्ता नगर में भक्त-मन्दिर में

प्रथम परिच्छेद

(शोकातुरा ब्राह्मणी के घर पर ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

ठाकुर बागबाजार की एक शोकातुरा ब्राह्मणी के घर पर आए हैं। घर पुरानी ईंटों से बना हुआ है। घर में प्रवेश करते ही बायें हाथ गौशाला है। छत के ऊपर बैठने का स्थान बना है। छत पर लोग कतार बाँधकर कोई खड़ा हुआ है, कोई बैठा हुआ है। सब ही उत्सुक हैं कि कब ठाकुर को देखेंगे।

ब्राह्मणीहर दो बहनें हैं, दोनों जनी ही विधवा। घर में इनके भाई लोग सपरिवार रहते हैं। ब्राह्मणी की एकमात्र कन्या के देहत्याग करने से वह अपार शोकातुरा है। आज ठाकुर घर आएँगे, इसी कारण दिनभर से उद्योग कर रही हैं। जब तक ठाकुर श्रीयुक्त नन्दबसु की बाड़ी में थे, तब तक ब्राह्मणी घर-बाहर करती रही थी— कब वे आते हैं! ठाकुर ने कह दिया था कि वे नन्दबसु के घर से होकर उनके घर में आएँगे। विलम्ब होने से वे सोचती रही थीं, शायद अब ठाकुर नहीं आएँगे।

ठाकुर ने भक्तों के संग छत के ऊपर बैठने वाले स्थान पर आसन ग्रहण किया। निकट ही मादुर (बारीक चटाई) के ऊपर मास्टर, नाराण, योगीन सेन, देवेन्द्र, योगीन हैं। कुछ क्षण पश्चात् छोटे नरेन प्रभृति अनेक भक्तगण इकट्ठे हो गए। ब्राह्मणी की भगिनी छत के ऊपर आकर ठाकुर को प्रणाम करके कहती हैं— 'दीदी अभी गई हैं, नन्दबसु की बाड़ी में,

खबर लेने— क्यों इतनी देर हो रही है! अभी लौट आएँगी'।

नीचे एक शब्द होने पर वे फिर और कहती हैं— ''यही, दीदी आ रही हैं''— यह कहकर वे देखने लगीं। किन्तु वे अब भी नहीं आईं।

ठाकुर सहास्यवदन हैं, भक्तों से घिरे हुए बैठे हैं।

मास्टर *(देवेन्द्र के प्रति)*— कैसा सुन्दर (अद्‌भुत) दृश्य है! लड़के-बूढ़े, पुरुष-स्त्री कतार बाँधकर खड़े हुए हैं। सब ही हैं कितने उत्सुक— इन्हें देखने के लिए। और इनकी बातें सुनने के लिए।

देवेन्द्र *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— मास्टर महाशय कहते हैं कि यह जगह नन्दबसु की अपेक्षा अच्छी है, इनकी कितनी भक्ति है!

ठाकुर हँस रहे हैं।

अब ब्राह्मणी की भगिनी कहती हैं, ''यही, दीदी आ रही हैं।''

ब्राह्मणी आकर ठाकुर को प्रणाम करके क्या कहेंगी, क्या करेंगी— कुछ भी ठीक कर नहीं पा रही हैं।

ब्राह्मणी अधीर होकर कह रही हैं,
''ओ जी, मैं तो आह्लाद (खुशी) से अब फिर बचूँगी नहीं जी! तुम सब बताओ मैं कैसे बचूँ! अजी, मेरी चण्डी जब आई थी, सिपाही-सन्तरी साथ लेकर— वे लोग रास्ते में पहरा देते थे— तब तो इतना हर्ष नहीं हुआ था। अजी, चण्डी का शोक अब ज़रा-सा भी मुझे नहीं है। सोच रही थी, ये जब आ ही नहीं रहे हैं, तो जो आयोजन किया है, सब गंगा के जल में फेंक दूँगी और उनके (ठाकुर के) संग बात भी नहीं करूँगी। जहाँ पर आएँगे, एक बार जाऊँगी, दूर से देखूँगी, देखकर चली आऊँगी।

''जाऊँ— सबको कहूँ, आओ, आओ! मेरा सुख देखो आकर! जाऊँ! जोगीन को कहूँ जाकर, मेरा भाग्य देख जा!''

ब्राह्मणी फिर और आनन्द में अधीर होकर कहती हैं—
''अजी, खेल (लॉटरी) में एक श्रमिक (कुली) ने एक रुपया देकर एक लाख रुपया पाया था। उसने ज्योंहि सुना एक लाख रुपया मिला है, त्योंहि

आह्लाद (हर्ष) से मर गया था, सचमुच मर गया था!— अजी, मेरा भी तो वही हुआ है जी! तुम सब आशीर्वाद करो, नहीं तो मैं सचमुच मर जाऊँगी।''

मणि ब्राह्मणी की आर्त्ति (मानसिक व्याकुलता) और भाव की अवस्था देख कर मोहित हो गए हैं। वे उनके पाँव की धूल लेने गए। ब्राह्मणी कहती हैं, 'यह क्या जी!' उन्होंने मणि को प्रति-प्रणाम किया।

ब्राह्मणी, भक्तगण आए हैं, देखकर आनन्दित हुईं हैं और कह रही हैं— ''तुम लोग सब आए हो— छोटे नरेन को लाई हूँ— कहा था, वह नहीं होगा तो हँसेगा कौन?'' ब्राह्मणी इस प्रकार बातें कर रही हैं। उसकी भगिनी आकर घबराई हुई कहतीं हैं, 'दीदी, आओ ना! तुम्हारे यहाँ खड़े रहने से क्या होगा? नीचे आओ! हम क्या अकेले कर सकते हैं?'

ब्राह्मणी आनन्द में विभोर हैं! ठाकुर और भक्तों को देख रही हैं। उन्हें छोड़कर तो फिर जा नहीं सकतीं।

इसी प्रकार कथावार्त्ता के पश्चात् ब्राह्मणी ने अतिशय भक्ति सहित ठाकुर को अन्य कमरे में ले जाकर मिठाई आदि निवेदन की। भक्तों ने भी, छत पर बैठकर— सबने मीठा मुख किया।

रात के प्राय: आठ हो गए हैं। ठाकुर विदा ग्रहण कर रहे हैं। नीचे के तल में कमरे के साथ बरामदा है। बरामदे से पश्चिमास्य होकर आँगन में आना होता है। उसके बाद गौशाला को दायें हाथ रखकर सदर द्वार पर आना होता है। ठाकुर जब बरामदे से भक्तों के संग बड़े फाटक की ओर आ रहे हैं, तब ब्राह्मणी उच्च स्वर में पुकरती हैं, 'ओ बहू, शीघ्र पाँव की धूल ले ले आकर!' बहूजी ने प्रणाम किया। ब्राह्मणी के एक भाई ने भी आकर प्रणाम किया।

ब्राह्मणी ठाकुर से कह रही हैं— 'यह और एक भाई है, मूर्ख!'

श्रीरामकृष्ण— ना, ना, सब भालो मानुष।

एक जन संग-संग प्रदीप लेकर आ रहे हैं। आते-आते एक-एक जगह पर वैसा आलोक नहीं हुआ।

छोटे नरेन उच्च स्वर में कह रहे हैं, 'पिद्दिम धर, पिद्दिम धर! मने

करो ना जे, पिद्दिम धरा फुरिये गेलो।' (प्रकाश लाओ, प्रकाश लाओ! मत सोचो कि प्रकाश दिखाना खत्म हो गया है।) *(सबका हास्य)*।

अब गौशाला। ब्राह्मणी ठाकुर से कहती हैं, यह है मेरी गौशाला। गौशाला के सामने एक बार खड़े हो गए। चारों ओर हैं भक्तगण। मणि भूमिष्ठ होकर ठाकुर को प्रणाम करते हैं और पाँव की धूल लेते हैं।

अब ठाकुर गणु की माँ के घर जाएँगे।

द्वितीय परिच्छेद

(गणु की माँ के घर में श्रीरामकृष्ण)

गणु की माँ की बाड़ी में बैठकखाने में ठाकुर श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। घर एक नीचे तल पर है, ठीक रास्ते के ऊपर। घर के भीतर ऐक्यतान वाद्य (concert) का अखाड़ा है। लड़के वाद्ययन्त्र लेकर ठाकुर की प्रीति के लिए बीच-बीच में बजा रहे हैं।

रात के साढ़े आठ हैं। आज आषाढ़ मास की कृष्णा प्रतिपदा है। चाँद के आलोक में आकाश, गृह, राजपथ— सब जैसे प्लावित हो रहे हैं। ठाकुर के संग-संग भक्तगण आकर उसी कमरे में बैठ गए हैं।

ब्राह्मणी भी संग-संग आई हैं। वे एक बार घर के भीतर जाती हैं, एक बार बाहर आकर बैठक के द्वार के पास आकर खड़ी हो जाती हैं। मुहल्ले के कितने ही लड़के बैठक की खिड़की के ऊपर चढ़कर ठाकुर को देखते हैं। मुहल्ले के लड़के-बूढ़े सब ही ठाकुर का आगमन-संवाद सुनकर उतावले होकर महापुरुष-दर्शन करने आए हैं।

खिड़की के ऊपर लड़के चढ़ते देखकर छोटे नरेन कह रहे हैं— अरे ओ, तुम वहाँ पर क्यों हो? जाओ, जाओ, घर जाओ! ठाकुर श्रीरामकृष्ण सस्नेह कह रहे हैं, ''ना, रहो, रहो।''

ठाकुर बीच-बीच में कह रहे हैं, ''हरि ॐ! हरि ॐ!''

शतरंजी (दरी) के ऊपर एक आसन बिछाया हुआ है, उसके ऊपर श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। ऐक्यतान वाद्य के लड़कों से गाना गाने के लिए

कहा गया। उन्हें बैठने की सुविधा नहीं हो रही। ठाकुर ने अपने निकट शतरंजी पर बैठने के लिए उन्हें बुला लिया।

ठाकुर कह रहे हैं, "इसके ऊपर ही बैठ जाओ ना! यह मैं लेता हूँ", यह कहकर आसन समेट लिया। लड़के गाना गाते हैं —

केशव कुरु करुणादीने कुञ्ज काननचारी।
माधव-मनोमोहन मोहन-मुरलीधारी।
(हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, मन आमार)॥
ब्रजकिशोर कालीयहर कातर भय-भंजन,
नयन बाँका, बाँका शिखिपाखा, राधिका-हृदिरंजन;
गोवर्धन-धारण, बन-कुसुम-भूषण, दामोदर, कंसदर्पहारी।
श्याम-रास-रस-बिहारी।
(हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, मन आमार)॥

[भावार्थ— हे केशव! कुञ्ज-काननचारी, दीन पर करुणा करो। माधव मनोमोहन-मुरलीधारी! (हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, ऐ मन मेरे!) हे ब्रजकिशोर, कालीयहर, कातर-भय-भंजन, बांके नयन, बांके मोर पंख, राधिका के हृदय को खुश करने वाले; गोवर्धन-धारण, बनकुसुमभूषण, दामोदर (कृष्ण), कंस के दर्प को चूर्ण करने वाले, श्याम-रास-रसबिहारी! (हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, मन मेरे)॥]

गाना— ऐशो मा जीवन उमा... इत्यादि।
[आओ मेरी जीवन उमा...]

श्रीरामकृष्ण— आहा, क्या गाना है!— कैसा बेहाला (violin)! कैसा बाजा!

एक लड़का फ्लूट (बंसी) बजा रहा था। उनकी ओर तथा अन्य लड़के की ओर उंगली से निर्देश करके कह रहे हैं, 'यह और वह जैसे जोड़ी हैं'।

अब केवल कॉनसर्ट होने लगा। वाद्यों पर ठाकुर आनन्दित होकर कह रहे हैं— "वाह! कैसा सुन्दर!"

एक लड़के को दिखाकर कह रहे हैं, "उसको सब (बाजे) आते हैं।"

मास्टर से कह रहे हैं— "ये सब अच्छे लोग हैं।"

लड़कों के गाने के बाद वे भक्तों से कह रहे हैं, "आप लोग कुछ

गाएँ!'' ब्राह्मणी खड़ी हुई हैं। वे द्वार के निकट से बोलीं, गाना इनमें से कोई नहीं जानता, एक महिमबाबू शायद जानते हैं, किन्तु उनके (श्रीरामकृष्ण के) सामने वे नहीं गाएँगे।

एक छोकरा— क्यों? मैं बाबा के सामने गा सकता हूँ।

छोटे नरेन *(उच्च हास्य करके)*— इतनी आगे ये बढ़ते नहीं।

सब हँस रहे हैं। कुछ क्षण पश्चात् ब्राह्मणी आकर कह रही हैं— ''आप भीतर आइए।'' श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''क्यों जी?''

ब्राह्मणी— वहाँ पर जलपान दिया गया है, जाएँगे?

श्रीरामकृष्ण— यहाँ पर ही ला दो ना!

ब्राह्मणी— गणु की माँ कहती हैं, घर में एक बार पाँव की धूल दें, तो फिर घर काशी बना रहेगा। घर में मर जाने पर भी फिर कोई गड़बड़ नहीं रहेगी।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने ब्राह्मणी और घर के लड़कों के संग अन्त:पुर में गमन किया। भक्तगण चाँद के आलोक में टहलने लगे। मास्टर और विनोद घर के दक्षिण वाले सदर मार्ग पर बातें करते-करते पादचारण कर रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(गुह्य कथा— 'तीन जन ही एक')

बलराम के घर की बैठक के पश्चिम के साथ के कमरे में ठाकुर विश्राम कर रहे हैं, निद्रा करेंगे। गणु की माँ के घर से लौटते हुए अनेक रात हो गई है। रात के पौने ग्यारह होंगे।

ठाकुर कह रहे हैं,

''योगीन, तनिक पाँव पर हाथ सहला दो तो।''

निकट मणि बैठे हुए हैं।

योगीन पाँव पर हाथ फेर रहे हैं। इस समय ठाकुर कह रहे हैं,

"मुझे भूख लगी है, थोड़ी-सी सूजी खाऊँगा।"

ब्राह्मणी संग-संग यहाँ पर भी आ गई हैं। ब्राह्मणी का भाई बहुत सुन्दर बायाँ तबला बजा सकते हैं। ठाकुर ब्राह्मणी को फिर और देखकर कह रहे हैं,

"अबकी बार नरेन के आने पर या किसी भी और गाने वाले व्यक्ति के आने पर इनके भाई को भी बुलाना होगा।"

ठाकुर ने थोड़ी-सी सूजी खा ली। धीरे-धीरे योगीन आदि भक्तगण कमरे से चले गए। मणि ठाकुर के पैरों पर हाथ फेर रहे हैं। ठाकुर उनके साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— आहा, इनका (ब्राह्मणीहर का) कितना आह्लाद!

मणि— कैसा आश्चर्य, यीशुक्राइस्ट के समय ठीक इसी प्रकार हुआ था! वे भी दो स्त्री भक्त थीं, दोनों बहनें— मार्था और मेरी।

श्रीरामकृष्ण *(उत्सुक होकर)*— उनकी क्या कहानी है, बताओ तो!

मणि—यीशुक्राइस्ट उनके घर में भक्तों के संग में ठीक इसी प्रकार गए थे। एक भगिनी उन्हें देखकर भावोल्लास में परिपूर्ण हो गई थी। जैसे गौर के गाने में है—

'डुबलो नयन फिरे ना एलो।
गौर रूपसागरे साँतार भुले, तलिए गेलो आमार मन।'

[डूब जाने पर नयन फिर लौटकर नहीं आए। गौर (चैतन्यप्रभु) के रूपसागर में तैरना भूलकर मेरा मन तले में चला गया।]

और एक बहिन अकेली खाने-पीने का उद्योग कर रही थी। उसने व्यतिव्यस्त (काम में फँसी) होकर यीशु के पास नालिश की— प्रभु, देखिए ना— दीदी का कैसा अन्याय! ये यहाँ पर अकेली चुप करके बैठी हुई हैं, और मैं अकेली यह समस्त उद्योग कर रही हूँ?

तब यीशु ने कहा, तुम्हारी दीदी ही धन्य हैं, क्योंकि मनुष्य-जीवन का जो प्रयोजन (अर्थात् ईश्वर में प्यार-प्रेम) है, वह उन्हें हो गया है।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, तुम्हें यह सब देखकर क्या बोध होता है?

मणि— मुझे बोध होता है, तीनों जन ही एक वस्तु हैं!— यीशुक्राइस्ट, चैतन्यदेव और आप— एक व्यक्ति!

श्रीरामकृष्ण— एक! एक के अतिरिक्त और क्या! वे (ईश्वर),— देख रहे हो ना— जैसे इसके ऊपर ऐसे किए हुए हैं!

> यह कहकर ठाकुर ने अपने शरीर के ऊपर अंगुलि निर्देश की— जैसे कह रहे हैं कि ईश्वर अवतीर्ण होकर उनका ही शरीर धारण करके रह रहे हैं।

मणि— उस दिन आपने यही अवतार वाली बात अच्छे-से समझाई थी।

श्रीरामकृष्ण— बताओ तो, क्या?

मणि— जैसे दिग्-दिगन्तव्यापी मैदान पड़ा हुआ है! धू-धू कर रहा है! सम्मुख दीवाल है, इस कारण मैं देख नहीं पाता। उस दीवाल में केवल एक गोल फाँक (खाली स्थान) है! उसी छेद द्वारा अनन्त मैदान का तनिक-सा दिखाई देता है!

श्रीरामकृष्ण— बताओ तो वह 'फाँक' क्या है?

मणि— वह 'फाँक' आप हैं। आपके भीतर से सब दिखाई देता है।— वही दिग्-दिगन्त-व्यापी माठ (मैदान) दिखाई देता है।

> श्रीरामकृष्ण अतिशय सन्तुष्ट होकर मणि का शरीर थपथपाने लगे और बोले, "तुम जो उसे विशेष रूप से समझ गए हो!— बड़ा ही बढ़िया हुआ है।"

मणि— यही तो विशेष कठिन है। पूर्णब्रह्म होते हुए इस छोटे-से के भीतर कैसे करके रहते हैं, इसे ही तो समझा नहीं जाता।

श्रीरामकृष्ण— 'ताके केऊ चिनालि ना रे! ओ से पागलेर वेशे (दीनहीन कांगालेर वेशे) फिरछे जीवेर घरे घरे' (ओ, उसको तो किसी ने भी नहीं पहचाना भाई! वह जो पागल के वेष में जीव के घर-घर में फिर रहा है)।

मणि— और आपने यीशु की बात कही थी।

श्रीरामकृष्ण— कौन-सी, क्या?

मणि— यदुमल्लिक के बाग में यीशु की छवि देखकर भावसमाधि हो गई थी। आपने देखा था कि यीशु की मूर्ति छवि से आकर आपके भीतर मिल गई।

ठाकुर कुछ काल चुप रहे। तब फिर मणि से और कहते हैं,

''यही जो गले में यह हो गई है, इसका शायद कुछ अर्थ है। सब लोगों के निकट कहीं फिर हलकामी (हलकापन) न कर बैठूँ! और कुछ भी न हो, तो भी जहाँ-कहीं नाचना-गाना तो हो जाता है।''

ठाकुर द्विज की बात कहते हैं। कह रहे हैं,

''द्विज नहीं आया?''

मणि— आने के लिए कहा था। आज आने की बात तो थी किन्तु क्यों नहीं आया, कह नहीं सकता।

श्रीरामकृष्ण— उसका खूब अनुराग है। अच्छा, वह यहाँ का एक कोई होगा ना (अर्थात् सांगोपांगों के मध्य में एकजन होगा)!

मणि— जी हाँ, वही होगा, वह न हो तो इतना अनुराग!

मणि मसहरी के भीतर जाकर ठाकुर को हवा करते हैं।

ठाकुर थोड़ी करवट लेकर फिर और बातें कर रहे हैं। मनुष्य के भीतर वे अवतीर्ण होकर लीला करते हैं— यही बात होती है।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारा वही घर है। मुझे पहले रूप-दर्शन नहीं होता था, ऐसी अवस्था चली गई है। अब भी देखते हो कि नहीं, फिर दोबारा रूप कम हो रहा है।

मणि— लीला के मध्य में नर-लीला बड़ी अच्छी लगती है।

श्रीरामकृष्ण— वह होने पर ही हुआ। और मुझे देखते हो!

क्या ठाकुर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं कि मेरे भीतर ईश्वर नर-रूप में अवतीर्ण होकर लीला कर रहे हैं?

विंश खण्ड

श्री श्रीविजयादशमी-दिवस में भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुर वाले घर में भक्तों के संग में)

श्री श्रीविजयादशमी। 18 अक्तूबर, 1885 ईसवी। ठाकुर श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुर के घर में हैं। शरीर अस्वस्थ है। कलकत्ते में चिकित्सा कराने आए हुए हैं। भक्तगण सर्वदा ही रहते हैं, ठाकुर की सेवा करते हैं। भक्तों में से अभी किसी ने संसार-त्याग नहीं किया है— वे अपने-अपने घरों से यातायात करते हैं।

(सुरेन्द्र की भक्ति— 'माँ हृदय में रहें')

शीतकाल, प्रातः आठ का समय। ठाकुर अस्वस्थ, बिछौने पर बैठे हुए हैं। किन्तु पाँच वर्ष के बालक की न्यायीं, माँ के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते। सुरेन्द्र आकर बैठ गए। नवगोपाल, मास्टर तथा और भी कोई-कोई उपस्थित हैं। सुरेन्द्र के घर में दुर्गा-पूजा हुई थी। ठाकुर जा नहीं पाए, भक्तों को प्रतिमा-दर्शन करने के लिए भेजा था। आज विजया है, तभी सुरेन्द्र का मन खराब हो रहा है।

सुरेन्द्र— घर से भाग आया हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर को)*— (माँ की प्रतिमा पानी में बहा दी गई है) वैसा

चाहे हो। माँ हृदय में रहें!

सुरेन्द्र 'माँ-माँ' करते हुए परमेश्वरी के उद्देश्य से कितनी ही बातें करने लगे।

ठाकुर सुरेन्द्र को देखते-देखते अश्रु-विसर्जन कर रहे हैं। मास्टर की ओर ताकते हुए गद्-गद् स्वर में कह रहे हैं, "कैसी भक्ति है! आहा, इसकी कैसी भक्ति है!"

श्रीरामकृष्ण— कल सात-साढ़े सात के समय देखा तुम्हारा दालान! देव-प्रतिमाएँ रखी हैं। देखा, सब ज्योतिर्मय! यहाँ-वहाँ एक हुआ हुआ है। जैसे एक आलोक का स्रोत दो जगहों के बीच में बह रहा है!— यह घर और तुम लोगों का वह घर!

सुरेन्द्र— मैं तब देवी वाले दालान में माँ, माँ कहकर पुकार रहा था। दादाहर छोड़कर ऊपर चले गए थे। मन में उठा— माँ ने कहा है, 'मैं फिर दोबारा आऊँगी'।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और भगवद्गीता)

अब ग्यारह बजने वाले हैं। ठाकुर ने पथ्य लिया। मणि कुल्ला करने के लिए (ठाकुर के) हाथ में जल दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— चने की दाल खाकर राखाल को असुख हो गया है। सात्त्विक आहार करना अच्छा है। तुमने गीता नहीं देखी? तुम गीता नहीं पढ़ते?

मणि— जी हाँ, युक्ताहार की बात है। सात्त्विक आहार, राजसिक आहार, तामसिक आहार। और सात्त्विक दया, राजसिक दया, तामसिक दया— सात्त्विक अहं इत्यादि सब हैं।

श्रीरामकृष्ण— गीता तुम्हारे पास है?

मणि— जी, है।

श्रीरामकृष्ण— उसमें सर्वशास्त्रों का सार है।

मणि— जी हाँ, ईश्वर को नाना प्रकार से देखने की बात है। आप जैसे कहते

हैं, नाना पथ द्वारा उनके पास जाना— ज्ञान, भक्ति, कर्म, ध्यान।

श्रीरामकृष्ण— कर्मयोग के क्या मायने हैं, जानते हो? सब कर्मों का फल भगवान में समर्पण करना।

मणि— जी, देखा है, उसमें है। कर्म को फिर तीन प्रकार से किया जा सकता है— यह है।

श्रीरामकृष्ण— किस-किस प्रकार से?

मणि— प्रथम, ज्ञान के लिए। द्वितीय, लोकशिक्षा के लिए। तृतीय, स्वभाव से।

ठाकुर आचमन के पश्चात् पान खा रहे हैं। मणि को मुख से पान-प्रसाद दिया।

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण, सर हमफ्रे डेवी और अवतारवाद)

ठाकुर मास्टर के साथ डॉक्टर सरकार की बातें कर रहे हैं। पहले दिन ठाकुर का संवाद लेकर मास्टर डॉक्टर के पास गए थे।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारे साथ क्या-क्या बातें हुईं?

मास्टर— डॉक्टर के घर में बहुत-सी पुस्तकें हैं। मैं एक पुस्तक वहाँ पर बैठा-बैठा पढ़ रहा था। वही सब पढ़कर फिर डॉक्टर को सुनाने लगा। Sir Humphrey Devy (सर हमफ्रे डेवी) की पुस्तक थी। उसमें 'अवतार के प्रयोजन' की बात है।

श्रीरामकृष्ण— क्या? तुमने क्या बात बताई थी?

मास्टर— एक बात है, ईश्वर की वाणी मनुष्य के भीतर से न आए तो मनुष्य समझ नहीं सकता (Divine Truth must be made human Truth to be appreciated by us). जभी अवतार आदि का प्रयोजन है।

श्रीरामकृष्ण— वाह, यह समस्त तो सुन्दर बात है!

मास्टर— साहब ने उपमा दी है, जैसे सूर्य की ओर देखा नहीं जाता, किन्तु सूर्य का प्रकाश जहाँ पर पड़ता है (reflected rays), उस ओर देखा जाता है।

श्रीरामकृष्ण— सुन्दर बात है। और कुछ है?

मास्टर— और एक स्थान पर था, यथार्थ ज्ञान तो है विश्वास।

श्रीरामकृष्ण— यह तो बहुत अच्छी बात है। विश्वास हो तो सब हो ही गया।

मास्टर— साहब ने फिर स्वप्न में देखे थे रोमन देव-देवियाँ।

श्रीरामकृष्ण— ऐसी ये किताबें बन गई हैं? वे ही (ईश्वर) वहाँ पर काम कर रहे हैं। और कुछ बात हुई?

(श्रीरामकृष्ण और 'जगत का उपकार' अथवा कर्मयोग)

मास्टर— वे कहते हैं, जगत का उपकार करेंगे। तभी मैंने आपकी बात कही।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्या बात?

मास्टर— शम्भुमल्लिक की बात। उसने आपसे कहा था, 'मेरी इच्छा है कि रुपये द्वारा कुछ हस्पताल-डिसपेन्सरी, स्कूल इत्यादि कर दूँ। इन से अनेकों का उपकार होगा!' आपने उनसे जो कहा था, वही कहा था, 'यदि ईश्वर सम्मुख आएँ, तो तुम क्या कहोगे— मुझे कुछ हस्पताल-डिस्पेन्सरी, स्कूल बनवा दो?' और एक बात कही थी।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वह श्रेणी अलग है, जो कर्म करने आती है। और क्या बात?

मास्टर— कहा था, काली-दर्शन यदि उद्देश्य हो, तो फिर रास्ते में केवल फकीर को विदा करने से क्या होगा? वरन् जिस किसी तरह से भी करके एक बार काली-दर्शन कर लो; उसके बाद जितने भी फकीर विदा करने की इच्छा हो, करो।

श्रीरामकृष्ण— और कुछ बात हुई?

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण के भक्त और काम-जय)

मास्टर— आपके पास जो आते हैं— उनमें से बहुतों ने ही काम-जय कर लिया है, यही बात हुई। डॉक्टर ने तब कहा, 'मेरा भी काम-टाम उठ गया है, जानते हो!' मैंने कहा था, 'आप तो बड़े व्यक्ति हैं। आपने जो काम-जय कर लिया है, कहते हो, उसमें आश्चर्य नहीं। क्षुद्र प्राणियों तक का उनके पास रहने से इन्द्रिय-जय हो रहा है, यही आश्चर्य है।' फिर मैंने बताया, जो आपने गिरीश घोष को कहा था।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्या कहा था?

मास्टर— आपने गिरीश घोष से कहा था, 'डॉक्टर तुम से आगे नहीं जा सका'। वही अवतार वाली बात।

श्रीरामकृष्ण— तुम अवतार की बात उससे (डॉक्टर से) कहना। अवतार— जो तारण करते हैं। वैसे दस अवतार हैं, चौबीस अवतार हैं, और फिर असंख्य अवतार हैं।

(मद्यपान क्रमशः बिलकुल त्याग)

मास्टर— (डॉक्टर) गिरीश घोष की बड़ी खबर लेते हैं। यही पूछते रहते हैं कि गिरीश घोष ने क्या बिलकुल मद छोड़ दी है? उसके ऊपर उनकी बड़ी नजर है।

श्रीरामकृष्ण— तुमने गिरीश घोष से वह बात कही थी?

मास्टर— जी हाँ, कही थी। और मद बिलकुल छोड़ देने की बात।

श्रीरामकृष्ण— वह क्या बोला?

मास्टर— वे बोले, तुम लोग जब कहते हो तब इसे ठाकुर की बात जान कर मानता हूँ, किन्तु फिर जोर देकर कोई बात नहीं कहूँगा।

श्रीरामकृष्ण *(आनन्द के साथ)*— कालीपद ने कहा है, उसने तो बिलकुल सब छोड़ दिया है।

तृतीय परिच्छेद

(नित्यलीला-योग)
(Identity of the Absolute or the Universal Ego and the phenomenal world)

तीसरा प्रहर हो गया है, डॉक्टर आए हैं। अमृत (डॉक्टर का पुत्र) और हेम डॉक्टर के संग आए हैं। नरेन्द्र आदि भक्तगण भी उपस्थित हैं।

ठाकुर अमृत से अकेले बातें कर रहे हैं। पूछते हैं,
'तुम्हारा क्या ध्यान होता है?'

और कह रहे हैं—
''ध्यान की अवस्था कैसी है, जानते हो? मन-तैल धारावत् हो जाता है। एक चिन्ता, ईश्वर की; अन्य कोई चिन्ता उसके भीतर नहीं आएगी?'

अब ठाकुर सबके संग बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— तुम्हारा बेटा अवतार नहीं मानता। वह अच्छी बात है। ना ही माने चाहे!

''तुम्हारा लड़का बढ़िया है। वैसा नहीं होगा? बम्बईया आम के वृक्ष पर क्या टोको आम होता है? उसका ईश्वर पर कैसा विश्वास है! जिसका ईश्वर पर मन है, वही तो है मनुष्य— और मनहोश। जिसको होश है, चैतन्य है, जो निश्चित जानता है कि ईश्वर सत्य है और सब अनित्य— वही है मनहोश। वह अवतार नहीं मानता, उसमें दोष क्या?

''ईश्वर। और यह सब जीव-जगत, उनका ऐश्वर्य!— यह मान लेने से ही हुआ। जैसे बड़ा व्यक्ति और उसका बाग।

''इस प्रकार कहते हैं, दस अवतार— चौबीस अवतार, और फिर असंख्य अवतार। जहाँ पर उनकी विशेष शक्ति का प्रकाश है, वहाँ पर ही अवतार है— वैसा तो मेरा मत है।

''और एक है— जो कुछ देखते हो, सब वे ही हुए हैं। जैसे बेल— बीज,

खोल और गूदा तीनों को मिलाकर एक। जिनका नित्य है, उनकी ही लीला है; जिनकी लीला, उनका ही नित्य। नित्य को छोड़कर केवल लीला समझ में नहीं आती। 'लीला है'— इसे छोड़ते-छोड़ते फिर नित्य में पहुँचा जाता है।

"अहंबुद्धि जब तक रहती है, तब तक लीला छोड़ी ही नहीं जाती। नेति-नेति करके ध्यानयोग के भीतर से नित्य में पहुँच सकता है। किन्तु कुछ छोड़ा जाने वाला नहीं है। जैसे मैंने कहा— बेल।"

डॉक्टर— ठीक बात है।

श्रीरामकृष्ण— कच निर्विकल्प-समाधि में थे। जब समाधि भंग हुई तो किसी ने पूछा, तुम अब क्या देखते हो? कच बोले, देख रहा हूँ कि जगत जैसे उनमें जुड़ा है। वे ही परिपूर्ण! जो कुछ देख रहा हूँ, सब वे ही हुए हैं। इसमें से कौन-सा फेंक दूँ, कौन-सा लूँ— निश्चय नहीं कर पा रहा।

"क्या है, जानते हो? नित्य और लीला-दर्शन करके दास-भाव में रहना। हनुमान ने साकार-निराकार-साक्षात्कार किया था। उसके बाद दास-भाव में— भक्त के भाव में थे।"

मणि *(स्वगत)*— नित्य और लीला— दोनों ही लेने होंगे। जर्मनी में वेदान्त जाने की अवधि से यूरोपीय पण्डितों का किसी-किसी का यही मत है। किन्तु ठाकुर कहते हैं, सब त्याग— कामिनी-काञ्चन-त्याग बिना हुए नित्य, लीला का साक्षात्कार नहीं होता। ठीक त्याग। सम्पूर्ण अनासक्ति। बस इतना-सा ही हेगेल आदि पण्डितों के संग विशेष अन्तर देखता हूँ।

चतुर्थ परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और अवतारवाद)

(Reconciliation of free-will and predestination)

डॉक्टर कहते हैं, ईश्वर ने हमारी सृष्टि की है, और हमारी सबकी आत्मा (soul) अनन्त उन्नति करेगी। एक जन अन्य एक की अपेक्षा बड़ा है, यह बात वे मानना नहीं चाहते। तभी अवतार नहीं मानते।

डॉक्टर— Infinite progress (अनन्त उन्नति)! वह यदि न हो तो पाँच वर्ष, सात वर्ष और बचकर क्या होगा! गले में रस्सी लगा लूँगा!

"अवतार फिर और क्या है! जो मनुष्य हगता, मूतता है, उसके चरणों में नत होऊँगा? हाँ, किन्तु Reflection of God's light (ईश्वर की ज्योति) मनुष्य में प्रकाशित होकर रहती है, यह तो मानता हूँ।

गिरीश *(सहास्य)*— आपने God's light (ईश्वर की ज्योति) देखी नहीं!

डॉक्टर उत्तर देने के पहले थोड़ा इतस्ततः (इधर-उधर) कर रहे हैं। निकट एक मित्र बैठे थे, धीरे-धीरे कुछ कहा।

डॉक्टर— आपने वह तो प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा।

गिरीश— I see it! I see the light! (मैं इसे देखता हूँ! मैं प्रकाश देख रहा हूँ!) श्रीकृष्ण जो अवतार हैं, prove (प्रमाणित) करूँगा— वह न हो तो जीभ काट डालूँगा।

(विकार-रोगी का ही विचार होता है— पूर्णज्ञान में विचार बन्द हो जाता है)

श्रीरामकृष्ण— ये जो समस्त बातें हुई हैं, यह कुछ भी नहीं है।

"वह तो विकार के रोगी का ख्याल मात्र है। विकार के रोगी ने कहा था— एक घड़ा जल पिऊँगा, एक हाण्डी भात खाऊँगा। वैद्य ने कहा, अच्छा! अच्छा! खा-पी लिओ। पथ्य खाकर जो कहेगा, तब किया जाएगा।

"जब तक घी कच्चा, तब तक ही कलकलानि (कलकल) सुनी जाती है। पक जाने पर फिर शब्द नहीं रहता। जिसका जैसा मन होता है, ईश्वर को उसी रूप में देखता है। मैंने देखा है, बड़े व्यक्ति के घर की छवियाँ— क्वीन (राणी) की छवि इत्यादि होती हैं। और फिर भक्त के घर की— देवताओं की छवियाँ।

"लक्ष्मण ने कहा था, राम! जो स्वयं वशिष्ठ ऋषि हैं, उनको भी फिर पुत्रशोक! राम ने कहा, भाई जिसको ज्ञान है, उसको अज्ञान भी है। जिसे

आलोक का बोध है, उसे अन्धकार का बोध भी है। जभी ज्ञान–अज्ञान के पार हो जाओ। ईश्वर को विशेष रूप से जान लेने पर वैसी अवस्था होती है। इसी का नाम है विज्ञान।

"पैर में काँटा चुभ जाने पर और एक काँटा खोज कर लाना चाहिए, लाकर काँटे को निकालना चाहिए। निकालने के पश्चात् दोनों ही काँटों को फेंक देते हैं। ज्ञान काँटे के द्वारा अज्ञान काँटा निकालकर ज्ञान–अज्ञान, दोनों काँटे ही फेंक देने चाहिएँ।

"पूर्णज्ञान का लक्षण है। विचार बन्द हो जाता है। जैसे मैंने कहा है, कच्चा रहने पर ही घी की कलकलानि रहती है।"

डॉक्टर— पूर्णज्ञान कहाँ रहता है? सब ईश्वर है! फिर तुम परमहंसगिरी क्यों करते हो? और ये लोग ही क्यों फिर आकर तुम्हारी सेवा करते हैं? चुप करके क्यों नहीं रहते?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— जल स्थिर रहने पर भी जल है, हिलने–डुलने पर भी जल है, तरंग होने पर भी जल है।

(Voice of God or Conscience— महावत नारायण)

"और एक बात है। अथवा महावत नारायण की बात ही क्यों न सुनूँ? गुरु ने शिष्य को कह दिया था, सब नारायण हैं। पगला हाथी आ रहा था। शिष्य गुरु–वाक्य पर विश्वास करके वहाँ से हटा नहीं। (सोचा) हाथी भी नारायण हैं। महावत ने किन्तु चीत्कार करके कहा था, सब हट जाओ, सब हट जाओ। वह शिष्य नहीं हटा। हाथी उसे पटक कर चला गया। प्राण नहीं गया। मुख में जल डालते–डालते होश आ गया। जब पूछा कि क्यों तुम परे नहीं हटे, वह बोला, 'क्यों, गुरुदेव ने जो कहा है— सब नारायण हैं'! गुरु ने कहा, बेटा! महावत नारायण की बात तब क्यों नहीं सुनी? वे शुद्ध–मन, शुद्ध–बुद्धि बनकर भीतर हैं। मैं यन्त्र, वे यन्त्री। मैं घर, वे घरणी। वे ही महावत नारायण भी हैं'।"

डॉक्टर— और एक बात कहता हूँ। तब फिर क्यों कहते हो, इसे (गले की गुठली को) हटा दो?

श्रीरामकृष्ण— जब तक 'मैं'-घट है, तब तक इसी प्रकार होता है। कल्पना करो कि महासमुद्र है— नीचे से ऊपर तक परिपूर्ण। उसके भीतर एक घट है। घट के अन्दर-बाहर जल है। किन्तु घट बिना फूटे ठीक एकाकार नहीं होता। उन्होंने ही यह 'मैं'-घट रख दिया है।

(मैं कौन ?)

डॉक्टर— किन्तु यह 'मैं' जो कहते हो, ये सब क्या है? इसका तो अर्थ बताना होगा। वे क्या हमारे साथ चालाकी कर रहे हैं?

गिरीश— महाशय, आप ने कैसे जाना कि यह चालाकी नहीं है?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— इस 'मैं' को उन्होंने ही रख दिया है। उनका खेल, उनकी लीला! एक राजा के चार बेटे हैं पर खेल कर रहे हैं— कोई मन्त्री, कोई कोतवाल बना है, ऐसे ही सब बनते हैं। राजा के बेटे होकर कोतवाल, कोतवाल खेल रहे हैं।

(डॉक्टर के प्रति)— "सुनो! तुम्हारा यदि आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है, तो फिर यह समस्त मानना पड़ता है। उनका दर्शन होने पर सब संशय चले जाते हैं।"

(Sonship and the Father— ज्ञानयोग और श्रीरामकृष्ण)

डॉक्टर— सब सन्देह कहाँ जाते हैं?

श्रीरामकृष्ण— मेरे पास से यहाँ तक सुन जाओ। उसके पश्चात् और अधिक कुछ सुनना चाहो, उनके निकट अकेले-अकेले कहो। उनसे जिज्ञासा करो— क्यों उन्होंने ऐसा किया हुआ है!

"लड़का भिखारी को एक कुनके* (पात्र) चावल दे सकता है। रेल-भाड़ा यदि देना हो तो मालिक को बताना पड़ता है।" (डॉक्टर चुप हैं।)

"अच्छा, तुम विचार पसन्द करते हो। कुछ विचार करता हूँ, सुनो—

---

* कुनके = कुनिया= धान आदि नापने का बेंत आदि का बना पात्र।

ज्ञानी के मत में अवतार नहीं होता। कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, तुम मुझे अवतार, अवतार कहते हो। तुम्हें एक वस्तु दिखाता हूँ, देखोगे? आओ। अर्जुन साथ-साथ गए। थोड़ी दूर जाकर अर्जुन से बोले, 'क्या देख रहे हो?' अर्जुन बोले, 'एक वृहत् वृक्ष, काले जामुन के गुच्छे के गुच्छे लगे हुए हैं।' श्रीकृष्ण ने कहा, 'वे काले जामुन नहीं है। थोड़ा-सा और आगे बढ़कर देखो।' तब अर्जुन ने देखा, 'गुच्छे के गुच्छे कृष्ण फले हुए हैं'। कृष्ण ने कहा, 'अब देख लिया? मेरे जैसे कितने कृष्ण फले हुए हैं'!

''कबीर दास ने श्रीकृष्ण की बात पर कहा था, तुमने गोपियों की ताली पर बन्दर-नाच किया था।

''जितना आगे बढ़ोगे भगवान की उतनी ही कम उपाधि देख पाओगे! भक्त ने प्रथम दर्शन किए दसभुजा। और आगे जाकर देखा छः भुजा (षड्भुज)। और भी आगे जाकर देखता है दो भुज (द्विभुज) गोपाल! जितना आगे बढ़ता है उतना ही ऐश्वर्य कम होता जाता है। और भी आगे जाने पर, तब ज्योति-दर्शन किया— कोई भी उपाधि नहीं।

''थोड़ा-सा वेदान्त का विचार सुनो। एक राजा के सामने कोई जादू दिखाने के लिए आया था। उसके (जादूगर के) थोड़ा-सा हट जाने पर राजा ने देखा, कोई सवार आ रहा है। घोड़े के ऊपर चढ़ा हुआ, खूब सजा-सँवरा— हाथ में अस्त्र-शस्त्र। सारी सभा के लोग और राजा विचार करते हैं, इसमें क्या सत्य है? घोड़ा तो सत्य नहीं, साज-शृंगार, अस्त्र-शस्त्र भी सत्य नहीं। अन्त में सचमुच देखा कि सवार अकेला खड़ा हुआ है। क्योंकि ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या— विचार करने लगने पर कुछ भी नहीं टिकता।''

डॉक्टर— इसमें मुझे आपत्ति नहीं।

(The world (संसार) and the scare-crow)

श्रीरामकृष्ण— किन्तु यह भ्रम सहज में नहीं जाता। ज्ञान के पश्चात् भी रहता है। स्वप्न में बाघ को देखा है, स्वप्न भंग हो गया, तब भी छाती दुड़-दुड़ (धक्-धक्) करती है!

"खेत में चोरी करने के लिए चोर आए। फूस की छवि मनुष्य के आकार की बनाकर रख दी गई थी— डर दिखाने के लिए। चोर किसी तरह भी घुस नहीं पा रहे। एक व्यक्ति ने निकट जाकर देखा— फूस का पुतला है। आकर उन्हें बता दिया— भय नहीं। किन्तु वे आना नहीं चाहते— कहते हैं छाती दुड़-दुड़ कर रही है! तब पुतले को धरती पर लिटा दिया, और कहने लगा, यह कुछ नहीं है, यह कुछ नहीं है, 'नेति-नेति'।"

डॉक्टर— ये सब तो सुन्दर बातें हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ! कैसी बात?

डॉक्टर— सुन्दर।

श्रीरामकृष्ण— एक 'Thank you' (थैंक यू) तो दो।

डॉक्टर— तुम क्या मन का भाव नहीं समझते? और कितना कष्ट करके तुम्हें यहाँ देखने आता हूँ!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— नहीं जी, मूर्ख के लिए कुछ बोलो। विभीषण लंका का राजा नहीं बनना चाहता था। वह बोले, राम! तुम्हें पा लिया है तो अब राज्य लेकर क्या होगा! राम बोले, विभीषण! तुम मूर्खों के लिए राजा होओ। जो कहते हैं, तुमने राम की इतनी सेवा की है, तुम्हारा क्या ऐश्वर्य हुआ? उनकी शिक्षा के लिए राजा होओ।

डॉक्टर— यहाँ पर वैसे मूर्ख कहाँ है?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— नहीं जी, शंख भी हैं और घोंघी-घोंघा भी हैं। *(सब का हास्य)*।

पञ्चम परिच्छेद

(पुरुष-प्रकृति— अधिकारी)

डॉक्टर ने ठाकुर के लिए औषध दी— दो ही globule (गोलियाँ); कहते हैं, ये दोनों ही गोलियाँ देता हूँ— पुरुष और प्रकृति। *(सबका हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, वे एक साथ ही रहते हैं। कबूतरों को देखा नहीं, अन्तर पर रह नहीं सकते। जहाँ पर ही पुरुष है, वहाँ पर ही प्रकृति है; जहाँ पर ही प्रकृति है, वहाँ पर ही पुरुष है।

आज विजया है। ठाकुर ने डॉक्टर को मीठा मुख (मिष्टमुख) करने के लिए कहा। भक्तों ने (मिष्टान्न) लाकर दिया।

डॉक्टर *(खाते-खाते)*— खाद्य के लिए 'Thank you' (थैंक यू) देता हूँ। तुमने जो ऐसा उपदेश दिया है, उसके लिए नहीं। वह 'Thank you' मुख से क्यों कहूँ?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उन पर मन रखना। और क्या कहूँ! और थोड़ा-थोड़ा-सा ध्यान करना। (छोटे नरेन को दिखला कर) देखो, देखो, इसका मन ईश्वर में एकदम लीन हो जाता है। जो सारी बातें तुमसे कही थीं—

डॉक्टर— इन लोगों को सब बताओ।

श्रीरामकृष्ण— जिसके पेट में जो सहन हो! वैसी समस्त बातें क्या सब ही ले सकते हैं? तुमसे कहीं हैं। एक बात है— माँ घर में माछ लाई हैं। सबका पेट समान नहीं है। किसी के लिए पुलाव बना दिया, किसी के लिए मछली का झोल। पेट ठीक नहीं है। *(सबका हास्य)*।

डॉक्टर चले गए। आज विजया है। सब भक्तों ने ठाकुर श्रीरामकृष्ण को साष्टांग प्रणिपात करके उनकी पदधूलि ग्रहण की। तत्पश्चात् परस्पर कोलाकुलि (आलिंगन) करने लगे। आनन्द की सीमा नहीं। ठाकुर का इतना असुख! सब भुला दिया है। प्रेमालिंगन और मिष्टमुख बहुत देर तक हुआ। ठाकुर के पास छोटे नरेन, मास्टर तथा और भी दो-चार भक्त बैठे हैं। ठाकुर आनन्द में बातें कर रहे हैं। डॉक्टर की बात हुई।

श्रीरामकृष्ण— डॉक्टर को और अधिक कुछ नहीं कहना होगा।

"वृक्ष का काटना शेष होने लगने पर जो व्यक्ति काटता है, वह थोड़ा हटकर खड़ा हो जाता है। थोड़े-से समय के पश्चात् वृक्ष अपने-आप ही गिर जाता है।"

छोटे नरेन *(सहास्य)*— सब ही principle (सिद्धान्त) हैं!

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से)*— डॉक्टर बहुत बदल गया है ना!

मास्टर— जी हाँ! यहाँ आने पर हतबुद्धि हो जाते हैं। 'क्या औषध देनी होगी', यह बात बिलकुल ही नहीं उठाते। हमारे याद करवाने पर तब कहते हैं, 'हाँ, हाँ औषध देनी होगी'।

बैठक में भक्तों में से कोई-कोई गाना गा रहे थे।

ठाकुर जिस कमरे में हैं, उनके (भक्तों के) लौटकर उसी कमरे में आने पर ठाकुर कहते हैं, "तुम लोग गाना गा रहे थे, ठीक क्यों नहीं हुआ? कौन-सा एक व्यक्ति बेतालसिद्ध था— यह भी वैसा ही!" *(सब का हास्य)*।

छोटे नरेन का रिश्तेदार लड़का आया है। खूब सजा-संवरा और आँखों पर ऐनक। ठाकुर छोटे नरेन के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— देख, इसी रास्ते में एक लड़का जा रहा था, प्लेटों वाला कुरता पहने। चलने का जो ढंग! एक-एक बार प्लेटों को सामने रखकर वहाँ पर से चादर हटा देता— और फिर इधर-उधर देखता, 'कोई देख रहा है कि नहीं'। चलते समय कमर टेढ़ी। *(सबका हास्य)*। एक बार देखियो तो!

"मोर पंख दिखाता है। किन्तु पैर बड़े गँदे! *(सबका हास्य)*। ऊँट बड़ा कुत्सित, उसका सब कुछ ही कुत्सित।"

नरेन का रिश्तेदार— किन्तु आचरण अच्छा है।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा तो! किन्तु काँटेदार घास खाता है— मुख से रक्त गिरता है, तब भी खाता है! संसारी अभी-अभी लड़का मरता है और फिर लड़का-लड़का करता है!

एकविंश खण्ड

श्यामपुकुर के घर में श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलकत्ता में श्यामपुकुर के घर में भक्तों के संग में)

शुक्रवार, आश्विन के कृष्णपक्ष की सप्तमी; 15वाँ कार्त्तिक; 30 अक्तूबर, 1885 ईसवी। श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुर में चिकित्सार्थ आए हैं। दुमंजिल वाले कमरे में हैं; समय 9 का है। मास्टर के साथ अकेले बातें कर रहे हैं। मास्टर डॉक्टर सरकार के पास जाकर पीड़ा की खबर देंगे और उन्हें साथ लाएँगे। ठाकुर का शरीर इतना अस्वस्थ है, किन्तु केवल भक्तों के लिए चिन्ता है!

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति, सहास्य)*— आज प्रातः पूर्ण आया था। सुन्दर स्वभाव है। मणीन्द्र का प्रकृति-भाव है। कैसा आश्चर्य! चैतन्य-चरित्र पढ़कर मन में यही धारणा हुई है— गोपी-भाव, सखी-भाव; ईश्वर पुरुष हैं और मैं जैसे प्रकृति हूँ।

मास्टर— जी हाँ।

पूर्णचन्द्र स्कूल का लड़का है, वयस् 15-16 है। पूर्ण को देखने के लिए ठाकुर बड़े व्याकुल हो जाते हैं, किन्तु घर वाले आने नहीं देते। देखने के लिए प्रथम-प्रथम इतने व्याकुल हो गए थे कि एक दिन रात के समय दक्षिणेश्वर से हठात् मास्टर के घर आ पहुँचे थे। मास्टर ने पूर्ण को घर से अपने साथ लाकर उन्हें मिला दिया था। ईश्वर को किस प्रकार

पुकारना चाहिए— उसके साथ इसी प्रकार की बहुत-सी बातचीत करके ठाकुर दक्षिणेश्वर लौट गए थे।

मणीन्द्र की वयस् भी 15-16 होगी। भक्तगण इन्हें 'खोका' (काका) कहकर पुकारते थे, अब भी पुकारते हैं। लड़का भगवान का नाम-गुणगान सुनकर भाव में विभोर होकर नृत्य किया करता।

द्वितीय परिच्छेद

(डॉक्टर और मास्टर)

समय 10-10.30 का। डॉक्टर सरकार के घर मास्टर गए हैं। रास्ते पर दो तल की बैठक के कमरे का बरामदा, वहाँ पर ही डॉक्टर के साथ काष्ठासन (लकड़ी के तख्त) पर बैठकर बातें कर रहे हैं। डॉक्टर के सम्मुख काँच के पात्र में जल है, उसमें लाल मछलियाँ खेल रही हैं। डॉक्टर बीच-बीच में इलायची का छिलका जल में फेंक देते हैं। कभी-कभी मैदे की गोलियाँ बटकर खुली छत की ओर गौरैया पक्षियों के आहार के लिए डाल देते हैं। मास्टर देख रहे हैं।

डॉक्टर *(मास्टर के प्रति, सहास्य)*— यह देखो, ये (लाल मछलियाँ) मेरी ओर देख रही हैं, किन्तु उस ओर जो इलायची का छिलका मैंने फेंक दिया है, उसे नहीं देखतीं। जभी कहता हूँ, केवल भक्ति से क्या होगा, ज्ञान चाहिए। *(मास्टर का हास्य)*। उन्हें देखो, चिड़ियाँ उड़ गईं; मैदे की गोलियाँ डाली थीं, उन्हें देखकर भय हुआ। उन्हें भक्ति नहीं हुई, ज्ञान ना होने के कारण। जानती नहीं कि खाने की वस्तु है।

डॉक्टर बैठकखाने में आकर बैठ गए। चारों ओर अलमारियों में स्तूपाकार पुस्तकें हैं। डॉक्टर थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। मास्टर पुस्तकें देख रहे हैं और किसी-किसी को लेकर पढ़ते हैं। अन्त में कुछ देर तक पढ़ते रहे— Canon Farrar's Life of Jesus (कैनन फैरर की यीशु की जीवनी)।

डॉक्टर बीच-बीच में बातें करते हैं। कितने कष्ट से होम्योपैथिक हॉस्पिटल

हुआ था, उसी के सब व्यापार सम्बन्धी चिट्ठी-पत्र पढ़ने के लिए कहा और बोले कि, ''वे सब पत्र 1876 ईसवी के 'कलकत्ता जरनल ऑफ मैडिसन' में मिलेंगे।'' डॉक्टर का होम्योपैथी के ऊपर खूब अनुराग है।

मास्टर ने और एक पुस्तक बाहर निकाली है, Munger's New Theology (मुंगर का नया धर्मशास्त्र)। डॉक्टर ने देख लिया।

डॉक्टर— Munger ने युक्ति, विचार के ऊपर सुन्दर सिद्धान्त दिए हैं। तुम्हारे चैतन्य ने अमुक बात कही है, बुद्ध ने क्या कहा है, यीशुक्राइस्ट ने क्या कहा है— तभी विश्वास करना होगा— इसमें वैसा नहीं है।

मास्टर *(सहास्य)*— चैतन्य, बुद्ध लेता है, तभी वे (Munger) हैं।

डॉक्टर— जो तुम कहते हो, वही सही।

मास्टर— एक व्यक्ति (कोई) कहता तो है। तभी तो वे खड़े हुए। *(डॉक्टर का हास्य)*।

डॉक्टर गाड़ी पर चढ़े, मास्टर भी संग-संग चढ़े। गाड़ी श्यामपुकुर की ओर जा रही है, दोपहर हो गई। दोनों जन बातें करते-करते जा रहे हैं। डॉ० भादुड़ी भी बीच-बीच में ठाकुर को देखने के लिए आते हैं, उनकी ही बात चली।

मास्टर *(सहास्य)*— आपके लिए भादुड़ी ने कहा है, ईंट के टुकड़ों से आरम्भ करना होगा।

डॉक्टर— वह कैसे?

मास्टर— आत्मा, सूक्ष्म शरीर— इन सबको तो आप मानते नहीं। भादुड़ी महाशय लगता है, 'थियोसोफिस्ट' हैं। इसे छोड़, आप अवतार-लीला को नहीं मानते। जभी वे मजाक से कहते हैं, इस बार मनुष्य-जन्म तो होगा ही नहीं; कोई भी जीव, जन्तु, वृक्ष, पौधा, कुछ भी नहीं बन सकेगा। ईंट-रोड़े से आरम्भ करना होगा, फिर अनेक जन्मों के पश्चात् यदि कभी मनुष्य हों!

डॉक्टर— ओ बाबा!

मास्टर— और कहते हैं, आपका जो Science (साइन्स) को लेकर ज्ञान है, वह मिथ्या ज्ञान है। अभी है, अभी नहीं। उन्होंने उपमा भी दी है। दो छोटे

कुएँ हैं। एक छोटे कुएँ का जल नीचे से एक spring (झरने) से आ रहा है। दूसरे छोटे कुएँ का spring (झरना) नहीं है, वर्षा के जल से भर गया है। किन्तु वह जल अधिक दिन तक नहीं रह सकता। आपकी Science (साइन्स) का ज्ञान भी वर्षा के कुएँ के जल की तरह सूख जाएगा।

डॉक्टर *(ईषत् हँसकर)*— ठीक है (यह बात)।

गाड़ी कार्णवालिस स्ट्रीट पर आ उपस्थित हुई। डॉक्टर सरकार ने श्रीयुक्त प्रताप डॉक्टर को ले लिया। वे गतकल ठाकुर को देखने गए थे।

तृतीय परिच्छेद

(डॉक्टर सरकार के प्रति उपदेश— ज्ञानी का ध्यान)

ठाकुर उसी दुमंजिले कमरे में बैठे हैं— कई भक्तों के संग। डॉक्टर सरकार एवं (डॉक्टर) प्रताप के साथ बातें कर रहे हैं।

डॉक्टर *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— काशी (खाँसी) फिर हो गई? *(सहास्य)* किन्तु 'काशी' में जाना अच्छा है *(सबका हास्य)*!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उससे तो मुक्ति होती है जी! मैं मुक्ति नहीं चाहता, भक्ति चाहता हूँ। *(डॉक्टर और भक्तगण हँसते हैं)*।

श्रीयुक्त प्रताप डॉक्टर भादुड़ी के जमाई हैं। ठाकुर प्रताप को देखकर भादुड़ी के गुणगान कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(प्रताप से)*— आहा, वे कैसे व्यक्ति हैं! ईश्वर-चिन्तन, शुद्धाचार और निराकार-साकार— सब भाव लिए हुए हैं।

मास्टर की बड़ी इच्छा है कि ईंट-रोड़ी की बात फिर एक बार हो। वे छोटे नरेन से धीरे-धीरे, अथच ठाकुर जिससे सुन सकें— ऐसे भाव से कहते हैं, ''ईंट-रोड़ी की बात जो भादुड़ी ने कही है, याद है?''

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, डॉक्टर के प्रति)*— और तुम्हारे लिए क्या कहा है,

जानते हो? तुम यह सब विश्वास नहीं करते, मन्वन्तर के पश्चात् तुम्हें ईंट-रोड़ी से आरम्भ करना होगा। *(सबका हास्य)*।

डॉक्टर *(सहास्य)*— ईंट-रोड़ी से आरम्भ करके कितने ही जन्मों के बाद यदि मनुष्य हो जाऊँ, फिर यहाँ आने पर तो फिर से ईंट-रोड़ी से आरम्भ करना होगा। *(डॉक्टर और सबका हास्य)*।

ठाकुर इतने अस्वस्थ हैं, तब भी उनको ईश्वरीय भाव हो जाता है और वे ईश्वर की कथा सर्वदा कहते हैं, ये ही बातें होती हैं।

प्रताप— कल देख गया था, भावावस्था।

श्रीरामकृष्ण— वह अपने-आप हो गई थी— अधिक नहीं।

डॉक्टर— बातें और भाव अब ठीक नहीं हैं।

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— कल जो भावावस्था हुई थी, उसमें तुम्हें देखा था। देखा, ज्ञान का आकर (खान)— किन्तु एकदम शुष्क है, आनन्दरस नहीं मिला। *(प्रताप के प्रति)* ये (डॉक्टर) यदि एक बार आनन्द पा लें तो नीचे-ऊपर सब आनन्द से परिपूर्ण देखें। और 'मैं जो कहता हूँ वही ठीक है, तथा दूसरा जो कहता है ठीक नहीं', ऐसी बातें तो फिर और न कहेंगे। तब चिल्ला कर (हाऊ-माँऊ करके) लट्ठमार बातें फिर इनके मुख से नहीं निकलेंगी!

(जीवन का उद्देश्य— पूर्वकथा— नागा का उपदेश)

भक्तगण सब चुप हैं, हठात् ठाकुर श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर डॉक्टर सरकार से कह रहे हैं—

''महेन्द्रबाबू, क्या रुपया-रुपया करते हो! स्त्री, स्त्री!— मान, मान, कहते हो! वे सब अब छोड़कर, एकचित्त होकर ईश्वर में मन दो!— यही आनन्द भोग करो।''

डॉक्टर सरकार चुप किए हुए हैं। सब ही चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण— ज्ञानी के ध्यान की बात नागा बताया करता था। जल ही जल है, नीचे-ऊपर परिपूर्ण! जीव जैसे मीन (मछली) है, जल में आनन्द में तैर

रही है। ठीक ध्यान होने पर सचमुच यही देखेगा।

"अनन्त समुद्र है, जल की भी सीमा नहीं। उसके भीतर जैसे एक घट है। बाहर-भीतर जल है। ज्ञानी देखता है— अन्तर-बाहर वही परमात्मा हैं। तो फिर घट क्या है? घट होने के कारण जल दो भागों में दिखाई देता है, अन्तर-बाहर बोध होता है। 'मैं'-घट रहने पर ही ऐसा बोध होता है। वही 'मैं' ही यदि चली जाती है, तो फिर तो जो है, वही है— मुख से कहा जाने वाला कुछ नहीं।

"ज्ञानी का ध्यान और किस प्रकार का है, जानते हो? अनन्त आकाश है, उसमें पक्षी आनन्द में उड़ रहा है, पंख फैलाकर। चिदाकाश, आत्मा पक्षी। पक्षी पिंजरे में नहीं है, चिदाकाश में उड़ रहा है। आनन्द नहीं समाता।*"

भक्तगण अवाक् होकर ध्यानयोग की ये बातें सुन रहे हैं। कुछ क्षण पश्चात् प्रताप ने फिर दोबारा बातें आरम्भ कीं।

प्रताप *(सरकार के प्रति)*— सोचने लगो तो सब छाया ही है।

डॉक्टर— छाया यदि कहें तब तो तीन चीजें चाहिएँ— सूर्य, वस्तु और छाया। वस्तु के बिना छाया क्या! इधर कहते हो, God real (ईश्वर सत्य) और फिर Creation unreal ! Creation भी real। (इधर कहते हो ईश्वर सत्य है और फिर जगत मिथ्या! जगत भी सत्य है।)

प्रताप— अच्छा, आरसी (दर्पण) में जैसे प्रतिबिम्ब, वैसे ही मनरूप आरसी पर यह जगत दिखाई देता है।

डॉक्टर— किसी वस्तु के बिना हुए क्या कोई प्रतिबिम्ब होता है?

नरेन— क्यों, ईश्वर वस्तु है! *(डॉक्टर चुप किए रहे।)*

(जगत-चैतन्य और Science (साइन्स)— ईश्वर ही कर्त्ता)

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*—एक बात तो तुमने खूब सुन्दर कही है। भावावस्था तो मन के योग से होती है, यह और किसी ने नहीं कहा। तुम ने

---

* अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि पी.बी. शैले (P.B. Shelley) की 'To a Skylark' तुलनीय है।

ही कहा है।

"शिवनाथ ने कहा था, अधिक ईश्वर-चिन्तन करने से पागल हो जाता है। कहता है, जगत-चैतन्य की चिन्ता करके अचैतन्य हो जाता है। वे बोधस्वरूप है, जिनके बोध से जगत-बोध होता है, उनका चिन्तन करके अबोध!

"और तुम्हारी Science (साइन्स)— यह मिलने पर वह हो जाता है, वह मिलने पर यह होता है— इनकी चिन्ता करने से वरन् बोधशून्य हो सकता है, केवल जड़ वस्तुओं को घोट-घोट कर!

डॉक्टर— इन (जड़ वस्तुओं) में ईश्वर को देखा जा सकता है।

मणि— किन्तु मनुष्य में और भी स्पष्ट दिखाई देता है। और महापुरुष में और भी अधिक स्पष्ट दीखता है। महापुरुष में उनका अधिक प्रकाश है।

डॉक्टर— हाँ, मनुष्य में तो निश्चय देखा जा सकता है!

श्रीरामकृष्ण— उनका चिन्तन करने से अचैतन्य! जिस चैतन्य से जड़ पर्यन्त चेतन हुआ है, हाथ-पाँव-शरीर हिलता है! कहते हैं शरीर हिलता है, किन्तु वे हिल रहे हैं, यह नहीं जानता। कहता है, जल से हाथ जल गया है! जल से कुछ नहीं जलता! जल के भीतर जो उत्ताप है, जल के भीतर जो अग्नि है, उससे ही हाथ जला है!

"पतीली में भात उबलता है। आलू-बैंगन उछल रहे हैं। छोटे लड़के ने कहा, आलू-बैंगन नाच रहे हैं। जानता नहीं कि नीचे आग है! मनुष्य कहता है, इन्द्रियाँ अपने-आप काम कर रही हैं! भीतर जो वही चैतन्य स्वरूप है, यह नहीं सोचता।

डॉक्टर सरकार उठे। अब विदा लेंगे। ठाकुर श्रीरामकृष्ण भी खड़े हो गए।

डॉक्टर— विपद में मधुसूदन। स्वेच्छा से 'तुंहु तुंहु' कहना। गले में यही हुआ है न, तभी। तुम जैसे कहते हो, अब धुनिये के हाथ में पड़े हो, धुनिये से ही कहो। तुम्हारी ही बात है।

श्रीरामकृष्ण— और क्या कहूँगा!

डॉक्टर— क्यों नहीं कहोगे? उनकी गोद में रहता हूँ, गोद में हगता हूँ और

बीमारी होने पर उनसे नहीं कहूँगा तो फिर किस से कहूँगा?

श्रीरामकृष्ण— ठीक-ठीक। कभी-कभी कहता हूँ, फिर होता नहीं।

डॉक्टर— फिर कहना ही अथवा क्यों होगा, वे क्या नहीं जानते?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— कोई मुसलमान नमाज करते-करते 'हो अल्लाह' 'हो अल्लाह' कह कर चीत्कार करके पुकार रहा था। उसे किसी व्यक्ति ने कहा, तू अल्लाह को पुकारता है तो इतना चिल्ला क्यों रहा है? वे तो च्युँटी के पैर के नूपुर को भी सुन लेते हैं!

(योगी का लक्षण— योगी अन्तर्मुख— भक्त बिल्वमंगल)

श्रीरामकृष्ण— उनमें जब मन का योग हो जाता है, तब ईश्वर को खूब निकट देखता है। हृदय के मध्य में देखता है।

"किन्तु एक विशेष बात है, जितना यह योग होगा उतना ही बाहर की वस्तु से मन हट जाएगा। भक्तमाल में एक भक्त (बिल्वमंगल) की बात है। वह वेश्यालय जाता था। एक दिन बहुत रात को जा रहा था। घर में बाप-माँ का श्राद्ध हुआ था तभी देरी हो गई! श्राद्ध का खाना वेश्या को देने के लिए हाथ में ले जा रहा था। उसका वेश्या की ओर मन इतना एकाग्र था कि किसके ऊपर से होकर जा रहा है, यह तक भी होश नहीं था। मार्ग में एक योगी आँखें बन्द किए ईश्वर-चिन्तन कर रहा था, उसके शरीर के ऊपर पाँव देकर चलने लगा। योगी क्रोध से बोला, 'क्या तू देख नहीं सक रहा? मैं ईश्वर का चिन्तन कर रहा हूँ, तू शरीर के ऊपर से चला जा रहा है?' तब उस व्यक्ति ने कहा, 'मुझे माफ करें। किन्तु एक बात पूछता हूँ, वेश्या की चिन्ता करके मुझे होश नहीं है, और आप ईश्वर-चिन्ता कर रहे हैं, आपको बाहर की होश पूरी है! यह कैसी ईश्वर-चिन्ता है!' वह भक्त अन्त में गृहस्थ छोड़ कर ईश्वर की आराधना में चला गया था! वेश्या से कहा था, तुम मेरी गुरु हो, तुमने सिखाया है कि किस प्रकार ईश्वर में अनुराग करना चाहिए। वेश्या को 'माँ' कह कर त्याग किया था।"

डॉक्टर— यह तान्त्रिक उपासना है। जननी रमणी।

(लोकशिक्षा देना संसारी का अनधिकार)

श्रीरामकृष्ण— देखो, एक कहानी सुनो। एक राजा था। एक पण्डित से वह राजा रोज भागवत सुना करता था। प्रतिदिन भागवत पढ़ने के पश्चात् पण्डित राजा से कहता— राजा, समझ गए? राजा भी रोज कहता— तुम पहले समझो! भागवत का पण्डित नित्य घर में जाकर सोचता था कि राजा नित्य ऐसी बात क्यों कहता है! मैं रोज इतना करके समझाता हूँ और राजा उल्टे कहता है, तुम पहले समझो! यह क्या हुआ! वह पण्डित साधन-भजन भी किया करता था। कुछ दिन बाद उसे होश हुआ कि ईश्वर ही वस्तु है, और गृह, परिवार, धन, जन, मान— सब अवस्तु है। संसार में सब मिथ्या बोध हो जाने पर उसने गृहस्थ त्याग कर दिया। जाते समय केवल एक व्यक्ति से कह गया— राजा से कह दो, अब मैं समझ गया हूँ।

"और एक कहानी सुनो। किसी को एक भागवत के पण्डित का प्रयोजन हुआ था— पण्डित आकर नित्य श्रीमद्‌भागवत की कथा सुनाएगा। किन्तु भागवत का पण्डित नहीं मिलता। बहुत खोज के पश्चात् किसी व्यक्ति ने आकर कहा— महाशय, एक उत्कृष्ट भागवत का पण्डित मिला है। उसने कहा, वह तो सुन्दर हुआ, उनको लाओ! उस व्यक्ति ने कहा, किन्तु एक गड़बड़ है। उसके कई हल और बैल हैं, उनमें समस्त दिन व्यस्त रहता है, खेतीबाड़ी देखनी होती है, तनिक भी तो अवसर नहीं है। जिसे भागवत के पण्डित की आवश्यकता थी तब वह बोला, ओ भाई! जिसके हल और बैल हैं, भागवत का ऐसा पण्डित मुझे नहीं चाहिए। मुझे ऐसा व्यक्ति चाहिए जिसे अवसर है, और मुझे हरि-कथा सुना सके।
(डॉक्टर के प्रति) समझे?

डॉक्टर चुप किए रहे।

(केवल पाण्डित्य और डॉक्टर)

श्रीरामकृष्ण— क्या जानते हो कि केवल पाण्डित्य से क्या होगा? पण्डित लोग बहुत कुछ जानते-सुनते हैं— वेद, पुराण, तन्त्र। किन्तु कोरे पाण्डित्य से

क्या होगा? विवेक-वैराग्य चाहिए। विवेक, वैराग्य यदि हो तो तब ही उसकी बात सुनी जा सकती है। जिन्होंने संसार को सार किया हुआ है, उनकी बात लेकर क्या होगा!

"गीता पढ़ने से क्या होता है?— दस बार 'गीता-गीता' बोलने से जो होता है। 'गीता-गीता' बोलते-बोलते 'त्यागी' हो जाता है। संसार में कामिनी-काञ्चन में से जिसकी आसक्ति का त्याग हो गया है, जो ईश्वर में सोलह आना भक्ति दे सका है, वही गीता का मर्म समझा है। गीता की समस्त पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। 'त्यागी-त्यागी' कह सकने पर ही हो जाता है।"

डॉक्टर— 'त्यागी' कहो तो एक 'य' वर्ण लाना पड़ता है।

मणि— किन्तु वह 'य' वर्ण बिना लाए भी चलता है, नवद्वीप गोस्वामी ने ठाकुर से कहा था। ठाकुर पेनेटी में महोत्सव देखने गए थे, वहाँ पर नवद्वीप गोस्वामी से यही गीता की बात कही थी। तब गोस्वामी ने कहा, तग् धातु घञ् से 'ताग' हो जाता है, उसके पीछे इन् प्रत्यय लगाने से तागी हो जाता है, त्यागी और तागी का अर्थ एक है।

डॉक्टर— मुझे किसी ने राधा का अर्थ बताया था! कहा था, राधा का क्या अर्थ है, जानते हो? शब्द को उलट लो अर्थात् 'धारा, धारा'। *(सबका हास्य)*। *(सहास्य)* आज 'धारा' पर्यन्त ही रहे।

चतुर्थ परिच्छेद

(ऐहिक ज्ञान या (Science साइन्स)

डॉक्टर चले गए। ठाकुर श्रीरामकृष्ण के निकट मास्टर आकर बैठे और एकान्त में बातें हो रही हैं— मास्टर डॉक्टर के घर में गए थे, वहाँ जो समस्त बातें हुई थीं—

मास्टर *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— लाल मछलियों को इलायची का छिलका दिया जा रहा था, और गौरैया चिड़ियों को मैदे की गोलियाँ। तब (डॉक्टर)

कहने लगे, 'देखा, उन्होंने इलायची का छिलका देखा नहीं, तभी चली गईं! पहले ज्ञान चाहिए, फिर भक्ति। दो-एक चिड़ियाँ भी मैदे का डेला फेंकते देख उड़ गईं। उन्हें ज्ञान नहीं, जभी भक्ति नहीं हुई।'

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— इस ज्ञान के अर्थ हैं ऐहिक ज्ञान— उनकी science (साइन्स) का ज्ञान।

मास्टर— और फिर बोले, चैतन्य कह गए हैं या बुद्ध कह गए हैं कि यीशुक्राइस्ट कह गए हैं, तभी विश्वास करूँगा— यह नहीं!'

"उनके एक पोता हुआ है— उस पुत्र-बहू की बड़ाई करने लगे। कहा, एक दिन भी घर में देखा नहीं, ऐसी शान्त और लज्जाशीला—"

श्रीरामकृष्ण— यहाँ की बातें सोचता है। धीरे-धीरे श्रद्धा हो रही है। भाई, एकदम अहंकार क्या जाता है! इतनी विद्या, मान! रुपया हुआ है! किन्तु यहाँ (अपनी ओर इंगित करके) की बातों में अश्रद्धा नहीं है।

पञ्चम परिच्छेद

(अवतीर्ण शक्ति या सदानन्द)

समय पाँच। श्रीरामकृष्ण उसी दोतल के कमरे में बैठे हैं। चारों ओर भक्तगण चुप करके बैठे हुए हैं। उनमें बहुत से बाहर के लोग उन्हें देखने आए हैं। कोई भी बात नहीं।

मास्टर पास बैठे हैं। उनके संग अकेले कोई-कोई बात होती है।

ठाकुर कुरता पहनेंगे— मास्टर ने कुरता पहना दिया।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— देखो, अब और बड़ा ध्यान-श्यान नहीं करना पड़ता। अखण्ड एकदम बोध हो जाता है। अब केवल दर्शन।

मास्टर चुप किए हुए हैं। कमरा भी निस्तब्ध है।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर उनसे फिर और एक बात कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, ये लोग जो सबके सब एक आसन पर चुप किए हुए

बैठे हैं, और मुझे देखते रहे हैं— बात नहीं, गान नहीं; इसमें (मुझमें) क्या देख रहे हैं?

ठाकुर क्या इंगित कर रहे हैं कि साक्षात् ईश्वर की शक्ति अवतीर्ण हुई है, जभी इतने लोग आकर्षित हुए हैं; जभी भक्तगण अवाक् होकर उनकी ओर ताक रहे हैं!

मास्टर ने उत्तर दिया— जी, इन सबने आपकी अनेक बातें पहले सुनी हुई हैं, और देख रहे हैं— जो कभी भी ये लोग देख नहीं पाते— सदानन्द, बालक-स्वभाव, निरहंकार, ईश्वर-प्रेम में मतवाला! उस दिन ईशान मुखर्जी के घर आप गए थे, उसी बाहर-के कमरे में आप पायचारी कर रहे थे (टहल रहे थे), मैं भी था, किसी ने आकर आपके लिए कहा— ऐसा 'सदानन्द पुरुष' कहीं भी नहीं देखा।

मास्टर फिर चुप हो गए। घर फिर निस्तब्ध! कुछ काल पश्चात् ठाकुर फिर और मृदुस्वर में मास्टर से कुछ कह रहे हैं—

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, डॉक्टर कैसा हो रहा है? यहाँ की बातें क्या सब ठीक से ले रहा है?

मास्टर— यह अमोघ बीज कहाँ जाएगा, एक बार न एक बार एक ओर जाकर निकलेगा। उस दिन की एक बात पर हँसी आ रही है।

श्रीरामकृष्ण— क्या बात है?

मास्टर— उस दिन (आप) कह रहे थे— यदुमल्लिक खाने के समय व्यञ्जन में नमक हुआ है, नहीं हुआ— यह जान नहीं पाता; इतना अन्यमनस्क है! कोई यदि कह दे कि इस वस्तु में नमक नहीं है तब ऐं, ऐं करके कहता है, 'नून नहीं है'? डॉक्टर ने यह बात सुनी हुई थी। वे भी कहते थे कि मैं भी जो इतना अन्यमनस्क हो जाता हूँ। आपने समझा दिया था कि यह तो विषय-चिन्तन कर-करके अन्यमनस्क होना है, ईश्वर-चिन्तन करके नहीं।

श्रीरामकृष्ण— ये बातें क्या नहीं सोचेंगे?

मास्टर— सोचने के अतिरिक्त फिर क्या! किन्तु नाना कार्य हैं, अनेक बातें भूल जाती हैं। आज भी सुन्दर कहा, जब उन्होंने कहा, 'वह तो तान्त्रिक

उपासना— जननी रमणी।'

श्रीरामकृष्ण— मैंने क्या कहा?

मास्टर— आपने कहा, हल-बैलों वाले भागवती पण्डित की बात *(श्रीरामकृष्ण का हास्य)*। और कही, उसी राजा की बात जो कहा करता था, 'तुम पहले समझो!' *(श्रीरामकृष्ण का हास्य)*।

"और कही, गीता की बात। गीता की सार बात कामिनी-काञ्चन-त्याग—कामिनी-काञ्चन-आसक्ति त्याग। डॉक्टर से आपने कहा कि गृहस्थी होकर (त्यागी बिना हुए) वह फिर और क्या शिक्षा देगा? ऐसा बोध होता है कि वे यह बात समझ नहीं सके हैं। अन्त में 'धारा', 'धारा' कहकर बात को टाल कर चले गए।"

ठाकुर भक्तों के लिए चिन्ता कर रहे हैं— पूर्ण बालक भक्त हैं, उनके लिए। मणीन्द्र भी बालक भक्त हैं, ठाकुर ने उनको पूर्ण के संग आलाप करने के लिए भेज दिया!

षष्ठ परिच्छेद

(श्री राधाकृष्ण-तत्त्वप्रसंग में— 'सब सम्भव', नित्यलीला)

सन्ध्या हो गई है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण के कमरे में आलोक जल रहा है। कई भक्त और जो लोग ठाकुर को देखने आए हुए हैं, वे उसी कमरे में कुछ दूर बैठे हैं। ठाकुर अन्तर्मुख हैं, बातें नहीं कर रहे। कमरे के मध्य में जो हैं, वे भी ईश्वर का चिन्तन करते-करते मौन हैं।

कुछ क्षण पश्चात् नरेन्द्र एक मित्र को साथ लेकर आए। नरेन्द्र बोले, ये मेरे मित्र हैं, इन्होंने कई ग्रन्थ रचे हैं, इन्होंने 'किरणमयी' लिखी है।

'किरणमयी' के लेखक ने प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। ठाकुर के संग बातें करेंगे।

नरेन्द्र— इन्होंने राधा-कृष्ण के विषय में लिखा है।

श्रीरामकृष्ण *(लेखक के प्रति)*— क्या लिखा है भाई, ज़रा कहो, देखूँ।

लेखक— राधा-कृष्ण ही परब्रह्म, ऊँकार के बिन्दुस्वरूप। उन्हीं राधा-कृष्ण परब्रह्म से महाविष्णु, महाविष्णु से पुरुष-प्रकृति— शिव-दुर्गा।

श्रीरामकृष्ण— सुन्दर! नित्यराधा नन्दघोष ने देखी थी। प्रेमराधा ने वृन्दावन में लीला की थी, कामराधा थी चन्द्रावली।

"कामराधा, प्रेमराधा। और भी आगे बढ़ने पर नित्यराधा। प्याज छीलने पर पहले लाल छिलका, उसके पश्चात् (ईषत्) हल्का लाल, फिर सफेद, फिर तो छिलका मिलता ही नहीं। यही है नित्यराधा का स्वरूप— जहाँ पर नेति-नेति विचार बन्द हो जाता है।

"नित्य राधा-कृष्ण, और लीला-राधाकृष्ण। जैसे सूर्य और रश्मि। नित्यसूर्य का स्वरूप, लीला-रश्मि का स्वरूप।

"शुद्ध भक्त कभी-कभी नित्य में रहता है, कभी लीला में।

"जिनका नित्य है, उनकी ही लीला है! 'दुई किंवा बहु नय' (वे एक ही हैं— दो या अनेक नहीं)।

लेखक— जी, 'वृन्दावन का कृष्ण' और 'मथुरा का कृष्ण' क्यों कहते हैं?

श्रीरामकृष्ण— वह गोस्वामियों का मत है। पश्चिम (उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि) के पण्डित लोग नहीं कहते। उनके लिए कृष्ण एक है, राधा नहीं है। द्वारिका का कृष्ण वैसा ही है।

लेखक— जी राधाकृष्ण ही परब्रह्म हैं।

श्रीरामकृष्ण— सुन्दर! किन्तु ताँते सब सम्भव (किन्तु उनमें सब सम्भव)! वे ही निराकार, वे ही साकार। वे ही स्वराट विराट! वे ही ब्रह्म, वे ही शक्ति!

"उनकी इति नहीं— शेष नहीं; उनमें सब सम्भव। चील-गिद्ध कितना ही ऊपर क्यों न चढ़े, आकाश शरीर को नहीं छूता। यदि पूछो ब्रह्म कैसा है, वह बताया नहीं जाता। साक्षात् होने पर भी मुख से नहीं बोला जाता। यदि कोई पूछे घी कैसा है? उसका उत्तर है— कैसा घी, जी जैसा घी। ब्रह्म की उपमा ब्रह्म है और कुछ भी नहीं।

द्वाविंश खण्ड

श्यामपुकुर-बाटी में श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(श्री काली-पूजा के दिन श्यामपुकुर के घर में भक्तों के संग में)

श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुर के घर में ऊपर के दक्षिण वाले कमरे में खड़े हैं। समय नौ का है। ठाकुर के परिधान में शुद्ध वस्त्र एवं मस्तक पर चन्दन का तिलक है।

मास्टर ठाकुर के आदेश से श्री सिद्धेश्वरी काली का प्रसाद लाए हैं; प्रसाद हाथ में लिए ठाकुर अति भक्तिभाव में खड़े होकर कुछ ग्रहण एवं कुछ मस्तक पर धारण कर रहे हैं। ग्रहण करते समय पादुका उतार दी हैं। मास्टर से कह रहे हैं, ''वेश प्रसाद।'' (सुन्दर प्रसाद है)।

आज शुक्रवार है; आश्विन अमावस्या, 6 नवम्बर, 1885 ईसवी— आज श्री काली की पूजा है।

ठाकुर ने मास्टर को ठनठने की श्री सिद्धेश्वरी काली माता को पुष्प, डाब, चीनी, सन्देश द्वारा आज प्रातः पूजा देने का आदेश किया था। मास्टर स्नान करके नग्नपदे प्रातः पूजा करके फिर नग्नपदे ही ठाकुर के पास प्रसाद लाए हैं।

ठाकुर का और भी एक आदेश है— ''रामप्रसाद के और कमलाकान्त के गानों की पुस्तक खरीद कर लाना।'' डॉक्टर सरकार को देनी होगी।

मास्टर कहते हैं, ''ये पुस्तकें लाया हूँ। रामप्रसाद और कमलाकान्त के गानों की पुस्तकें।'' श्रीरामकृष्ण ने कहा, ''ये गाने समस्त (डॉक्टर

के भीतर) घुसा देंगे।''

गान— मन कि तत्त्व कर ताँरे, येन उन्मत्त आँधार घरे।
से जे भावेर विषय, भाव व्यक्ति अभावे कि धरते पारे॥

[भावार्थ— हे मन, अँधेरे कमरे में पागल की भाँति तू क्या उनका विचार करता है? वे तो भाव का विषय हैं, भाव के बिना अभाव में क्या पकड़ सकता है?]

गान— के जाने काली केमन। षड़्दर्शन ना पाय दरशन।

[कौन जाने काली कैसी हैं? छः दर्शनों को भी उनका दर्शन नहीं मिला है।]

गान— मन रे कृषि काज जानो ना।
एमन मानव जमिन रइलो पतित आबाद करले फलतो सोना।

[ओ मेरे मन रे, तू खेती का काम नहीं जानता। ऐसी मानव-जमीन पतित पड़ी रही, यदि आबाद (खेती) करता तो सोना पैदा हो जाता।]

गान— आय मन बेड़ाते जाबि।
काली कल्पतरु मूले रे मन चारि फल कुराये पाबि॥

[अरे मन! चलो, टहलने चलें। काली रूप कल्पतरु के मूल में वहाँ पर बटोरने पर चारों फल— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मिलेंगे।]

मास्टर— जी हाँ।

ठाकुर मास्टर के साथ कमरे में पायचारी कर रहे हैं— चटिजूता (स्लीपर) पाँवों में है। इतना असुख— सहास्य वदन।

श्रीरामकृष्ण— और वह गाना भी तो सुन्दर है— 'ए संसार धोंकार टाटी' आर 'ए संसार मजार कुटि। ओ भाई आनन्द बाजारे लुटि।'

['यह संसार धोखे की टट्टी है।' और 'यह संसार मजे की कुटीर है। आओ भाई, बाजार में आनन्द लूटें।']

मास्टर— जी हाँ।

ठाकुर हठात् चौंक रहे हैं। तुरन्त पादुका-त्याग करके स्थिर भाव में खड़े हो गए। एकदम समाधिस्थ। आज जगन्माता की पूजा है, जभी क्या मुहुर्मुहु चमकित (रोमाञ्चित) एवं समाधिस्थ हैं! अनेक क्षण उपरान्त दीर्घ नि:श्वास छोड़कर जैसे अति कष्ट से भाव संवरण किया।

द्वितीय परिच्छेद

(काली-पूजा के दिन भक्तों के संग में)

ठाकुर उसी ऊपर के कमरे में भक्तों के संग में बैठे हुए हैं; समय 10 का है। बिछौने के ऊपर तकिये पर ठेस देकर बैठे हुए हैं, भक्त चारों ओर बैठे हैं। राम, राखाल, निरंजन, कालीपद, मास्टर प्रभृति अनेक भक्त हैं। ठाकुर के भानजे हृदय मुखर्जी की बातें हो रही हैं।

श्रीरामकृष्ण *(राम आदि को)*— हृदे अभी भी जमीन, जमीन करता है। जब दक्षिणेश्वर में था तब कहा था, शाल दो, नहीं तो नालिश करूँगा।

"माँ ने उसको हटा दिया। लोगों के आने पर केवल रुपया, रुपया किया करता। वह यदि रहता तो ये समस्त लोग न आते। माँ ने हटा दिया।

"गो... ने ऐसे ही आरम्भ किया था। खुंत-खुंत (दोष निकालना) किया करता था। गाड़ी में मेरे साथ जाएगा तो देर कर देता। अन्य लड़कों के मेरे पास आने पर विरक्त हो जाता। उन्हें यदि मैं कलकत्ता देखने, मिलने जाता तो मुझसे कहता, ये क्या संसार छोड़कर आएँगे जो उन्हें देखने जा रहे हैं! लड़कों को जलपान देने से पहले डरकर उससे कहता, 'तू भी खा और उन्हें भी दे'। पता लग गया था, वह रहेगा नहीं।

"तब माँ से कहा था— माँ, उसको हृदे की भाँति बिलकुल ही न हटाना। उसके बाद सुना था, वह वृन्दावन जाएगा।

"गो... यदि ठहरता तो ये सब लड़के नहीं होते। वह वृन्दावन चला

गया, जभी ये सब छोकरे आने-जाने लगे।''

गो... *(विनीत भावे)*— जी, मेरे मन में वैसा नहीं था।

राम (दत्त)— तुम्हारे मन को वे जैसा समझेंगे वैसा क्या तुम समझोगे?

गो... चुप किए रहे।

श्रीरामकृष्ण *(गो... के प्रति)*— तू क्यों ऐसे करता है— मैं तुझको सन्तान से भी अधिक प्यार करता हूँ!

''तू चुप कर ना... अब तेरा वह भाव नहीं है।''

भक्तों के साथ कथावार्ता के पश्चात् उन लोगों के दूसरे कमरे में जाने पर ठाकुर ने गो... को बुलवा लिया और कहा, ''क्या तू मन में कुछ सोच रहा है?''

गो... जी नहीं।

ठाकुर ने मास्टर से कहा, ''आज काली-पूजा है, कुछ पूजा का आयोजन करना अच्छा है। उन्हें एक बार कह आओ। पूछो, सन का डण्ठल (पाकाटि) लाए हैं क्या?''

मास्टर ने बैठक में जाकर भक्तों को सब कुछ बता दिया। कालीपद और अन्य-अन्य भक्तगण पूजा का उद्योग करने लगे।

दो बजे के लगभग डॉक्टर ठाकुर को देखने के लिए आए। संग में अध्यापक नीलमणि हैं। ठाकुर के पास अनेक भक्त बैठे हैं— गिरीश, कालीपद, निरंजन, राखाल, खोका (मणीन्द्र), लाटु, मास्टर व कई और। ठाकुर सहास्यवदन, डॉक्टर के संग असुख की और औषध आदि की थोड़ी-सी बातें हो जाने पर कह रहे हैं, ''तुम्हारे लिए ये पुस्तकें आई हैं।''

डॉक्टर के हाथ में मास्टर ने वे दोनों पुस्तकें दे दीं।

डॉक्टर ने गाने सुनने चाहे। ठाकुर के आदेशक्रम से मास्टर और एक भक्त रामप्रसाद के गाने गा रहे हैं :

गान— मन करो कि तत्त्व ताँरे, जेने उन्मत आँधार घरे।

गान— के जाने काली केमन षड़्दर्शन ना पाय दरशन।

गान— मन रे कृषि काज जानो ना।

गान— आय मन बेड़ाते जाबि।

डॉक्टर गिरीश से कहते हैं, "तुम्हारा वह गाना तो सुन्दर है— वीणा का गाना— बुद्ध चरित का।"

ठाकुर के इंगित से गिरीश और कालीपद दोनों जने मिलकर गाना सुना रहे हैं—

आमार एइ साधेर वीणे, यत्ने गाँथा तारेर हार।
ये यत्न जाने बाजाय वीणे उठे सुधा अनिवार॥
ताने माने बाँधले डुरि, शत धारे बय माधुरी।
बाजे ना आलगा तारे, टाने छिड़े कोमल तार॥

[भावार्थ— मेरी यह साध (बड़ी अभिलाषा) की वीणा है, यत्न से तारों का हार गूँथा गया है। जो यत्न से बजाता है, इस वीणा से निरन्तर सुधा निकलती रहती है। ताने-माने पर डोरी बाँध लेने पर फिर शत धाराओं में माधुरी बहने लगती है। कोमल तार को खींचकर तोड़ देने से या ढीले तारों से नहीं बजती।]

गान— जुड़ाइते चाइ, कोथाय जुड़ाई,
कोथा होते आसि कोथा भेसे जाइ।
फिरे फिरे आसि, कत काँदि हासि,
कोथा जाइ सदा भाबि गो ताइ॥
के खेलाय, आमि खेलि बा केनो?
जागिये घुमाइ कुहके जेनो,
ए केमन घोर होबे नाकि भोर,
अधीर-अधीर जेमति समीर अविराम गति नियत धाइ।
जानि ना केबा एसेछि कोथाय,
केनबा एसेछि, कोथा निये जाय,
जाइ भेसे भेसे कतो कतो देशे,
चारिदिके गोल उठे नाना रोल।

कतो आसे जाय, हासे काँदे गाय,
एइ आछे आर तखनि नाइ ॥
कि काजे एसेछि कि काजे गेलो,
के जाने केमन कि खेला होलो।
प्रवाहेर वारि रहिते कि पारि,
जाइ-जाइ कोथा ? कूल कि नाइ ?
करो हे चेतन, के आछो चेतन,
कतो दिने आर भाँगिबे स्वपन ?
जे आछो चेतन घुमाओ ना आर,
दारुण ए घोर निबिड़ आँधार।
करो तम नाश होओ हे प्रकाश,
तोमा बिने आर नाहिक उपाय
तव पदे ताइ शरण चाइ ॥

[भावार्थ— शान्ति पाना चाहता हूँ, कहाँ शान्ति पाऊँ ? कहाँ से आया हूँ, कहाँ पर तैरता चला जा रहा हूँ ! लौट-लौट कर आ रहा हूँ, कितना रोता, हँसता हूँ, इसीलिए सदा सोचता हूँ, कहाँ जाऊँ भाई ! कौन खिलाता है, मैं फिर खेलूँ ही क्यों ? जागता हुआ सो रहा हूँ जैसे जादुगरी-सी है। यह कैसा अन्धेरा, भोर होगा भी या नहीं ! अधीर-अधीर समीर की तरह अविराम गति से सदा दौड़ रहा हूँ। मुझे पता नहीं है कौन कहाँ पर आया है, क्यों आया है, कहाँ लिए जा रहा है, तैरता-तैरता कितने-कितने देशों में जा रहा हूँ, चारों ओर शोरगुल चीख-पुकार उठ रही है। कितने आ-जा रहे हैं, हँसते-गाते हैं, अभी हैं, और अभी नहीं। किस काम के लिए आया हूँ, किस काम से चला गया, कौन जाने कैसे क्या खेल हो गया ! प्रवाह का जल क्या रह सकता है ! जाऊँ तो जाऊँ कहाँ ? कूल क्या नहीं है ? हे चेतना, चेतन करो, कौन है चेतन, कितने दिनों में यह स्वप्न फिर टूटेगा ? जो चेतन हो, वे और मत सोओ, यह घना अन्धकार बड़ा भयंकर है। तम नष्ट करो और प्रकाश करो हे (प्रभु) ! तुम्हारे बिना और कोई उपाय नहीं है, तुम्हारे चरणों में इसीलिए शरण माँगता हूँ।]

गान— आमाय धरो निताइ।
आमार प्राण जेनो आज करे रे केमन ॥
निताइ जीव के हरि नाम विलाते,
उठलो गो ढेउ प्रेम-नदी ते,
(एखन) सेइ तरंगे एखन आमि भासिया जाइ।

निताइ जे दुःख आमार अन्तरे, दुःखेर कथा कइबो कारे,
जीवेर-दुःखे एखन आमि भासिया जाइ।

[भावार्थ— निताई, मुझे पकड़ो। मेरा प्राण आज न जाने कैसे-कैसे कर रहा है। निताई जीवों के लिए हरिनाम बाँटने के लिए उठा है जैसे प्रेम-नदी में तरंगें उठी हैं, (अब) उसी तरंग में अब मैं डूब रहा हूँ। निताई, जिस दुःख की बात मेरे अन्तर में है, किससे कहूँ वे दुःख की कथाएँ? जीव के दुःखों में अब मैं डूब रहा हूँ।]

गान— प्राणभरे आय हरि-हरि बोलि,
नेचे आय जगाइ माधाइ।

[आओ प्रेम में भरकर हरि-हरि बोलें, जगाइ-मधाई, आओ नाचें।]

गान— किशोरीर प्रेम निबि आय,
प्रेमेर जोयार बये जाय।
बहिछे रे प्रेम शतधारे,
जे जतो चाय ततो पाय॥
प्रेमेर किशोरी प्रेम बिलाय साध करि,
राधार प्रेमे बोलो रे हरि।
प्रेमे प्राण मत्त करे, प्रेम तरंगे प्राण नाचाय,
राधार प्रेमे हरि बोले,
आय, आय, आय, आय॥

[भावार्थ— आओ, किशोरी (राधा) का प्रेम लें, प्रेम की ज्वार बह रही है। प्रेम शत धाराओं में बह रहा है, जो जितना चाहता है, उतना ही पा रहा है। प्रेम की किशोरी स्वयं भरपूर इच्छा से प्रेम बाँट रही हैं, राधा के प्रेम में बोलो रे, हरि। प्रेम में प्राण मतवाले कर रही है, प्रेम-तरंग में प्राण को बचा रही है, राधा के प्रेम में आओ, आओ, आओ, आओ, बोलें हरि।]

गान सुनते-सुनते दो-तीन भक्तों को भाव हो गया— खोका का (मणीन्द्र का), लाटु का! लाटु निरंजन की बगल में बैठा हुआ था। गाना हो जाने के उपरान्त ठाकुर के साथ डॉक्टर फिर और बातें कर रहे हैं। गत कल प्रताप (मजुमदार) ने ठाकुर को 'नक्स वोमिका' औषध दी थी। डॉक्टर सुन कर नाराज (विरक्त) हुए।

डॉक्टर— मैं तो मरा नहीं हूँ, 'नक्स वोमिका' देना!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुम्हारी मरे अविद्या!

डॉक्टर— मेरी कभी भी अविद्या नहीं रही।

डॉक्टर अविद्या का अर्थ नष्टा स्त्री समझे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— नहीं जी! संन्यासी की अविद्या माँ मर जाती है और विवेक सन्तान होती है। अविद्या माँ के मर जाने पर अशौच होती है— जभी तो कहते हैं संन्यासी को छूते नहीं।

हरिवल्लभ आए हैं। ठाकुर कह रहे हैं, "तुम्हें देखने पर आनन्द होता है।" हरिवल्लभ अति विनीत हैं। चटाई से नीचे धरती के ऊपर बैठकर ठाकुर को पंखा झल रहे हैं। हरिवल्लभ कटक के बड़े वकील हैं।

निकट अध्यापक नीलमणि बैठे हैं। ठाकुर उनका मान रख रहे हैं और कह रहे हैं, "आज मेरा बड़ा (खूब) दिन है।" कुछ क्षण पश्चात् डॉक्टर और उनके मित्र नीलमणि ने विदा ली। हरिवल्लभ भी चलने लगे। चलते समय बोले, मैं फिर आऊँगा।

तृतीय परिच्छेद

[जगन्माता श्री काली-पूजा (ठाकुर में जगदम्बा-पूजा)]

शरत्काल अमावस्या, रात्रि सात। उसी ऊपर के कमरे में ही पूजा का समस्त आयोजन हुआ है। नानाविध पुष्प, चन्दन, बिल्वपत्र, जवा; पायस और नानाविध मिठाई ठाकुर के सम्मुख भक्तगण लाए हैं। ठाकुर बैठे हैं। भक्तगण चारों ओर घेर कर बैठे हैं। शरत्, शशी, राम, गिरीश, चुनिलाल, मास्टर, राखाल, निरंजन, छोटे नरेन, बिहारी प्रभृति बहुत-से भक्त हैं।

ठाकुर कह रहे हैं, "धूना लाओ।" कुछ क्षणों के बाद ठाकुर ने जगन्माता को समस्त निवेदन किया। मास्टर निकट बैठे हैं। मास्टर की ओर ताक कर कह रहे हैं, "एकटु सबाइ ध्यान करो।" (सभी थोड़ा

ध्यान करो)। सब भक्तगण थोड़ा ध्यान कर रहे हैं।

देखते-देखते गिरीश ने ठाकुर के पादपद्मों में माला दी। मास्टर ने भी गन्धपुष्प दिए। उसके पश्चात् ही राखाल ने। फिर राम आदि चरणों में फूल देने लगे।

निरंजन पाँव में फूल देकर 'ब्रह्ममयी, ब्रह्ममयी' कहकर भूमिष्ठ होकर पाँव में सिर रखकर प्रणाम कर रहे हैं। भक्तगण सब ही 'जय माँ! जय माँ!' ध्वनि कर रहे हैं।

देखते ही देखते ठाकुर श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गए। कैसा आश्चर्य है! भक्तगण अद्‌भुत रूपान्तर देख रहे हैं। ठाकुर का ज्योतिर्मय वदनमण्डल! दोनों हाथ वराभय! ठाकुर निस्पन्द, बाह्यशून्य! उत्तरास्य हुए बैठे हैं! साक्षात् जगन्माता क्या ठाकुर के भीतर आविर्भूता हो गई हैं!

सब ही अवाक् होकर इस अद्‌भुत वराभयदायिनी जगन्माता का मूर्ति-दर्शन कर रहे हैं।

अब भक्तगण स्तव कर रहे हैं। प्रत्येक जन गाना गाकर स्तव कर रहा है और सब मिलकर समस्वर में गा रहे हैं।

गिरीश स्तव कर रहे हैं :

के रे निबिड़ नील कादम्बिनी सुरसमाजे।
के रे रक्तोत्पल चरण युगल हर उरसे विराजे॥
के रे रजनीकर रखरे वास, दिनकर कतो पदे प्रकाश।
मृदु मृदु हास भास, घन घन घन गरजे॥

[भावार्थ— सुर-समाज में कौन है रे यह गाढ़ी नील कादम्बिनी! कौन हैं ये दोनों लाल कमल चरण शंकर की छाती पर रखे हुए विराजमान? कौन हैं ये जिनके नख में रजनीकर (चन्द्र) का वास है, और दिनकर (सूर्य) कितने चरणों में प्रकाशित है— मृदु-मृदु हँसी से प्रकाशमान होकर जो घन-घन-घन गरज रही हैं।]

फिर और गा रहे हैं :

दीनतारिणी, दुरितहारिणी, सत्त्वरजस्तम त्रिगुणधारिणी,
सृजन-पालन-निधनकारिणी, स्वगुणा निर्गुणा सर्वस्वरूपिणी।
त्वंहि काली तारा परमाकृति, त्वंहि मीन कूर्म वराह प्रभृति,
त्वंहि स्थल जल अनल अनिल, त्वंहि व्योम व्योमकेश-प्रसविनी।

सांख्य पातञ्जल मीमांसक न्याय, तन्न तन्न ज्ञाने ध्याने सदा ध्याय,
वैशेषिक वेदान्त भ्रमे होय भ्रान्त, तथापि अद्यापि जानिते पारेनि॥
निरुपाधि आदिअन्तरहित, करिते साधक जनार हित,
गणेशादि पञ्चरूपे कालवंच भवभयहरा त्रिकालवर्तिनी।
साकार साधके तुमि जे साकार, निराकार उपासके निराकार,
केहो केहो कय ब्रह्म ज्योर्तिमय, सेइ तुमि नगतनया जननी।
जे अवधि जार अभिसन्धि होय, से अवधि से परब्रह्म कय,
तत्परे तुरीय अनिर्वचनीय, सकलि मा तारा त्रिलोकव्यापिनी।

[भावार्थ— माँ, तुम दीनतारिणी, दुरित हारिणी (पाप नाशिनी), सत्त्वरजतम त्रिगुणधारिणी हो। सृजन-पालन-विनाशकारिणी, अपने-आप ही स्वगुणा, निर्गुणा, सर्वस्वरूपिणी हो। तुम ही काली, तारा, परमाप्रकृति हो, तुम ही मीन, कूर्म, वराह आदि हो, तुम ही स्थल, जल, अग्नि, वायु हो, तुम ही व्योम (आकाश)हो, हे व्योमकेश-प्रसविनी!

सांख्य, पातञ्जल, मीमांसक, न्याय पुंखानुपुंख (सूक्ष्म) ध्यान में सदा ध्याते हैं, वैशेषिक, वेदान्त भ्रम में भ्रान्त हो गए हैं, तथापि आज तक भी आपको जान नहीं सके हैं। साधक जानने के लिए आपको निरुपाधि, आदि-अन्त रहित कर रहे हैं। गणेश आदि पाँच रूपों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भवानी, गणेश) में कालवंच (काल को ठगने वाली), भवभयहरा, त्रिकालवर्तिनी (तीनों कालों में रहने वाली) हैं आप। साकार साधक के लिए आप साकार हैं, निराकार उपासक के पास निराकार। कोई-कोई कहता है ब्रह्म ज्योतिर्मय है, वही तुम हो हे नगतनया माँ। जिस समय जिसकी अभिसन्धि हो जाती है, उस समय से वह परब्रह्म कहलाता है। फिर है उसके पश्चात् तुरीय जो कहा नहीं जा सकता— त्रिलोक में व्याप्त सब कुछ ही माँ तारा।]

बिहारी स्तव कर रहे हैं :

मनेरि वासना श्यामा शवासना शोनो मा बोलि,
हृदय माझे उदय हइओ मा, जखन होबे अन्तर्जलि।
तखन आमि मने मने, तुलबो जबा बने बने,
मिशाइये भक्ति चन्दन मा, पदे दिबो पुष्पांजलि।

[भावार्थ— हे मेरी माँ, शव-आसना, सुनो मन की वासना कहता हूँ। हे माँ, जब मेरी अन्तर्जलि होगी तब उदय हो जाना। तब हृदय के बीच में, मैं मन ही मन, वन-वन में जवा-कुसुम चुनूँगा और भक्ति-चन्दन मिलाकर माँ, आपके चरणों में पुष्पांजलि दूँगा।]

मणि गा रहे हैं भक्तों के संग :

सकलि तोमारि इच्छा मा, इच्छामयी तारा तुमि,
तोमार कर्म तुमि करो मा, लोके बोले करि आमि।
पंके बद्ध करो करी पंगु रे लंघाओ गिरि,
कारे दाओ मा इन्द्रत्वपद कारे करो अधोगामी।
आमि यंत्र तुमि यंत्री, आमि घर तुमि घरणी,
आमि रथ तुमि रथी जेमन चालाओ तेमनि चलि।

[भावार्थ— माँ इच्छामयी, तुम तारा हो। सब तुम्हारी इच्छा है। तुम्हारा कर्म तुम स्वयं जगत में कर रही हो, किन्तु लोग कहते हैं कि मैं कर रहा हूँ। तुम हाथी को कीचड़ में बद्ध कर लेती हो और पंगु को पर्वत पार करा देती हो। किसी को इन्द्रत्वपद दे देती हो, किसी को निम्नपथगामी बना देती हो। मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री; मैं घर, तुम घरणी; मैं रथ, तुम रथी; जैसे चलाती हो वैसे ही चलता हूँ।]

गान— तोमारि करुणाय मा सकलि होइते पारे।
अलंघ्य पर्वत सम विघ्न बाधा जाय दूरे॥
तुमि मंगल निधान, करिछो मंगल विधान।
तबे केनो वृथा मरि फलाफल चिन्ता करे॥

[भावार्थ— तुम्हारी करुणा से हे माँ, सब पार हो रहे हैं। अलंघ्य पर्वत सम बिघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं। तुम मंगल की भण्डार हो, सर्वदा मंगल-विधान कर रही हो। फिर क्यों मैं फल-अफल की चिन्ता करके मरता हूँ!]

गान— गो आनन्दमयी होये मा आमाय निरानन्द करो ना।
[माँ, स्वयं आनन्दमयी होकर तुम मुझे निरानन्द न करो।]

गान— निबिड़ आँधारे मा तोर चमके ओ रूपराशि।
[घने अँधेरे में माँ, तेरी रूपराशि चमकती है।]

ठाकुर प्रकृतिस्थ हो गए। यह गाना गाने के लिए आदेश कर रहे हैं,

कखनो किरंगे थाको मा श्यामा सुधातरंगिणी।
[कब किस रंग में, माँ श्यामा सुधातरंगिनी, रहती हो।]

गाना समाप्त होने पर ठाकुर फिर और आदेश कर रहे हैं :

गान— शिव संगे सदा रंगे आनन्दे मगना।
सुधा पाने ढल ढल ढले किन्तु पड़े ना (मा)॥

[माँ, शिव के संग में आनन्द में, मगना हैं, सदा मजे में रहती हैं। अमृत–पान करती हुई गिरती–गिरती–सी लगती हैं किन्तु गिरती नहीं हैं।]

ठाकुर भक्तवृन्द के आनन्द के लिए तनिक–सा पायस मुख में दे रहे हैं। किन्तु एकदम भाव में विभोर, बाह्यशून्य (बेहोश) हो गए हैं!

कुछ क्षण पश्चात् सब भक्त ठाकुर को प्रणाम करके प्रसाद लेकर बैठक में चले गए और सबने मिलकर आनन्द मनाते–मनाते वहीं प्रसाद पाया। ठाकुर ने कहलवाया है— रात हो गई है, सुरेन्द्र के यहाँ आज श्री काली–पूजा होगी, तुम लोग निमन्त्रण पर जाओ।

भक्तगण आनन्द मनाते–मनाते सिमला स्ट्रीट में सुरेन्द्र के घर में पहुँचे। सुरेन्द्र ने अति यत्न, प्यार से उन लोगों को ऊपर की बैठक में ले जाकर बिठाया। घर में उत्सव है। सब ही गीत, वाद्य इत्यादि लेकर आनन्द कर रहे हैं।

सुरेन्द्र के घर में प्रसाद पाकर घर लौटते–लौटते भक्तों को प्राय: दो प्रहर से अधिक रात हो गई थी।

त्रयोविंश खण्ड

काशीपुर-बागान में भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(ईश्वर के लिए नरेन्द्र की व्याकुलता)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण काशीपुर के बाग में ऊपर के उसी पूर्वपरिचित कमरे में बैठे हैं। दक्षिणेश्वर के श्री काली-मन्दिर से श्रीयुक्त राम चैटर्जी उनका कुशल-संवाद लेने आए थे। ठाकुर मणि के साथ वे ही सब बातें कर रहे हैं— बता रहे हैं— वहाँ पर (दक्षिणेश्वर में) क्या अब बहुत ठण्ड है?

आज 21 पौष, कृष्णा चतुर्दशी, सोमवार, 4 जनवरी, 1886 ईसवी। अपराह्न 4.00 बजे हैं।

नरेन्द्र आकर बैठ गए। ठाकुर उनको बीच-बीच में देख रहे हैं और उनकी ओर देखकर ईषत् (हल्का) हँस रहे हैं— जैसे उनका स्नेह उथला पड़ रहा है। मणि से संकेत करके बता रहे हैं— ''रोया था!'' ठाकुर कुछ चुप रहे। फिर और संकेत से मणि को बता रहे हैं— ''रोता-रोता घर से आया था!''

सब चुप किए हैं। अब नरेन्द्र बातें करते हैं—

नरेन्द्र— वहाँ पर आज जाऊँगा, सोच रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण— कहाँ?

नरेन्द्र— दक्षिणेश्वर में— बेल-तले पर। वहाँ पर रात को धूनि जलाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण— ना; वे लोग (मैगजीन के मालिक) नहीं जलाने देंगे। पंचवटी तो सुन्दर जगह है— अनेक साधुओं ने ध्यान-जप किया है!

"किन्तु बड़ा शीत और अन्धकार है।"

सबके सब चुप हैं। ठाकुर फिर और बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति, सहास्य)*— पढ़ेगा नहीं?

नरेन्द्र *(ठाकुर और मणि की ओर देखकर)*— एक औषध मिल जाए तो बचूँ, जिससे पढ़ा–लिखा जो कुछ भी है, सब भूल जाऊँ!

श्रीयुक्त (बूढ़े) गोपाल बैठे हैं। वे कहते हैं— मैं भी इसके संग में जाऊँगा। श्रीयुक्त कालीपद (घोष) ठाकुर के लिए अंगूर लाए थे। अंगूरों का बॉक्स ठाकुर की बगल में था। ठाकुर भक्तों में अंगूर वितरण कर रहे हैं। प्रथम तो नरेन्द्र को दिए— उसके पश्चात् हरि (बन्दर)–लूट की भाँति बिखेर दिए, भक्तों ने जिसने जैसे पाए, समेट लिए।

द्वितीय परिच्छेद

(ईश्वर के लिए श्रीयुक्त नरेन्द्र की व्याकुलता व तीव्र वैराग्य)

सन्ध्या हो गई। नरेन्द्र नीचे बैठकर तम्बाकू पी रहे हैं और अकेले में मणि से 'उनके प्राण किस प्रकार व्याकुल हैं', इसके बारे में बातें कर रहे हैं।

नरेन्द्र *(मणि के प्रति)*— गत शनिवार यहाँ पर ध्यान कर रहा था। हठात् छाती के भीतर किस प्रकार से कर उठा!

मणि— कुण्डलिनी जागरण!

नरेन्द्र— वही होगा, खूब बोध हुआ— इड़ा, पिंगला। हाजरा से कहा, छाती पर हाथ रखकर देखने के लिए।

"कल रविवार था, ऊपर जाकर इनके (ठाकुर के) संग मिला। इन्हें सब बताया।

"मैंने कहा, 'सबका ही हो गया है, मुझे कुछ दें। सबका ही हो गया, मेरा नहीं होगा'?"

मणि— उन्होंने तुम्हें क्या कहा?

नरेन्द्र— उन्होंने कहा, 'तू घर का थोड़ा-सा ठीक कर आ ना! सब होगा। तू क्या चाहता है?'

(Sri Ramakrishna and the Vedanta— नित्य, लीला दोनों ही ग्रहण)

''मैंने कहा— मेरी इच्छा है ऐसे तीन-चार दिन समाधिस्थ हुए रहूँ! कभी-कभी एक-एक बार खाने के लिए उठूँ।''

''वे बोले— तू तो बड़ा हीनबुद्धि है! इस अवस्था से भी ऊँची अवस्था है। तू ही तो गाना गाता है, 'जो कुछ है सो तू ही है'।''

मणि— हाँ, वे सर्वदा ही कहते हैं, जो समाधि से नीचे आकर देखता है— 'वे ही जीव-जगत, यह समस्त हुए हैं'। ईश्वरकोटि की ऐसी अवस्था हो सकती है। वे कहते हैं, जीवकोटि यदि समाधि-अवस्था लाभ करे तो फिर नीचे नहीं उतर सकते।

नरेन्द्र— वे कहते हैं— तू घर का थोड़ा-सा ठीक कर आ, समाधि-लाभ की अवस्था की अपेक्षा भी ''ऊँचु'' अवस्था हो सकेगी।

''आज सुबह घर गया था। सब ही डाँटने (बकने) लगे— और बोले, क्या हो-हो करता हुआ फिर रहा है? कानून (लॉ) का एग्जाम (इमत्हिान) इतना निकट है, पढ़ना-लिखना नहीं, हो-हो करता फिरता है।''

मणि— तुम्हारी माँ ने कुछ कहा?

नरेन्द्र— नहीं, वे खिलाने के लिए परेशान थीं, हरिण का मांस था— खा लिया— किन्तु खाने की इच्छा नहीं थी।

मणि— उसके बाद?

नरेन्द्र— दीदी-माँ के घर, उसी पढ़ने के कमरे में पढ़ने गया। पढ़ने लगने पर पढ़ते हुए एक विशेष आतंक हुआ— पढ़ाई जैसे एक भय की वस्तु है! छाती आटुपाटु करने लगी!— ऐसा रोना कभी भी नहीं रोया।

''तत्पश्चात् किताबें-शिताबें फेंक कर दौड़ा! मार्ग में भागा। जूता-शूता मार्ग में कहाँ एक ओर पड़ा रह गया! फूस के स्तूप के पास से जा रहा

था— सारे शरीर में फूस ही फूस हो गया— मैं दौड़ रहा हूँ— काशीपुर के रास्ते पर!''

नरेन्द्र थोड़ा चुप हैं। फिर और बातें कह रहे हैं।

नरेन्द्र— विवेक चूड़ामणि सुनकर और भी मन खराब हो गया है। शंकराचार्य कहते हैं— कि ये तीन विशेष वस्तुएँ अनेक तपस्या, अनेक भाग्य से मिलती हैं— मनुष्यत्वम्, मुमुक्षुत्वम्, महापुरुषसंश्रयः।

''सोचने लगा— मेरी तो तीनों ही हो गई हैं! अनेक तपस्या के फल से मनुष्य-जन्म हुआ है, अनेक तपस्या के फल से मुक्ति की इच्छा हुई है— और अनेक तपस्या के फल से ऐसे महापुरुष का संग-लाभ हुआ है।''

मणि— आहा!

नरेन्द्र— संसार और अच्छा नहीं लगता। संसार में जो भी हैं वे भी अच्छे नहीं लगते, दो-एक भक्तों को छोड़।

नरेन्द्र तुरन्त फिर चुप हो गए। नरेन्द्र के भीतर तीव्र वैराग्य है। अभी तक भी प्राण आटुपाटु (उछल-कूद) कर रहा है। नरेन्द्र फिर और बातें कर रहे हैं।

नरेन्द्र *(मणि के प्रति)*— आप लोगों को शान्ति हो गई है, मेरा प्राण अस्थिर हो रहा है! आप लोग ही धन्य हैं!

मणि ने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुप हैं। सोच रहे हैं, ठाकुर ने कहा था, ईश्वर के लिए व्याकुल होना चाहिए, तभी ईश्वर-दर्शन होता है। सन्ध्या के बाद ही मणि ऊपर के कमरे में गए। देखा, ठाकुर निद्रित हैं।

रात्रि के प्रायः 9 हैं। ठाकुर के पास हैं निरंजन, शशी। ठाकुर जाग गए हैं। ठहर-ठहर कर नरेन्द्र की बातें ही कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— नरेन्द्र की अवस्था कैसी आश्चर्यपूर्ण! देखो, यही नरेन्द्र पहले साकार नहीं मानता था! इसका प्राण किस प्रकार से आटुपाटु (छटपटाना, तड़पना) कर रहा है, देखते हो! वही जो किसी ने पूछा था, ईश्वर को कैसे पाया जाता है? गुरु ने कहा, आओ मेरे संग; तुम्हें दिखला दूँ क्या होने पर

ईश्वर मिलते हैं। यह कहकर एक तालाब में ले जाकर उसे जल में डुबा कर पकड़ लिया! कुछ क्षण पश्चात् उसको छोड़कर शिष्य से पूछा, 'तुम्हारा प्राण कैसे हो रहा था?' वह बोला, 'प्राण जाय-जाय हो रहा था।'

"ईश्वर के लिए प्राण छटपट करने लगने पर समझोगे कि दर्शन में और देर नहीं है। अरुण उदय होने पर— पूर्व दिशा लाल होने पर— पता लग जाता है सूर्य उदय होगा।"

आज ठाकुर का असुख बढ़ गया है। शरीर का इतना कष्ट है। तब भी नरेन्द्र के सम्बन्ध में ये सब बातें— संकेत करके बता रहे हैं।

नरेन्द्र इसी रात को ही दक्षिणेश्वर चले गए। गम्भीर अन्धकार— अमावस्या लग गई है। नरेन्द्र के संग में दो-एक भक्त हैं। मणि रात को बागान में ही हैं। स्वप्न में देख रहे हैं, वे संन्यासी-मण्डल के भीतर बैठे हुए हैं।

तृतीय परिच्छेद

(भक्तों का तीव्र वैराग्य— संसार और नरक-यन्त्रणा)

अगला दिन मंगलवार 5 जनवरी, 22 पौष। काफी देर अमावस्या है। चार बज गए हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण शय्या पर बैठे हैं, मणि के साथ अकेले में बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— क्षीरोद यदि श्री गंगासागर जाए तो फिर तुम एक कम्बल खरीद देना।

मणि— जो आज्ञा।

ठाकुर थोड़ा-सा चुप हैं। फिर और बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, लड़कों को यह क्या हो रहा है? कोई श्रीक्षेत्र भाग रहा है— कोई गंगासागर!

"घर छोड़कर सब आ रहे हैं। देखो ना, नरेन्द्र! तीव्र वैराग्य हो जाने

पर संसार छोटा कुआँ बोध होता है, आत्मीयजन काल-साँप बोध होते हैं।

मणि— जी, संसार में बड़ी यन्त्रणा है!

श्रीरामकृष्ण— नरक-यन्त्रणा! जन्म से। देख रहे हो ना— स्त्री-पुत्र लेकर कैसी यन्त्रणा है!

मणि— जी हाँ। और आपने कहा था, वे लोग (जिन्होंने संसार में प्रवेश ही नहीं किया) उन्हें लेना-देना नहीं; लेने-देने के लिए अटके रहना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण— देख रहे हो ना— निरंजन को! 'अपना यह ले, मेरा यह दे'—बस! और कोई सम्पर्क नहीं। पीछे खींच नहीं!

"कामिनी-काञ्चन ही संसार है। देखो ना, रुपया होते ही बाँधने (जोड़ने) की इच्छा होती है।"

मणि ने हो-हो करके हँस दिया। ठाकुर भी हँसे।

मणि— रुपया निकालते हुए अनेक हिसाब आता है। *(दोनों का हास्य)*। किन्तु दक्षिणेश्वर में कहा था, त्रिगुणातीत होकर संसार में रह सकने पर एक और हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, बालक के जैसा।

मणि— जी, किन्तु बड़ा कठिन है, बड़ी शक्ति चाहिए।

ठाकुर कुछ चुप किए हैं।

मणि— कल वे लोग ध्यान करने गए। मैंने स्वप्न देखा था।

श्रीरामकृष्ण— क्या देखा?

मणि— देखा, जैसे नरेन्द्र आदि संन्यासी हो गए हैं— धूनि जलाकर बैठे हैं। मैं भी उनके मध्य बैठा हुआ हूँ। वे तम्बाकू पी कर धुआँ मुख से निकाल रहे हैं, मैंने कहा, गाँजे के धुएँ की गन्ध है।

(संन्यासी कौन— ठाकुर की पीड़ा और बालक की अवस्था)

श्रीरामकृष्ण— मन से त्याग होने पर ही हुआ, वह होने पर ही संन्यासी है।

ठाकुर चुप किए हैं। फिर और बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु वासना में आगुन देनी होती है तभी तो!

मणि— बड़ेबाजार के मारवाड़ियों के पण्डित जी से आपने कहा था मेरी 'भक्ति-कामना' है। तो भक्ति-कामना शायद कामनाओं के मध्य नहीं है?

श्रीरामकृष्ण— जैसे हिंचे साग सागों के बीच में नहीं है— पित्त दमन करता है।

"अच्छा, इतना आनन्द, भाव— यह समस्त कहाँ गया?"

मणि— बोध होता है गीता में जो त्रिगुणातीत की बात कही गई है, वही अवस्था हो गई है। सत्व, रज, तम गुण अपना-अपना कार्य कर रहे हैं, आप स्वयं निर्लिप्त हैं— सत्त्व गुण से भी निर्लिप्त।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, बालक की अवस्था में रखा हुआ है।

"अच्छा, देह क्या इस बार नहीं रहेगी?"

ठाकुर और मणि चुप किए हुए हैं। नरेन्द्र नीचे से आए। एक बार घर जाएँगे। बन्दोबस्त करके आएँगे।

पिता की परलोकप्राप्ति पर उनकी माँ और भाईगण अति कष्ट में हैं— बीच-बीच में अन्नकष्ट है। नरेन्द्र एकमात्र उनका भरोसा हैं। वे रोजगार करके उन्हें खिलाएँगे। किन्तु नरेन्द्र का लॉ (कानून) की परीक्षा देना नहीं हुआ। अब है तीव्र वैराग्य! जभी आज घर का कुछ बन्दोबस्त करने के लिए कलकत्ता जा रहे हैं। एक मित्र उन्हें एक सौ रुपया उधार देंगे। उसी रुपये से घर के तीन मास के खाने का जुगाड़ करके आएँगे।

नरेन्द्र— चलूँ घर एक बार। *(मणि के प्रति)* महिम चक्रवर्ती के घर से होकर जा रहा हूँ, आप चलेंगे क्या?

मणि की जाने की इच्छा नहीं है, ठाकुर उनकी ओर ताक कर नरेन्द्र से

पूछ रहे हैं—

"क्यों?"

नरेन्द्र— उसी रास्ते से जा रहा हूँ, उनके संग बैठकर थोड़ी बातचीत करूँगा।

ठाकुर एक दृष्टि से नरेन्द्र को देख रहे हैं।

नरेन्द्र— यहाँ के एक मित्र ने कहा है, मुझे एक सौ रुपया उधार देंगे। उसी रुपये से घर का तीन मास का बन्दोबस्त करके आऊँगा।

ठाकुर चुप हैं। मणि की ओर देखा।

मणि *(नरेन्द्र से)*— नहीं, तुम लोग चलो— मैं पीछे आऊँगा।

चतुर्विंश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण काशीपुर-बागान में सांगोपांगों के संग

प्रथम परिच्छेद

(भक्त के लिए श्रीरामकृष्ण का देह-धारण)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण काशीपुर-बागान में रह रहे हैं। सन्ध्या हो गई है। ठाकुर अस्वस्थ हैं। ऊपर के हाल कमरे में उत्तरास्य हुए बैठे हैं। नरेन्द्र और राखाल दोनों जन पदसेवा कर रहे हैं। मणि पास बैठे हैं। ठाकुर ने इंगित से उनसे भी पदसेवा करने के लिए कहा। मणि पदसेवा कर रहे हैं।

आज रविवार, 14 मार्च, 1886; 2रा चैत्र, फाल्गुन शुक्ला नवमी। गत रविवार को ठाकुर की जन्मतिथि के उपलक्ष्य में बागान में पूजा हो गई थी। गत वर्ष जन्ममहोत्सव दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में खूब समारोह से हुआ था। अब की बार वे अस्वस्थ हैं। भक्तगण विषादसागर में डूबे हुए हैं। पूजा हुई। नाममात्र उत्सव हुआ।

भक्तगण सर्वदा ही बागान में उपस्थित रहते हैं और ठाकुर की सेवा कर रहे हैं। श्री श्रीमाँ उसी सेवा में निशिदिन नियुक्त हैं। छोकरे भक्त अनेक ही सर्वदा रहते हैं— नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, शरत्, शशी, बाबूराम, योगीन, काली, लाटु प्रभृति।

वयस्क भक्तगण बीच-बीच में रहते हैं और प्राय: नित्य आकर ठाकुर का दर्शन करते हैं या संवाद लेकर जाते हैं। तारक, सींथी का गोपाल, ये भी सर्वदा रहते हैं। छोटे गोपाल भी रहते हैं।

ठाकुर आज भी विशेष अस्वस्थ हैं। रात्रि दो प्रहर। आज शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि, चाँद के आलोक से उद्यानभूमि जैसे आनन्दमय हो रही है। ठाकुर को कठिन पीड़ा— चन्द्र की विमल किरण–दर्शन से भक्तहृदयों में आनन्द नहीं है। जैसे एक नगरी में सब ही सुन्दर है, किन्तु शत्रु–सेना ने घेरा डाल रखा है। चारों ओर निस्तब्ध, केवल वसन्त–अनिल के स्पर्श से वृक्षपत्रों का शब्द हो रहा है। ऊपर के हाल कमरे में ठाकुर लेटे हुए हैं। बड़ा कष्ट है, निद्रा नहीं। दो–एक भक्त चुपचाप पास बैठे हुए हैं— कभी कुछ काम पड़ जाए! एक–एक बार तन्द्रा आ रही है और ठाकुर प्राय: निद्रित बोध हो रहे हैं।

यह क्या निद्रा है या महायोग? 'यस्मिन् स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते!'* यह क्या वही योगावस्था है?

मास्टर निकट बैठे हैं। ठाकुर इंगित से और निकट आने को कह रहे हैं। ठाकुर का कष्ट देखकर तो पाषाण भी विगलित हो जाता है। मास्टर से धीरे–धीरे अति कष्ट से कह रहे हैं—

"तुम लोग रोओगे, इसलिए इतना भोग रहा हूँ— सब ही यदि कहें कि इतना 'कष्ट है तो फिर देह जाए'— तब फिर देह जाएगी!"

यह बात सुनकर भक्तों का हृदय विदीर्ण हो रहा है। जो उनके पिता, माता, रक्षाकर्त्ता हैं वे ही यह बात कह रहे हैं! सब चुप हैं। कोई विचार कर रहे हैं, इसका ही नाम है crucifixion! (क्रूसीफिक्शन)— भक्तों के लिए देहविसर्जन!

गम्भीर रात्रि। ठाकुर का रोग जैसे और भी बढ़ रहा है। क्या उपाय किया जाए? कलकत्ता व्यक्ति भेजा गया। श्रीयुक्त उपेन्द्र डॉक्टर और श्रीयुक्त नवगोपाल कविराज को साथ लेकर गिरीश उसी गम्भीर रात में आए।

भक्तगण निकट बैठे हुए हैं। ठाकुर तनिक स्वस्थ हो रहे हैं। कह रहे हैं,

"देह का असुख, वह तो होगा ही। देख रहा हूँ पंचभूत की देह है!"

---

* गीता 6 : 22

गिरीश की ओर देखते हुए कह रहे हैं,—

"अनेक ईश्वरीय रूप देख रहा हूँ। उसमें यह रूप भी (अपनी मूर्ति) देख रहा हूँ।"

द्वितीय परिच्छेद

(समाधिमन्दिर में)

अगला दिन प्रातः। आज सोमवार, 3रा चैत्र, 15 मार्च, 1886 ईसवी। समय 7-8 का होगा। ठाकुर तनिक सम्भले हैं और भक्तों के साथ आहिस्ते-आहिस्ते, कभी-कभी इशारा करके बातें कर रहे हैं। पास नरेन्द्र, राखाल, मास्टर, लाटु, सींथी के गोपाल प्रभृति हैं।

भक्तों के मुख में बात नहीं, ठाकुर की पूर्वरात्रि की देह की अवस्था स्मरण करके वे लोग विषाद-गम्भीर मुख से चुपचाप बैठे हुए हैं।

(ठाकुर का दर्शन— ईश्वर, जीव, जगत)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर की ओर ताकते हुए, भक्तों के प्रति)*— क्या देख रहा हूँ, जानते हो? वे सब हुए हैं! मनुष्य और जो जीव देख रहा हूँ, जैसे सब चमड़े से तैयार हुए हैं— उसके भीतर से वे ही हाथ, पाँव, सिर हिला रहे हैं! जैसे एक बार देखा था— मोम की बाड़ी, बाग, रास्ता, मनुष्य, गाय सब मोम के— सब एक वस्तु से बने हुए।

"देख रहा हूँ— वे ही लुहार, वे ही बलि, वे ही बलिकाष्ठ (हाड़िकाठ)* हुए हैं!"

ठाकुर क्या बता रहे हैं, जीव के दुःख में कातर होकर वे अपने शरीर को

---

* हाड़िकाठ = देवता के ठीक सामने की ओर ज़मीन में गड़ा हुआ बलिकाष्ठ जिसके ऊपर का अंश तीन-चार इंच चीरा हुआ रहता है और जिसमें गर्दन फँसाकर बलि का पशु काटा जाता है।

जीव के मंगल के लिए बलिदान कर रहे हैं?

ईश्वर ही लुहार, बलि, बलिकाष्ठ बने हुए हैं। यह बात बोलते-बोलते ठाकुर भाव में विभोर होकर बोल रहे हैं— "आहा! आहा!"

और फिर वही भावावस्था! ठाकुर बाह्यशून्य हो रहे हैं। भक्तगण किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुए चुप किए बैठे हुए हैं।

ठाकुर थोड़ा-सा प्रकृतिस्थ होकर बोल रहे हैं—
"अब मुझे कोई भी कष्ट नहीं, ठीक पूर्वावस्था है।"

ठाकुर की यह सुख-दु:ख अतीत अवस्था देखकर भक्तगण अवाक् हो गए हैं। लाटू की ओर ताकते हुए फिर बोल रहे हैं—
"वह लाटो— माथे पर हाथ रखकर बैठा हुआ है— जैसे वे ही (ईश्वर ही) माथे के ऊपर हाथ रखे हुए हैं!"

ठाकुर भक्तों को देख रहे हैं और स्नेह में जैसे विगलित हो रहे हैं। जैसे शिशु को प्यार करते हैं, उसी प्रकार राखाल और नरेन्द्र को प्यार कर रहे है! उनके मुख पर हाथ फेर कर प्यार कर रहे हैं!

(क्यों लीला-संवरण)

कुछ देर बाद मास्टर से कह रहे हैं,
"यह शरीर कुछ दिन रहता, तो लोगों को चैतन्य होता।"

ठाकुर फिर दोबारा चुप हैं।

ठाकुर फिर और बोल रहे हैं—
"वह रखेगा नहीं।"

भक्त सोच रहे हैं, ठाकुर फिर और क्या कहेंगे। ठाकुर फिर और कह रहे हैं,
"वह रखेगा नहीं— सरल मूर्ख देखकर पीछे लोग सब पकड़ लें! सरल मूर्ख है, कहीं पीछे सब दे डाले! एक तो कलि में ध्यान-जप नहीं है।"
राखाल *(सस्नेह)*— आप कहिए— जिससे आपकी देह रहे।

श्रीरामकृष्ण—वह ईश्वर की इच्छा है।
नरेन्द्र— आपकी इच्छा और ईश्वर की इच्छा एक हो गई है।

ठाकुर चुप किए हुए हैं— जैसे कुछ सोच रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र, राखाल आदि भक्तों के प्रति)*— फिर कहने से ही कहाँ होता है?

"अब देख रहा हूँ एक हो गया है। ननदिनी के भय से कृष्ण को श्रीमती ने कहा 'तुम हृदय के भीतर रहो।' जब फिर व्याकुल होकर कृष्ण के दर्शन करना चाहा— ऐसी व्याकुलता— जैसे बिलाव का पंजों से खरोचना, तब किन्तु फिर बाहर नहीं आता।"

राखाल *(भक्तों के प्रति, मृदु स्वर में)*— ये गौर अवतार की बात बतला रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(गुह्य कथा— ठाकुर श्रीरामकृष्ण और उनके सांगोपांग)

भक्तगण निस्तब्ध हुए बैठे हैं। ठाकुर भक्तों को सस्नेह देख रहे हैं, अपने हृदय पर हाथ रख लिया— क्या बोलेंगे!

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्रादि से)*— इसके भीतर दोनों हैं। एक तो वे।

भक्तगण प्रतीक्षा कर रहे हैं— और क्या कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— एक तो वे हैं— और एक भक्त हुए हैं। उसका हाथ टूट गया था— उसको ही असुख हुआ है। समझे?

भक्तगण चुप किए बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण— किसको ही फिर कहूँ या कौन ही फिर समझेगा?

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर फिर और बातें कह रहे हैं—

"वे मनुष्य होकर— अवतार होकर— भक्तों के संग में आते हैं। भक्तगण

उनके संग में ही फिर चले जाते हैं।''

राखाल— अभी हम लोगों को आप जैसे छोड़ कर मत जाएँ।

ठाकुर मृदु-मृदु हँसते हैं। कह रहे हैं, ''बाउलों का दल हठात् आ गया— नाचा, गाना गाया; और फिर हठात् चला गया! आया-गया, किसी ने पहचाना नहीं। *(ठाकुर का और सबका ईषत् हास्य)*।

कुछ क्षण चुप रहकर ठाकुर फिर और बोल रहे हैं—

''देह धारण करने से कष्ट तो है ही।

''एक-एक बार कहता हूँ, जैसे और आना न हो।

''तो भी फिर एक बात तो है। निमन्त्रण (दावत) खा-खाकर घर के उड़द के दाल-भात अच्छे नहीं लगते।

''और जो देह-धारण करना है— यह भी भक्त के लिए है।''

ठाकुर भक्त का नैवेद्य— भक्त का निमन्त्रण—भक्तसंग-विहार पसन्द करते हैं, क्या यही बात बता रहे हैं?

(सुरेन्द्र का ज्ञान-भक्ति— नरेन्द्र का संसार-त्याग)

ठाकुर नरेन्द्र को सस्नेह देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— चण्डाल मांस का भार लिए जा रहा था। शंकराचार्य गंगा नहा कर पास से जा रहे थे। चण्डाल ने हठात् उन्हें छू लिया। शंकर नाराज़ होकर बोले, तूने मुझे छू लिया है। वह बोला, भगवन्, तुमने भी मुझे नहीं छुआ! मैंने भी तुम्हें नहीं छुआ! तुम विचार करो! तुम क्या देह, तुम क्या मन, तुम क्या बुद्धि हो; तुम क्या हो, विचार करो। शुद्ध आत्मा निर्लिप्त है— सत्त्व, रज, तम; तीन गुण हैं— किसी भी गुण में लिप्त नहीं।

''ब्रह्म किस प्रकार का है, जानते हो? जैसे वायु। दुर्गन्ध, सुगन्ध— सब वायु में हैं, किन्तु वायु निर्लिप्त है।''

नरेन्द्र— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— गुणातीत। मायातीत। अविद्या-माया, विद्या-माया— दोनों के ही अतीत। कामिनी-काञ्चन अविद्या है। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति— यह सब विद्या का ऐश्वर्य है। शंकराचार्य ने विद्या-माया रखी थी। तुम और ये लोग जो मेरे लिए भावना करते हो, यही भावना विद्या-माया है!

''विद्या-माया पकड़ते-पकड़ते ब्रह्मज्ञान-लाभ हो जाता है। जैसे सीढ़ियों के ऊपर का डण्डा— उसके पश्चात् छत। कोई-कोई छत के ऊपर पहुँचने के बाद भी सीढ़ियों से आना-जाना करता है— ज्ञान-लाभ के बाद भी 'विद्या का मैं' रखता है, लोकशिक्षा के लिए। और फिर भक्ति-आस्वादन करने के लिए— भक्त के संग विलास करने के लिए।''

नरेन्द्रादि भक्त चुप किए हुए हैं। ठाकुर क्या यह समस्त निजी अवस्था बतला रहे हैं?

नरेन्द्र— कोई-कोई मेरे ऊपर क्रोध करता है, त्याग करने की बात पर।

श्रीरामकृष्ण *(मृदु स्वर में)*— त्याग दरकार है।

ठाकुर अपने शरीर के अंग-प्रत्यंग दिखलाकर कह रहे हैं—

''एक वस्तु के ऊपर यदि और एक वस्तु रहे, तो प्रथम वस्तु को पाने के लिए, उस वस्तु को हटाना होगा ना? एक को बिना हटाए और एक क्या मिलती है?

नरेन्द्र— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र से, मृदु स्वर में)*— उसी (ईश्वर)-मय के देख लेने पर और कुछ क्या दिखाई देता है?

नरेन्द्र— संसार-त्याग करना ही होगा?

श्रीरामकृष्ण— जो कहता हूँ उसी (ईश्वर)-मय के देख लेने पर क्या और कुछ दिखता है? संसार-वंसार और कुछ दिखाई देता है?

''किन्तु मन में त्याग। यहाँ पर जो आते हैं, कोई संसारी नहीं। किसी-किसी की थोड़ी-सी इच्छा थी— स्त्रियों के संग रहना *(राखाल, मास्टर प्रभृति का ईषत् हास्य)*। वह इच्छा भी हो गई।''

(नरेन्द्र और वीरभाव)

ठाकुर नरेन्द्र को सस्नेह देख रहे हैं। देखते-देखते जैसे आनन्द में परिपूर्ण हो रहे हैं। भक्तों की ओर ताकते हुए कह रहे हैं—

'खूब'!

नरेन्द्र ठाकुर को सहास्य कह रहे हैं,

'खूब' क्या?

***श्रीरामकृष्ण** (सहास्य)*— खूब त्याग हो रहा है।

नरेन्द्र और भक्तगण चुप किए हुए हैं और ठाकुर को देख रहे हैं। अब राखाल बातें कर रहे हैं।

राखाल *(ठाकुर से, सहास्य)*— नरेन्द्र आपको खूब समझता है।

ठाकुर हँस रहे हैं और कह रहे हैं—

''हाँ, और भी देख रहा हूँ, अनेक समझते हैं। *(मास्टर के प्रति)*— क्या नहीं जी?''

मास्टर— जी हाँ।

ठाकुर नरेन्द्र और मणि को देख रहे हैं और हाथ के द्वारा इंगित करके राखाल आदि भक्तों को दिखला रहे हैं। प्रथम इंगित करके नरेन्द्र को दिखाया— तत्पश्चात् मणि को दिखाया! राखाल ठाकुर के इंगित को समझ गए हैं और बातें कर रहे हैं।

राखाल *(सहास्य, श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— आप कह रहे हैं कि नरेन्द्र का वीरभाव है? और इनका (मास्टर का) सखी भाव? *(ठाकुर हँस रहे हैं)*।

नरेन्द्र *(सहास्य)*— ये (मास्टर) अधिक बातें नहीं करते, और लाजुक (लज्जाशील) हैं; तभी शायद आप ऐसा कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, नरेन्द्र से)*— अच्छा, मेरा क्या भाव है?

नरेन्द्र— वीरभाव, सखीभाव— सब भाव।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण— वे कौन ?)

ठाकुर यह बात सुनकर जैसे भाव में पूर्ण हो गए हैं, हृदय पर हाथ रख कर क्या कुछ कहते हैं !

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्रादि भक्तों से)*— देख रहा हूँ इसके भीतर से ही है जो कुछ है।

नरेन्द्र से इंगित करके पूछ रहे हैं,
''क्या समझा ?''

नरेन्द्र— (''जो कुछ'' अर्थात्) जो सृष्ट पदार्थ, सब आपके भीतर से !

श्रीरामकृष्ण *(राखाल के प्रति आनन्द से)*— देखा !

ठाकुर नरेन्द्र से एक गाना गाने के लिए कह रहे हैं। नरेन्द्र सुर से गा रहे हैं। नरेन्द्र का त्याग का भाव है— गा रहे हैं—

''नलिनीदलगतजलमतितरलम् तद्वज्जीवनमतिशयचपलम्
क्षणमिह, सज्जनसंगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका।''

[भावार्थ— कमलों के दल जैसे जल में चञ्चल रहते हैं वैसे ही जीवन अतिशय चपल है। एक क्षण के लिए भी सज्जन की संगति संसार-समुद्र को पार करने वाली नौका हो जाती है।]

दो-एक चरण गाने पर ही ठाकुर नरेन्द्र को इंगित करके कह रहे हैं,
''वह क्या ! वह क्या ! वह तो अति सामान्य भाव है !''

नरेन्द्र अब सखी-भाव का गाना गा रहे हैं—

काहे सइ जियत मरत कि विधान !
ब्रज का किशोर सइ कहाँ गेलो भागइ, ब्रजजन टुटायलो पराण॥
मिलि सइ नागरी, भूलि गई माधव, रूपविहीन गोपकुँआरी।
को जाने पिय सइ, रसमय प्रेमिक हेनो बन्धु रूप कि भिखारी॥
आगे नाहिं बुझनु, रूप हेरि भुलनु, हृदि कैनु चरण युगल।
यमुना सलिले सइ, अब तनु डारबो, आन सखी भखिबो गरल॥
(किवा) कानन बल्लरी, गल बेढ़ि बांधई,

नवीन तमाले दिवो फाँस।
नहे श्याम श्याम श्याम श्याम श्याम नाम जपई,
छार तनु करिवो बिनाश॥

[भावार्थ— हे सखी, यह जीने-मरने का कैसा विधान है! सखी, ब्रजकिशोर कहाँ भाग गए हैं। ब्रजगोपियों के तो प्राण ही निकल रहे हैं। माधव को तो सखी, सुन्दर लड़कियाँ मिल गई हैं, वे रूपविहीन गोपकन्या को भूल गए हैं। सखी, कौन जानता था रसमय रसिक ऐसे रूप के भिखारी हो जाएँगे! मैं पहले नहीं समझ पाई थी; रूप देखकर भूल गई, और हृदय में उनके युगल चरण धारण कर लिए। अब मैं यमुना-जल में सखी! शरीर डुबा दूँ या विष खा लूँ? अथवा वन की बेलों को गले में फँसा कर नए तमाल पर लटक जाऊँ? नहीं तो श्याम श्याम श्याम श्याम श्याम नाम जपते हुए शरीर छोड़कर इसका विनाश कर दूँ!]

गाना सुनकर ठाकुर और भक्तगण मुग्ध हो गए हैं। ठाकुर और राखाल के नयनों से प्रेमाश्रु गिर रहे हैं। नरेन्द्र फिर और ब्रजगोपियों के भाव में मतवाले होकर कीर्त्तन को सुर में गा रहे हैं—

तुमि आमार, आमार बँधु, कि बोलि
(कि बोलि तोमाय नाथ)।
(कि जानि कि बोलि आमि अभागिनी नारीजाति)।
तुमि हातोंकि दर्पण, माथोकि फूल
(तोमाय फूलकरे केशे परबो बँधु)।
(तोमाय कबरीर सने लुकाये लुकाये राखबो बँधु)
(श्यामफूल परिले केउ नखते नारबे)।
तुमि नयनेर अंजन बयानेर ताम्बुल
(तोमाय श्याम अंजन करे एंके परबो बँधु)
(श्याम अंजन परेछि बले केउ नखते नारबे)
तुमि अंगकि मृगमद गिमकि हार
(श्यामचन्दन माखिशीतल होबो बँधु)
तोमार हार कण्ठे पर्‌बो बँधु।
तुमि देहकि सर्वस्व गेहकि सार॥
पाखी को पाख मीन को पानी।
तेयसे हम बँधु तुया मानि॥

[भावार्थ— क्या कहूँ मैं नाथ तुम्हें, तुम मेरे हो, मेरे अपने बन्धु हो। मैं क्या जानूँ अभागिनी नारी जाति ? तुम हाथों के दर्पण, माथे के फूल हो, तुम्हें फूल बनाकर केशों में पहन लूँगी मेरे बन्धु! तुम्हें खोपे (जूड़े) में खोंस कर छिपा लूँगी। श्यामफूल लगा लेने पर कोई देख भी नहीं सकेगा। तुम नयनों के अंजन हो, मुख के पान हो। तुम्हें श्याम, अंजन बनाकर आँखों में लगा लूँगी। श्याम-अंजन लगने पर कोई देख भी नहीं पाएगा। तुम अंग की मृगमद कस्तूरी हो, गले का हार हो। श्यामचन्दन का लेप करके शीतल हो जाऊँगी मेरे प्रियतम! तुम्हारा हार कण्ठ में पहन लूँगी प्रिय! तुम देह का सर्वस्व और गेह का सार हो। पक्षी के लिए जैसे पंख और मीन को जैसे पानी है, हे मेरे बन्धु, तुम तैसे ही मेरे लिए हो।

पञ्चविंश खण्ड

काशीपुर–बागान में नरेन्द्रादि भक्तों के संग ठाकुर श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(बुद्धदेव और ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग में काशीपुर–बागान में हैं। आज शुक्रवार, समय 5 का— चैत्र शुक्ला पञ्चमी, 9 अप्रैल, 1886 ईसवी।

नरेन्द्र, काली, निरंजन, मास्टर नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं।

निरंजन *(मास्टर के प्रति)*— विद्यासागर का नया एक स्कूल शायद होगा? नरेन्द्र को इसका कोई काम मिल जाए!

नरेन्द्र— विद्यासागर के पास और नौकरी करने का काम नहीं!

नरेन्द्र अभी बुद्धगया से लौटे हैं। वहाँ पर बुद्धमूर्ति–दर्शन किए एवं उस मूर्ति के सम्मुख गम्भीर ध्यान में निमग्न हो गए थे। जिस वृक्ष के नीचे बुद्धदेव को तपस्या करके निर्वाण प्राप्त हुआ था, उसी वृक्ष के स्थान पर एक नूतन वृक्ष हो गया है, उसका भी दर्शन किया था। काली ने बताया, ''एक दिन गया के उमेश बाबू के घर में नरेन्द्र ने गाना गाया था— मृदंग के साथ; ख्याल, ध्रुपद इत्यादि।''

श्रीरामकृष्ण हाल कमरे में बिछौने पर बैठे हुए हैं। रात्रि कई दण्ड* हो गई है। मणि एकाकी पंखा कर रहे हैं— लाटु आकर बैठ गए।

---

* दण्ड = 60 पल या 24 मिनट का समय।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— एक गायेर चादर (शाल) और एक जोड़ा चटि जूता (एक जोड़ी स्लीपर) लाना।

मणि— जो आज्ञा।

श्रीरामकृष्ण *(लाटु से)*— चद्दर दस आने की और जूता— सब मिला कर कितना दाम हुआ ?

लाटु— एक रुपया दस आना।

ठाकुर ने मणि को दाम की बात सुनने के लिए इंगित किया।

नरेन्द्र आकर बैठ गए। शशी, राखाल तथा और भी दो-एक भक्त आकर बैठ गए। ठाकुर नरेन्द्र को पैरों पर हाथ फेरने के लिए कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण इंगित करके नरेन्द्र से पूछ रहे हैं— "खाया ?"

(बुद्धदेव क्या नास्तिक ? 'अस्ति, नास्ति के मध्य की अवस्था')

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति, सहास्य)*— वहाँ पर (अर्थात् बुद्धगया) गया था।

मास्टर *(नरेन्द्र के प्रति)*— बुद्धदेव का क्या मत है ?

नरेन्द्र— उन्होंने तपस्या के पश्चात् क्या पाया, वह मुख से नहीं बोल सके। इसी कारण सब ही कहते हैं 'नास्तिक'।

श्रीरामकृष्ण *(इंगित करके)*— नास्तिक क्यों ? नास्तिक नहीं, मुख से नहीं बोल सके। बुद्ध क्या है, जानते हो ? बोध-स्वरूप का चिन्तन कर-कर के वही होना— बोध-स्वरूप होना।

नरेन्द्र— जी हाँ। इनकी तीन श्रेणियाँ हैं— बुद्ध, अर्हत् और बोधि-सत्व।

श्रीरामकृष्ण— यह है उनका ही खेल— नूतन एक विशेष लीला।

"नास्तिक क्यों होने जाएगा! जहाँ पर स्वरूप का बोध होता है, वहाँ पर अस्ति-नास्ति के मध्य की अवस्था है।"

नरेन्द्र *(मास्टर के प्रति)*— यह वह अवस्था है जिसमें contradictions

meet (विरोध-समन्वय) है— जिस हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से शीतल जल तैयार होता है, उसी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के द्वारा ऑक्सिहाइड्रोजन-ब्लोपाइप Oxyhydrogen-blowpipe— (ज्वलन्त, अति उष्ण अग्नि-शिखाएँ) उत्पन्न होती हैं।

"जिस अवस्था में कर्म और कर्मत्याग दोनों ही सम्भव हैं अर्थात् निष्काम कर्म।

"जो संसारी इन्द्रियों के विषय लेकर रहते हैं, वे कहते हैं, सब 'अस्ति' और मायावादीगण कहते हैं— 'नास्ति'। बुद्ध की अवस्था इसी 'अस्ति', 'नास्ति' के परे है।

श्रीरामकृष्ण— यह अस्ति, नास्ति प्रकृति का गुण है। जहाँ पर ठीक-ठीक बोध है, वहाँ अस्ति, नास्ति नहीं है।

भक्तगण कुछ क्षण सब चुप रहे। ठाकुर फिर और बातें करते हैं।

(बुद्धदेव की दया और वैराग्य और नरेन्द्र)

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— उनका (बुद्धदेव का) क्या मत है?

नरेन्द्र— ईश्वर हैं कि नहीं, ऐसी बातें बुद्ध मुख से नहीं बोलते थे। किन्तु दया ली थी।

"एक बाज अपने शिकार पक्षी को पकड़कर खाने लगा, बुद्ध ने उस शिकार के प्राण बचाने के लिए अपने शरीर का माँस उसको दिया था।"

ठाकुर श्रीरामकृष्ण चुप हैं। नरेन्द्र उत्साह के साथ बुद्धदेव की और बातें भी बता रहे हैं।

नरेन्द्र— कैसा वैराग्य! राजा का लड़का होकर सब त्याग कर दिया! जिनका कुछ नहीं है— कोई भी ऐश्वर्य नहीं, वे फिर क्या त्याग करेंगे?

"जब बुद्ध होकर, निर्वाण-लाभ करके, घर में एक बार आए, तब स्त्री को, पुत्र को— राजवंश के अनेकों को— वैराग्य अवलम्बन करने के

लिए कहा। कैसा वैराग्य! किन्तु इधर व्यासदेव का आचरण देखिए— शुकदेव को (संसार-त्याग के लिए) मना करके कहा— पुत्र, गृहस्थ में रहकर धर्म करो!''

ठाकुर चुप किए हुए हैं। अभी भी कोई भी बात नहीं कह रहे।

नरेन्द्र— शक्ति-भक्ति (बुद्ध) कुछ नहीं मानते थे। केवल निर्वाण या वैराग्य। वृक्षतले तपस्या करने के लिए बैठ गए, और बोले— 'इहैव शुष्यतु मे शरीरम्!' अर्थात् यदि निर्वाण लाभ नहीं करता हूँ, तो फिर मेरा शरीर यहीं पर सूख जाए— यह दृढ़ प्रतिज्ञा!

''शरीर ही तो बदमायश (बदमाश) है! उसको काबू किए बिना क्या कुछ होता है!''

शशी— किन्तु तुम जो कहते हो, माँस खा लेने से सत्त्वगुण होता है।— माँस खाना उचित है, यह बात तो कहो।

नरेन्द्र— जैसे माँस खाता हूँ— वैसे ही (माँस त्याग करके) केवल भात भी खा सकता हूँ— लून (नमक) न डालकर भी केवल भात खा सकता हूँ।

कुछ क्षण परे ठाकुर श्रीरामकृष्ण बातें कर रहे हैं। फिर और बुद्धदेव की बातें इंगित करके जिज्ञासा कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— बुद्धदेव के सिर पर जूड़ा (झुंटि) है?

नरेन्द्र— जी नहीं, रुद्राक्ष की माला को बहु बार एकत्रित करने पर जो होता है, वैसा ही सिर पर है।

श्रीरामकृष्ण— चक्षु?

नरेन्द्र— चक्षु समाधिस्थ।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन— 'मैं ही वह')

ठाकुर चुप किए हुए हैं। नरेन्द्र और अन्यान्य भक्तगण उन्हें एकदृष्टि से देख रहे हैं। हठात् उन्होंने ईषत् हास्य करके नरेन्द्र के संग फिर और बातें आरम्भ कीं। मणि हवा कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— अच्छा, यहाँ पर सब है ना? मसूर की दाल, चने की दाल, इमली पर्यन्त।

नरेन्द्र— आप वे सब अवस्थाएँ भोग करके नीचे रह रहे हैं!

मणि *(स्वगत)*— सब अवस्था भोग करके भक्त की अवस्था में!

श्रीरामकृष्ण— कौन (कोई) जैसे नीचे खींचकर रखे हैं!

यह कहकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने मणि के हाथ से पंखा ले लिया एवं फिर और बातें करने लगे।

श्रीरामकृष्ण— यह पंखा जैसे देख रहा हूँ, सामने— प्रत्यक्ष— ठीक वैसे ही मैं (ईश्वर को) देख रहा हूँ! और मैंने देखा है—

यह कह कर ठाकुर अपने हृदय के ऊपर हाथ रखकर इंगित कर रहे हैं और नरेन्द्र से कह रहे हैं,

"क्या कहा मैंने, बता ज़रा?"

नरेन्द्र— समझ गया।

श्रीरामकृष्ण— बता, देखूँ?

नरेन्द्र— अच्छी तरह नहीं सुना।

श्रीरामकृष्ण और दोबारा इंगित कर रहे हैं—

देखा है, वे (ईश्वर) और हृदय के मध्य जो है, एक व्यक्ति है।

नरेन्द्र— हाँ, हाँ, सोऽहम्।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु एक विशेष रेखामात्र है— ('भक्त का मैं' है) सम्भोग जन्य।

नरेन्द्र *(मास्टर से)*— महापुरुष निज का उद्धार हो जाने पर जीव के उद्धार जन्य रहते हैं— अहंकार लेकर रहते हैं— देह का सुख-दुःख लेकर रहते हैं।

"जैसे कुलीगिरी, हमारी कुलीगिरी है on compulsion (जरूरत पड़ने पर)। महापुरुष कुलीगिरी करते हैं शौक से।"

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और गुरु-कृपा)

फिर सब चुप हैं। अहेतुक कृपासिन्धु ठाकुर श्रीरामकृष्ण फिर और बातें कर रहे हैं। आप (स्वयं) क्या हैं, यह तत्त्व नरेन्द्र आदि को फिर और समझा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्रादि भक्तों के प्रति)*— छत तो दिखाई देती है! किन्तु छत के ऊपर चढ़ना बड़ा कठिन है।

नरेन्द्र— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु यदि कोई चढ़ा हुआ हो तो रस्सी डालकर और एक जन को उठा ले जा सकता है।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण की पाँच प्रकार की समाधि)

''ऋषिकेश का साधु आया था। उसने मुझसे कहा, 'कैसा आश्चर्य है! तुम में पाँच प्रकार की समाधि देखी है!

''कभी कपिवत्— देहवृक्ष में बन्दर की भाँति महावायु जैसे इस डाल से उस डाल पर एक-एक बार छलाँग मार कर चढ़ती है और समाधि हो जाती है।

''कभी मीनवत्— मछली जैसे जल के भीतर भी सड़ात्-सड़ात् करके (तेज़ गति से) चली जाती है और सुख से विहार करती है, वैसे ही महावायु देह के भीतर चलती रहती है और समाधि हो जाती है।

''अथवा कभी पक्षीवत्— देहवृक्ष पर पक्षी की भाँति कभी इस डाल पर, कभी उस डाल पर।

''कभी पिपीलिकावत्— महावायु च्युंटी की न्यायीं थोड़ा-थोड़ा करके भीतर ही भीतर चढ़ती रहती है, तत्पश्चात् सहस्रार में वायु चढ़ जाने पर समाधि हो जाती है।''

''कभी अथवा तिर्यकवत्— अर्थात् महावायु की गति सर्प की न्यायीं

टेढ़ी-मेढ़ी (ऐंकी-बैंकी) होती है; फिर सहस्रार में जाकर समाधि।"

राखाल *(भक्तों के प्रति)*— बस, और बातें रहने दो, बहुत बातें हो गई हैं; (ठाकुर को) असुख होगा।

षड्विंश खण्ड

काशीपुर-बागान में सांगोपांगों के संग श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(काशीपुर-बागान में भक्तों के संग में)

श्रीरामकृष्ण काशीपुर के बागान में उसी ऊपर वाले कमरे में शय्या के ऊपर बैठे हुए हैं। कमरे में शशी और मणि हैं। ठाकुर मणि को इशारे से कह रहे हैं, पंखा करने के लिए। वे पंखा झल रहे हैं।

समय प्रात: 5-6 का। सोमवार, चड़क संक्रान्ति*, वासन्ती महाष्टमी-पूजा— चैत्र शुक्लाष्टमी, 31 चैत्र; 12 अप्रैल, 1886 ईसवी।

उसी मुहल्ले में ही चड़क हो रही है। ठाकुर ने एक भक्त को चड़क की कुछ वस्तुएँ खरीद कर लाने के लिए भेजा था। भक्त लौट आए हैं।

श्रीरामकृष्ण— क्या-क्या लाया?

भक्त— बतासे— एक पैसा, बोटि (दरांत)— दो पैसा, कड़छी— दो पैसा।

श्रीरामकृष्ण— छुरी कहाँ?

भक्त— दो पैसे में नहीं दी।

श्रीरामकृष्ण *(व्यग्र होकर)*— जा जा, छुरी ला।

मास्टर नीचे टहले रहे हैं। नरेन्द्र और तारक कलकत्ता से लौटे हैं। वे

* बंगाली वर्ष का अन्तिम दिन। इस दिन मेला आदि भी लगता है।

गिरीश घोष के घर और अन्य-अन्य स्थानों पर गए थे।

तारक— आज हमने माँस-वाँस बहुत खाया।

नरेन्द्र— आज मन अनेक नीचे उतर गया है। तपस्या लगाओ।

(मास्टर के प्रति)— ''कैसी slavery of body, of mind (शरीर का दासत्व— मन का दासत्व) ठीक जैसे कुली की अवस्था! शरीर, मन जैसे मेरे नहीं हैं, और किसी के हैं।''

सन्ध्या हो गई। ऊपर के कमरे में तथा अन्य स्थानों पर प्रकाश कर दिया गया है। ठाकुर बिछौने पर उत्तरास्य हुए बैठे हैं, जगन्माता का चिन्तन कर रहे हैं। कुछ क्षणों पश्चात् फकीर ठाकुर के सम्मुख अपराधभञ्जन-स्तव-पाठ कर रहे हैं। फकीर बलराम के पुरोहित-वंशीय हैं।

''प्राग्देहस्थो यदासं तव चरणयुगं नाश्रितो नार्चितोऽहम्,
तेनाहं दु:खवर्गैर्जठरजननजैर्बाध्यमानो बलिष्ठै: ॥
स्थित्वा जन्मान्तरे नो पुनरिह भविता क्वाश्रय: क्वापि सेवा,
क्षन्तव्यो मेऽपराध: प्रकटितवदने कामरूपे कराले!'' इत्यादि

[भावार्थ— जन्म ग्रहण करने से पूर्व गर्भावस्था में मैंने गर्भस्थ यातनाओं की बहुत ही बलिष्ठ पीड़ा भोगी, लेकिन जन्म ग्रहण करने पर फिर भी मैंने आपके चरणों का आश्रय नहीं लिया और न ही उनकी अर्चना की। अनेक जन्म भोगकर भी मैंने आपका आश्रय नहीं लिया और न ही आपकी सेवा की। हे प्रकटित (खुले) मुख वाली, इच्छानुसार रूप धारण करने वाली कराल देवि, मेरा अपराध क्षमा करना।]

कमरे में शशी, मणि और भी दो-एक भक्त हैं।

स्तवपाठ समाप्त हो गया। ठाकुर श्रीरामकृष्ण अति भक्ति-भाव से हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहे हैं।

मणि पंखा कर रहे हैं। ठाकुर इशारा करके उनसे कह रहे हैं, एक 'पाथर बाटि' (पत्थर की कटोरी) लाना। यह कहकर पत्थर की कटोरी की गठन उँगली द्वारा अंकन करके दिखाई। ''एक पाव, इतना दूध आ जाएगा? सफेद पत्थर की हो।''

मणि— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— और सब बाटियों में झोल खाने से माँस की गन्ध-सी लगती है।

द्वितीय परिच्छेद

(ईश्वरकोटि का क्या कर्मफल, प्रारब्ध है ? योगवाशिष्ठ)

दूसरा दिन मंगलवार, रामनवमी, पहला बैशाख; 13 अप्रैल, 1886 ईसवी। प्रात:काल, ठाकुर श्रीरामकृष्ण ऊपर के कमरे में शय्या पर बैठे हुए हैं। समय 8-9 का होगा। मणि रात थे, प्रात: गंगा-स्नान करके आकर ठाकुर को प्रणाम कर रहे हैं। राम (दत्त) सुबह आए हैं और प्रणाम करके बैठ गए। राम फूलों की माला लाए हैं और ठाकुर को निवेदन की। भक्तों में से अनेक ही नीचे बैठे हुए हैं। दो-एक जन ठाकुर के कमरे में हैं। राम ठाकुर के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(राम के प्रति)*— कैसा देख रहे हो ?

राम— आपका सब ही है। अब रोग की सब बातें उठेंगी।

श्रीरामकृष्ण ने ईषत् हास्य किया और संकेत करके राम से ही पूछ रहे हैं— ''रोग की बातें भी उठेंगी ?''

ठाकुर का चटि जूता पाँव में लगता है। डॉक्टर राजेन्द्र दत्त ने माप देने के लिए कहा— वे फरमाइश (आज्ञा) पर बनवाएँगे। ठाकुर के पाँव का माप ले लिया। (इन पादुकाओं की ही अब बेलुड़मठ में पूजा होती है।)

श्रीरामकृष्ण मणि को संकेत कर रहे हैं, ''कहाँ पाथर बाटि ?'' मणि तत्क्षण उठकर खड़े हो गए— कलकत्ता 'पत्थर की कुँडी' लेने जाएँगे।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, ''अब रहने दे, रहने दे।''

मणि— जी नहीं, ये सब जा रहे हैं, इन्हीं के संग ही जाता हूँ।

मणि ने नूतन बाजार के जोड़ाशांको के चौराहे की एक दुकान से एक सफेद पत्थर की कुण्डी खरीद ली। दोपहर का समय हो गया है, उस समय काशीपुर में वापस आए और ठाकुर के निकट आकर प्रणाम करके वह कुण्डी रख दी। ठाकुर सफेद कुण्डी हाथ में लेकर देख रहे हैं।

डॉक्टर राजेन्द्र दत्त, हाथ में गीता लिए श्रीनाथ डॉक्टर, श्रीयुक्त राखाल, हलदार और भी कई जन भक्त आ उपस्थित हुए। कमरे में राखाल, शशी, छोटे नरेन आदि भक्तगण हैं। डॉक्टरों ने ठाकुर की पीड़ा के सम्बन्ध में समस्त संवाद लिया।

श्रीनाथ डॉक्टर *(बन्धुओं के प्रति)*— सब ही प्रकृति के अधीन हैं। कर्मफल से कोई बच नहीं सकता! प्रारब्ध!

श्रीरामकृष्ण— क्यों?— उनका नाम करने पर, उनका चिन्तन करने पर, उनके शरणागत होने पर—

श्रीनाथ— जी, प्रारब्ध कहाँ जाएगा?— पूर्व-पूर्व जन्म का कर्म?

श्रीरामकृष्ण— थोड़ा-सा तो कर्मफल-भोग होता ही है। किन्तु उनके नाम के गुण से बहुत-सा कर्मपाश कट जाता है। कोई जन पूर्वजन्म के कर्म के कारण सात जन्म अन्धा होता, किन्तु उसने गंगास्नान कर लिया। गंगास्नान से मुक्ति होती है। उस व्यक्ति का चक्षु जैसा अन्धा था वैसा ही रहा, किन्तु और छः जन्म उसके नहीं हुए।

श्रीनाथ— जी, शास्त्र में तो है, कर्मफल किसी के द्वारा भी हटाए नहीं जा सकते।

श्रीनाथ डॉक्टर तर्क करने के लिए उद्यत हो गए।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*—बोल ना! ईश्वरकोटि और जीवकोटि का बहुत अन्तर है। ईश्वरकोटि का अपराध नहीं होता, बोल ना!

मणि चुप किए हुए हैं। वे राखाल से कह रहे हैं, ''तुम बोलो।''

कुछ क्षण के बाद डॉक्टर लोग चले गए। ठाकुर श्रीयुक्त राखाल, हलदार के साथ बातें कर रहे हैं।

हलदार— श्रीनाथ डॉक्टर वेदान्त की चर्चा करते हैं— योगवाशिष्ठ पढ़ते हैं।

श्रीरामकृष्ण— संसारी होकर 'सब स्वप्नवत्'— यह मत अच्छा नहीं।

एक भक्त— कालिदास कहता है, ''वह व्यक्ति भी वेदान्त-चर्चा करता है; किन्तु मुकदमा करके उसका सर्वस्व अन्त (सब धन-सम्पत्ति का नाश) हो

गया है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— सब माया— और फिर मुकदमा! *(राखाल के प्रति)* जनाइयों के मुखुज्ये पहले बड़ी-बड़ी बातें किया करते थे। तत्पश्चात् शेषकाल (अन्त) में खूब समझ गए! मैं यदि ठीक रहता तो उनके संग और थोड़ी देर बातें करता। ज्ञान क्या ज्ञान-ज्ञान कहने पर ही हो जाता है?

(कामजय दृष्टे ठाकुर श्रीरामकृष्ण का रोमाञ्च)

हलदार— बहुत ज्ञान देख लिया है। थोड़ी भक्ति होने पर बचूँ। उस दिन एक बात याद करके आया था। उसकी आपने मीमांसा कर दी है।

श्रीरामकृष्ण *(व्यग्र होकर)*— क्या? क्या?

हलदार— जी, इस लड़के के आने पर आपने कहा कि यह जितेन्द्रिय है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, भाई, उसके *(छोटे नरेन के)* भीतर विषयबुद्धि ने मूल से ही प्रवेश नहीं किया है! वह कहता है काम किसे कहते हैं, नहीं जानता। *(मणि के प्रति)* ''हाथ लगाकर देख, मुझे रोमाञ्च हो रहा है!''

काम नहीं, ऐसी शुद्ध अवस्था याद करके ठाकुर को रोमाञ्च हो रहा है। जहाँ पर काम नहीं वहाँ ईश्वर वर्तमान हैं। यह बात याद करके ही क्या ठाकुर को ईश्वर का उद्दीपन हो रहा है?

राखाल, हलदार ने विदा ली।

श्रीरामकृष्ण अभी भी भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। पगली उन्हें देखने के लिए बड़ा ही उपद्रव करती है। पगली का है मधुर भाव। बागान में प्राय: आती है और दौड़ती-दौड़ती ठाकुर के कमरे में आ जाती है। भक्तगण प्रहार भी करते हैं— किन्तु उससे भी रुकती नहीं।

शशी— पगली अब की बार आई तो धक्का मारकर भगा दूँगा।

श्रीरामकृष्ण *(करुणा भरे स्वर में)*— ना, ना। आएगी, चली जाएगी।

राखाल— पहले-पहले इनके पास और कई जनों के आ जाने पर मुझे डाह हुआ करती थी। उसके पश्चात् इन्होंने कृपा करके मुझे जनवा (समझा)

दिया है— 'मद्‌गुरु श्रीजगत गुरु!' (मेरे गुरु जगत-गुरु)— वे क्या केवल हमारे लिए आए हैं?

शशी— वह तो निश्चय ही नहीं, किन्तु असुख के समय ऐसा उपद्रव क्यों!

राखाल— उपद्रव तो सब ही करते हैं। सब ही क्या शुद्ध होकर उनके निकट आए हैं? उन्हें हमने कष्ट नहीं दिया? नरेन्द्र-वरेन्द्र पहले किस प्रकार के थे— कितना तर्क किया करता था!

शशी— नरेन्द्र जो मुख से कहता था, कार्य में भी वही करता था।

राखाल— डॉक्टर सरकार ने कितना करके उनको बोला है! खोजने, जाँच करने लगो तो कोई भी निर्दोष नहीं है।

श्रीरामकृष्ण *(राखाल के प्रति, सस्नेह)*— कुछ खाएगा?

राखाल— नहीं;— अब खाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण मणि को संकेत कर रहे हैं, तुम आज यहाँ पर खाओगे?

राखाल— खाइए ना! वे कह रहे हैं।

ठाकुर पंचवर्षीय बालक की न्यायीं दिगम्बर हुए भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। उस समय पगली सीढ़ियों से चढ़ कर कमरे के दरवाजे के पास खड़ी हुई है।

मणि *(शशी से, आहिस्ते-आहिस्ते)*— नमस्कार करके जाने के लिए बोलो, कुछ और बोलने का प्रयोजन नहीं है।

शशी ने पगली को नीचे उतार दिया।

आज नववर्ष आरम्भ है, अनेक स्त्री भक्त आई हैं। ठाकुर को और श्री श्री माँ को प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद लिया। श्रीयुक्त बलराम का परिवार, मणिमोहन का परविार, बागबाजार की ब्राह्मणी तथा और भी बहुत-सी स्त्री भक्त आई हैं। कोई-कोई सन्तान आदि को भी लेकर आईं।

वे लोग ठाकुर को प्रणाम करने के लिए ऊपर के कमरे में आईं। किसी-किसी ने ठाकुर के पादपद्मों में पुष्प और अबीर दिया। भक्तों की

दो 9-10 वर्ष की लड़कियाँ ठाकुर को गाना सुना रही हैं—

जुड़ाइते चाइ, कोथाय जुड़ाइ,
कोथा होते आसि, कोथा भेसे जाइ।
फिरे फिरे आसि, कत काँदि हासि,
कोथा जाइ सदा भावि गो ताइ॥

[भावार्थ— शान्ति पाना चाहता हूँ, कहाँ शान्ति पाऊँ? कहाँ से आ रहा हूँ, कहाँ तैरता जा रहा हूँ। लौट-लौटकर जाता हूँ, कितना रोता-हँसता हूँ, कहाँ पर जाऊँ— सर्वदा यही विचार करता हूँ, भाई मेरे।]

गान— हरि हरि बोलरे वीणे।

गान— ओइ आसछे किशोरी, ओइ देख एलो
तोर नयन बांका बंशीधारी।

[ऐ किशोरी, देख, वह सामने आ रहा है, तेरा नयन बाँका बंशीधारी।]

गान— दुर्गानाम जप सदा रसना आमार,
दुर्गमे श्री दुर्गा बिने के करे उद्धार?

[ऐ मेरी रसना, तू सदा दुर्गा-नाम जप करती रह। संकट में बिना दुर्गा के कौन उद्धार करेगा?]

श्रीरामकृष्ण संकेत करके बतला रहे हैं, "माँ! माँ! बड़ा ही सुन्दर कह रही हैं ये!"

ब्राह्मणी का बालकों जैसा स्वभाव है। ठाकुर हँसकर राखाल से इंगित कर रहे हैं, "उसको गाना गाने के लिए बोलो ना!" ब्राह्मणी गाना गा रही हैं। भक्त हँस रहे हैं।

'हरि खेलबो आज तोमार सने,
एकला पेयेछि तोमाय निधुबने।'

[हरि, आज तुम्हारे साथ खेलूँगी। आज तुम मुझे निधुबन में अकेले मिल गए हो।]

लड़कियाँ ऊपर के कमरे से होकर नीचे चली गईं।

शाम का समय है। ठाकुर के निकट मणि और दो-एक भक्त बैठे हुए हैं। नरेन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया। श्रीरामकृष्ण ठीक ही कहते हैं, नरेन्द्र जैसे म्यान से निकली तलवार लेकर टहलता है।

(संन्यासी के कठिन नियम और नरेन्द्र)

नरेन्द्र आकर ठाकुर के पास बैठ गए। ठाकुर को सुनाकर नरेन्द्र स्त्रियों के सम्बन्ध में, जिसका अन्त नहीं, ऐसा विरक्ति-भाव प्रकाश कर रहे हैं। स्त्रियों का संग ईश्वर-लाभ में भयानक विघ्न है— कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण कोई भी बात नहीं कह रहे, सब सुन ही रहे हैं।

नरेन्द्र फिर कह रहे हैं, मैं शान्ति चाहता हूँ, मैं ईश्वर तक को नहीं चाहता। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को एकदृष्टि से देख रहे हैं। मुख में कोई बात नहीं। नरेन्द्र बीच-बीच में सुर करके कह रहे हैं— सत्यम् ज्ञानमनन्तम्।

रात्रि आठ। ठाकुर शय्या पर बैठे हुए हैं, दो-एक भक्त भी सम्मुख बैठे हैं। सुरेन्द्र ऑफिस का काम समाप्त करके ठाकुर से मिलने आए हैं। हाथ में चार सन्तरे (कमलालेबु) और फूलों की दो मालाएँ हैं। सुरेन्द्र भक्तों की ओर एक-एक बार और ठाकुर की ओर एक-एक बार देख रहे हैं, और हृदय की समस्त बातें कह रहे हैं।

सुरेन्द्र *(मणि प्रभृति की ओर देखकर)*— ऑफिस का काम सब खत्म करके आया हूँ। सोचा, दो नौकाओं में पाँव देने से क्या होगा, काज समाप्त करके ही आना अच्छा है। आज पहला बैशाख है और फिर मंगलवार, कालीघाट पर जाना नहीं हो पाया। सोचा (स्वयं) जो काली हैं, जिन्होंने काली को ठीक पहचाना है, उनका दर्शन करने से ही हो जाएगा।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ईषत् हास्य कर रहे हैं।

सुरेन्द्र— गुरु-दर्शन, साधु-दर्शन के लिए सुना है, फूल-फल लेकर आना चाहिए। जभी ये लाया हूँ। आपके लिए रुपया खरच— वह तो भगवान मन देखते हैं। कोई तो एक भी पैसा खरच करते कातर हो जाता है और फिर कोई हजार रुपया खरच करते हुए भी कुछ बोध नहीं करता। भगवान मन की

भक्ति देखते हैं, तब ग्रहण करते हैं।

ठाकुर सिर हिलाकर संकेत करके कह रहे हैं,
''तुम ठीक कहते हो।''

सुरेन्द्र और भी कह रहे हैं,
''कल आ नहीं सका, संक्रान्ति को। आपकी छवि को फूलों द्वारा सजाया।''

श्रीरामकृष्ण मणि को संकेत करके बता रहे हैं,
''आहा, क्या भक्ति है!''

सुरेन्द्र— आ रहा था, ये दो मालाएँ लेता आया, चार आने दाम है।

भक्तगण प्राय: सब ही चले गए। ठाकुर मणि से पाँवों पर हाथ सहला देने के लिए तथा हवा करने के लिए कह रहे हैं।

परिशिष्ट

बराहनगर-मठ

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का प्रथम मठ— नरेन्द्रादि भक्तों का वैराग्य और साधन)

बराहनगर-मठ। ठाकुर श्रीरामकृष्ण के अदर्शन के पश्चात् नरेन्द्रादि एकत्र हुए हैं। सुरेन्द्र की साधु इच्छा से बराहनगर में उनके लिए रहने का एक वास-स्थान हुआ है। वही स्थान आज मठ में परिणत हो गया। ठाकुर-मन्दिर में गुरुदेव ठाकुर श्रीरामकृष्ण की नित्यसेवा है। नरेन्द्र आदि भक्तों ने कहा, अब संसार में नहीं लौटेंगे, 'उन्होंने जो कामिनी-काञ्चन-त्याग करने के लिए कहा है', हम किस प्रकार फिर घर लौटकर जाएँ! शशी ने नित्यपूजा का भार लिया है। नरेन्द्र भाइयों का परिचालन (तत्त्वावधान) कर रहे हैं। भाई भी उनका मुख देखते रहते हैं। नरेन्द्र ने कहा है, साधना करनी होगी, उसके बिना भगवान को नहीं पाया जाएगा। उन्होंने स्वयं और भाइयों ने नाना प्रकार के साधन आरम्भ कर दिए। मन का खेद मिटाने के लिए वेद, पुराण और तन्त्र-मत के अनेक प्रकार के साधनों में प्रवृत्त हो गए। कभी-कभी निर्जन में वृक्षतले, कभी-कभी एकाकी श्मशान के मध्य में, कभी-कभी गंगा-तीर पर साधन करते हैं। मठ के मध्य में या कभी-कभी ध्यान के कमरे में एकाकी जप-ध्यान में दिन यापन करते हैं। और फिर कभी भाइयों के संग में एकत्र मिलित होकर संकीर्त्तनानन्द में नृत्य करते रहते हैं। सब ही, विशेषत: नरेन्द्र, ईश्वर-लाभ जन्य व्याकुल हैं। कभी कहते हैं कि क्या प्रायोपवेशन

(मृत्युकामना से उपवास) करूँ? किस उपाय से उन्हें प्राप्त करूँ?

लाटु, तारक, बूढ़े गोपाल— इन लोगों के रहने का स्थान नहीं है। इनका नाम करके (इनके लिए) सुरेन्द्र ने प्रथम मठ बनाया। सुरेन्द्र ने कहा, ''भाई! तुम लोग इस स्थान पर ठाकुर की गद्दी लेकर रहोगे और हम सब बीच-बीच में यहाँ पर शान्ति पाने आएँगे।'' देखते-देखते कौमार-वैराग्यवान भक्तगण यातायात करते-करते फिर घरों को नहीं लौटे। नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, बाबूराम, शरत्, शशी, काली रह गए। कुछ दिन परे सुबोध और प्रसन्न आ गए। योगीन और लाटु वृन्दावन में थे, एक वर्ष बाद आकर मिल गए। गंगाधर सर्वदा ही मठ में यातायात करते रहते। नरेन्द्र को बिना देखे वे रह ही नहीं सकते थे। उन्होंने 'जय शिव ॐकार' यह आरती-स्तव ला दिया। मठ के भाई लोग 'वाहे गुरुजी की फते' यह जय-जयकार-ध्वनि जो बीच-बीच में करते थे, वह भी गंगाधर ने सिखाई। तिब्बत से लौटने के पश्चात् वे मठ में रह गए थे। ठाकुर के और दो भक्त, हरि और तुलसी, नरेन्द्र तथा उनके भाइयों के सर्वदा दर्शन करने आते। कुछ दिन परे अन्त में वे लोग भी मठ में रह गए।

(नरेन्द्र की पूर्वकथा और श्रीरामकृष्ण का प्यार)

आज शुक्रवार है, 25 मार्च, 1887 ईसवी। मास्टर मठ के भाइयों का दर्शन करने आए हैं। देवेन्द्र भी आए हैं। मास्टर प्राय: दर्शन करने आते हैं और कभी-कभी ठहर जाते हैं। गत शनिवार को आकर शनि, रवि और सोम— तीन दिन थे। मठ के भाइयों का, विशेषत: नरेन्द्र का, अब तीव्र वैराग्य है। जभी वे उत्सुक होकर सर्वदा उन्हें देखने आते हैं।

रात्रि हो गई। आज रात को मास्टर रहेंगे।

सन्ध्या के पश्चात् शशी ने मधुर नाम करते-करते ठाकुर-मन्दिर में प्रकाश जलाया और धूना दिया। वही धूना लेकर जितने कमरों में जितनी छवियाँ हैं, प्रत्येक के निकट जाकर प्रणाम कर रहे हैं।

अब आरती हो रही है। शशी आरती कर रहे हैं। मठ के भाई, मास्टर और देवेन्द्र सब हाथ जोड़कर आरती देख रहे हैं और संग-संग आरती का स्तव गा रहे हैं— 'जय शिव ॐकार, 'जय शिव ॐकार,

ब्रह्मा-विष्णु-सदाशिव! हर हर हर महादेव!!'

नरेन्द्र और मास्टर दोनों जनें बातें कर रहे हैं। नरेन्द्र ठाकुर के पास जाने तक की अनेक पूर्वकथाएँ मास्टर से कह रहे हैं। नरेन्द्र की वयस् अब 24 वर्ष 2 मास होगी।

नरेन्द्र— पहले-पहले जब गया, तब एक दिन भाव में बोले, 'तू आ गया!' ('तुइ ऐसेछिस्'!)

''मैंने सोचा, 'कैसा आश्चर्य! ये जैसे मुझे बहुत दिनों से पहचानते हैं।' तब फिर बोले, 'तू क्या एक ज्योति देख पाता है?'

''मैंने कहा, 'जी हाँ।' सोने से पहले कपाल (मस्तक) के पास क्या जैसे एक विशेष ज्योति घूमती रहती है।''

मास्टर— अब भी देखते हो क्या?

नरेन्द्र— पहले खूब देखता था। यदुमल्लिक के आहार-गृह में (भोजन-गृह में) एक दिन मुझे स्पर्श करके मन ही मन क्या कहा, मैं बेहोश हो गया था। उसी नशे में मैं एक मास तक था!

''मेरा विवाह होगा, सुनकर माँ काली के पाँव पकड़कर रोए थे। रो-रोकर कहा था, 'माँ, वह सब घुमा दे (फेर दे)। नरेन्द्र जैसे डूबे ना!'

''जब पिताजी का स्वर्गवास हो गया, माँ-भाइयों को खाने को नहीं मिलता था, तब एक दिन अन्नदा गुह के संग जाकर उनके दर्शन किए।

उन्होंने अन्नदा गुह से कहा, 'नरेन्द्र का बाप मर गया है, उन्हें बड़ा कष्ट है, अब बन्धु-बान्धवगण सहायता करें तो अच्छा है।

''अन्नदा गुह के चले जाने पर मैं उन पर नाराज हुआ। बोला, क्यों आपने उसको ये सब बातें कहीं? वे तिरस्कृत होकर रोने लगे और बोले, 'ओ रे, तेरे लिए तो मैं द्वार-द्वार पर भिक्षा माँग सकता हूँ।'

''उन्होंने प्यार करके हम लोगों को वशीभूत किया था।''

मास्टर— अणुमात्र भी सन्देह नहीं। उनका था अहेतुक प्यार।

नरेन्द्र— मुझे एक दिन अकेले में एक बात कही। और कोई नहीं था। यह

बात आप (हम लोगों के भीतर) और किसी से मत कहें।

मास्टर— ना, क्या कहा था?

नरेन्द्र— उन्होंने कहा, मैं तो सिद्धि नहीं कर सकता। तेरे भीतर से करूँगा, क्या कहता है? मैंने कहा— 'नहीं, वैसा नहीं होगा।'

"उनकी बातें उड़ा दिया करता— उनसे सुना है आपने। ईश्वर का रूप-दर्शन करते हैं, इस विषय में मैंने कहा था, 'वह सब मन की भूल है।'

"उन्होंने बताया, अरे, मैं कोठी के ऊपर चिल्लाया करता था— अरे, कहाँ हो कौन-कौन भक्त, आओ— तुम लोगों को बिना देखे मेरा प्राण जा रहा है! माँ ने कहा था, भक्त लोग आएँगे, यह देख सब मिल रहा है!

"मैं तब फिर क्या कहूँ, चुप किए रहा।"

(नरेन्द्र अखण्ड का घर— नरेन्द्र का अहंकार)

"एक दिन कमरे का दरवाजा बन्द करके देवेन्द्रबाबू और गिरीशबाबू को मेरे विषय में कहा था, 'उसका घर बता देने पर वह देह नहीं रखेगा'।"

मास्टर— हाँ, सुना है। और हमसे भी अनेक बार कहा था। काशीपुर में रहते हुए तुम्हारी एक बार वह अवस्था हुई थी ना?

नरेन्द्र— उसी अवस्था में बोध हुआ कि मेरा शरीर नहीं है, केवल मुख ही देखता हूँ। ठाकुर ऊपर के कमरे में थे। मेरी नीचे वही अवस्था हुई। मैं उसी अवस्था में रोने लगा। कहने लगा— मुझे क्या हुआ! बूढ़े गोपाल ने ऊपर जाकर ठाकुर को बताया, 'नरेन्द्र रो रहा है'।

"उनसे मिलने पर वे बोले, 'अब पता लग गया, चाबी मेरे पास है!'— मैंने कहा, 'मुझे क्या हुआ!'

"वे अन्य भक्तों की ओर देखकर बोले— वह अपने को जान सकने पर देह नहीं रखेगा, मैं भुलाए रखे हुए हूँ।

"एक दिन कहा था, तेरे मन में यदि है तो कृष्ण को हृदय में देख

सकता है। मैंने कहा, मैं कृष्ण-वृष्ण को नहीं मानता। *(मास्टर और नरेन्द्र का हास्य)*।

"और एक विशेष देखता हूँ, एक-एक जगह वस्तु या मनुष्य देखने से बोध होता है जैसे पहले जन्मों में देखे हैं— जैसे पहचाने-पहचाने हैं। अमहर्स्ट स्ट्रीट में जब शरत् के घर में गया, शरत् से एक बार कहा, यह घर तो जैसे सब मेरा जाना हुआ है। घर के भीतर के रास्ते, कमरे, जैसे बहुत दिनों के पहचाने-पहचाने हैं।

"मैं अपनी मर्जी से कार्य करता, वे (ठाकुर) कुछ नहीं कहते। मैं साधारण ब्राह्मसमाज का मैम्बर हुआ था, आप जानते तो हैं?"

मास्टर— हाँ, वह जानता हूँ।

नरेन्द्र— वे जानते थे, वहाँ पर लड़कियाँ भी जाती हैं। लड़कियों को सामने रखकर ध्यान नहीं किया जाता, जभी निन्दा करते। किन्तु हमें कुछ नहीं कहते। एक दिन केवल कहा, राखाल को ये बातें न बताइयो कि तू 'समाज' का मैम्बर बना है। फिर तो उसकी भी बनने की इच्छा होगी।

मास्टर— तुम्हारे मन का जोर अधिक है, तभी तुम्हें मना नहीं किया।

नरेन्द्र— अनेक दुःख-कष्ट पाकर तब यह अवस्था हुई है। मास्टर महाशय, आपने दुःख-कष्ट नहीं पाया; तभी मानता हूँ दुःख-कष्ट बिना पाए resignation (ईश्वर में समस्त समर्पण) नहीं होता— Absolute dependence on God.

"अच्छा! इतना नम्र और निरहंकार; कितनी विनय! मुझे बता सकते हैं, मुझमें कैसे विनय हो?"

मास्टर— उन्होंने कहा है, तुम्हारे अहंकार के सम्बन्ध में— यह 'अहम्' कार? ('अहं' किसका?)

नरेन्द्र— इसके क्या मायने हैं?

मास्टर— अर्थात् राधिका से एक सखी कहती है, तुझे अहंकार हो गया है— जभी कृष्ण का अपमान किया तूने! और एक सखी ने उसका उत्तर दिया था, हाँ, अहंकार श्रीमती का हुआ था सही, किन्तु यह 'अहं' किसका है? अर्थात् कृष्ण मेरा पति— यही अहंकार। कृष्ण ने ही यह अहं रख दिया है। ठाकुर

की बात के मायने यही हैं कि ईश्वर ने ही यह अहंकार तुम्हारे भीतर रख दिया है, अनेक काज करवा लेने के लिए!

नरेन्द्र— किन्तु मैं पुकार-पुकार कर कहता हूँ मुझे दुःख नहीं है।

मास्टर *(सहास्य)*— तो फिर शौक से पुकार करो। *(दोनों का हास्य)*

अब अन्य भक्तों की बातें चलीं— विजय गोस्वामी प्रभृति की।

नरेन्द्र— उन्होंने विजय गोस्वामी की बात बताई थी, 'द्वारे घा दिच्छे' (द्वार खटखटा रहा है)।

मास्टर— अर्थात् कमरे के भीतर अभी तक भी प्रवेश नहीं कर पाए हैं।

"किन्तु श्यामपुकुर के घर में विजय गोस्वामी ने ठाकुर से कहा था, 'मैंने आपका ढाका में इसी आकार में दर्शन किया है, इसी शरीर में।' तुम भी वहाँ पर उपस्थित थे।"

नरेन्द्र— देवेन्द्रबाबू, रामबाबू, ये सब संसार-त्याग करेंगे— खूब चेष्टा करते हैं। रामबाबू privately (अकेले में) कहते हैं, दो वर्ष पश्चात् त्याग करेंगे।

मास्टर— दो वर्ष पश्चात्? लड़के-लड़कियों का बन्दोबस्त होने पर शायद?

नरेन्द्र— और उस घर को भाड़े पर देगा। और एक छोटा घर खरीदेगा। लड़की का विवाह-शिवाह वे लोग (अन्य सम्बन्धी) देखेंगे।

मास्टर— गोपाल की सुन्दर अवस्था है ना?

नरेन्द्र— क्या अवस्था?

मास्टर— इतना भाव, हरि-नाम में अश्रु-रोमाञ्च!

नरेन्द्र— भाव होने से ही क्या बड़ा लोग हो गया!

"काली, शरत्, शशी, शारदा— ये गोपाल की अपेक्षा कितने बड़े व्यक्ति हैं! इनका त्याग कितना है! गोपाल उनको (ठाकुर श्रीरामकृष्ण को) कहाँ मानता है?

मास्टर— उन्होंने तो चाहे कहा भी है, वह यहाँ का व्यक्ति नहीं है। किन्तु ठाकुर की तो खूब भक्ति किया करते थे, देखा है।

नरेन्द्र— क्या देखा है?

मास्टर— जब प्रथम-प्रथम दक्षिणेश्वर गया, ठाकुर के कमरे में भक्तों का दरबार भंग हो जाने पर कमरे के बाहर आकर एक दिन देखा— गोपाल घुटने टेक कर बागान की लाल सुरखी वाले पथ पर हाथ जोड़े हैं— ठाकुर वहाँ पर खड़े हैं। चाँद का खूब प्रकाश है। ठाकुर के कमरे के ठीक उत्तर में जो बरामदा है उसके ही ठीक उत्तर के किनारे लाल सुरखी का मार्ग है। वहाँ पर और कोई नहीं था। बोध हुआ जैसे गोपाल शरणागत हुए हैं और ठाकुर आश्वासन दे रहे हैं।

नरेन्द्र— मैंने नहीं देखा।

मास्टर— और बीच-बीच में कहते 'उसकी परमहंस-अवस्था है।' किन्तु यह भी खूब अच्छे-से याद है— ठाकुर ने उनको स्त्री भक्तों के पास आना-जाना करने से मना किया था! अनेक बार सावधान किया था।

नरेन्द्र— और उन्होंने मुझसे कहा था— उसकी यदि परमहंस-अवस्था है तो फिर रुपया क्यों? और कहा था, 'वह यहाँ का व्यक्ति नहीं है। जो मेरे अपने व्यक्ति हैं वे यहाँ पर सर्वदा आएँगे।'

"तभी तो... बाबू के ऊपर वे नाराज होते थे। कारण, वे सर्वदा साथ रहते थे, और ठाकुर के पास अधिक नहीं आते थे।

"मुझसे कहा था, 'गोपाल सिद्ध— हठात् सिद्ध; वह यहाँ का आदमी नहीं। यदि अपना होता तो उसको देखने के लिए मैं रोया क्यों नहीं?'

"कोई-कोई उन्हें नित्यानन्द कह कर खड़ा कर रहे हैं। किन्तु उन्हीं ने (ठाकुर ने) कितनी बार कहा है— 'मैं ही अद्वैत-चैतन्य-नित्यानन्द, एक आधार में तीन'।"

द्वितीय परिच्छेद

(नरेन्द्र के प्रति लोकशिक्षा का आदेश)

मठ में काली तपस्वी के कमरे में दो भक्त बैठे हैं। एक त्यागी और एक गृही। दोनों की ही वयस् 24/25। दोनों ही बातें कर रहे हैं। इस समय मास्टर आ गए। वे मठ में तीन दिन रहेंगे।

आज गुडफ्राइडे, 8 अप्रैल, शुक्रवार। अब समय 8 का होगा। मास्टर ने आकर ठाकुर-मन्दिर में जाकर ठाकुर को प्रणाम किया। तत्पश्चात् नरेन्द्र, राखाल इत्यादि भक्तों के साथ मिलकर क्रमश: इस कमरे में आकर बैठ गए और उन्हीं दो भक्तों से सम्भाषण करके क्रमश: उनकी बातें सुनने लगे। गृही भक्त की इच्छा है संसार-त्याग करूँ। मठ के वे भाई उन्हें समझा रहे हैं, जिससे वे संसार-त्याग न करें।

त्यागी भक्त— कुछ कर्म जो हैं, उन्हें कर डालो ना! थोड़ा-सा कर लेने पर ही फिर शेष हो जाएगा।

''एक व्यक्ति ने सुना था, उसको नरक मिलेगा। उसने एक मित्र से कहा, नरक कैसा होता है जी? मित्र एक खड़िया लेकर नरक आँकने लगा। नरक ज्योंहि आँका गया, वह व्यक्ति उस पर लोट-पोट हो गया और बोला, अब मेरा नरक-भोग हो गया।''

गृही भक्त— मुझे संसार अच्छा नहीं लगता। आहा, तुम लोग कैसे हो!

त्यागी भक्त— तू इतना बकता क्यों है? यदि निकलना है तो निकल आ, नहीं तो क्यों एक बार शौक से भोग नहीं कर लेता?

नौ बजे के बाद ठाकुर-मन्दिर में शशी ने पूजा की।

प्राय: ग्यारह बज गए। मठ के भाई क्रमश: गंगास्नान करके आ गए। स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण करके प्रत्येक ठाकुर-मन्दिर में जाकर ठाकुर को प्रणाम और तत्पश्चात् ध्यान करने लगे।

ठाकुर के भोग के पश्चात् मठ के भाइयों ने बैठकर प्रसाद पाया; मास्टर ने भी वही प्रसाद पाया।

सन्ध्या हो गई। धूना देने पर क्रमश: आरती हुई। दानवों के कमरे में राखाल, शशी, बूढ़े गोपाल और हरीश बैठे हैं। मास्टर भी हैं। राखाल ठाकुर के लिए खाना खूब सावधानी से रखने के लिए कह रहे हैं।

राखाल *(शशी आदि के प्रति)*— मैंने एक दिन इनके जलपान करने से पहले खा लिया था। वे देखकर बोले, 'तेरी ओर देख भी नहीं सकता हूँ। तू ने क्यों ऐसा कर्म किया!' मैं रोने लग पड़ा।

बूढ़े गोपाल— मैंने काशीपुर में उनके आहार के ऊपर जोर से निश्वास छोड़ दिया, तब वे बोले, 'यह खाना रहने दे।'

बरामदे के ऊपर मास्टर नरेन्द्र के साथ टहल रहे हैं और दोनों अनेक बातें कर रहे हैं।

नरेन्द्र बोले,

"मैं तो कुछ भी नहीं मानता था। जानते तो हैं?"

मास्टर—क्या, रूप-टूप?

नरेन्द्र— वे जो-जो कहते, पहले-पहल बहुत-सी बातें ही नहीं मानता था। एक दिन उन्होंने कहा था, 'तो फिर आता क्यों है?'

"मैंने कहा, आपको देखने आता हूँ, बातें सुनने के लिए नहीं।"

मास्टर— वे क्या बोले?

नरेन्द्र— वे खूब खुश हुए।

अगला दिन शनिवार, 9 अप्रैल, 1887! ठाकुर के भोग के पश्चात् मठ के भाइयों ने आहार किया और थोड़ा विश्राम भी किया। नरेन्द्र और मास्टर मठ के पश्चिम की तरफ जो बागान है, उसके एक वृक्षतले बैठकर निर्जन में बातें कर रहे हैं। नरेन्द्र ठाकुर के साथ साक्षात्कार के बाद जितनी भी, सब पूर्वकथा बता रहे हैं। नरेन्द्र की वयस् 24, मास्टर की 32 वर्ष।

मास्टर— प्रथम दर्शन का दिन तो तुम्हें खूब अच्छा याद है।

नरेन्द्र—वह दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में— इनके ही कमरे में। उस दिन ये

दोनों ही गाने गाए थे—

मन चलो निज निकेतने।
संसार विदेशे, विदेशीर वेशे, भ्रम केनो अकारणे॥
विषय पञ्चक आर भूतगण, सब तोर पर केउ नय आपन।
परप्रेमे केनो होइये मगन; भूलिछो आपन जने॥
सत्यपथे मन करो आरोहण, प्रेमेर-आलो ज्वालि चल अनुक्षण।
संगेते सम्बल राख पुण्य धन, गोपने अति यतने॥
लोभ मोह आदि पथे दस्युगण पथिकेर कोरे सर्वस्व मोषण।
परम यतने राखो रे प्रहरी शम दम दुइ जने॥
साधु संग नामे आछे पान्थधाम, श्रान्त होले तथा करिओ विश्राम।
पथभ्रान्त होले सुधाइओ पथ से पान्थ-निवासीजने॥
यदि देखो पथे भयेरि आकार, प्राणपणे दिओ दोहाइ राजार।
से पथे राजार प्रबल प्रताप, शमन डरे जाँर शासने॥

[भावार्थ— हे मन, चलो अपने घर। संसार-विदेश में, विदेशी के वेश में क्यों अकारण घूम रहा है? पाँचों विषय (रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श) और सारे भूतगण (धरती, जल, अग्नि, वायु, आकाश) सब पराये हैं। तेरा अपना इनमें कोई नहीं है। पराये प्रेम में क्यों मगन हो रहा है और अपने जन को भूल रहा है। मन को सत्यपथ पर आरोहण करो, प्रेम का आलोक अनुक्षण जलाओ। गोपन में अति यत्न से संग में पुण्य धन को आश्रय में रखो। पथ में लोभ, मोह आदि चोर पथिक का सर्वस्व लूट लेते हैं। हे मन, परम यत्न से शम, दम दोनों को प्रहरी रखो। साधु-संग, नाम में पान्थ-धाम (धर्मशाला) है— श्रान्त (थकावट) होने पर वहाँ विश्राम करना। मार्ग भूलने पर वहाँ के पान्थ-निवासियों से रास्ता पूछना। यदि मार्ग में भय की मूर्ति देखो तो प्राणपण से राजा की दुहाई देना। उस पथ पर राजा का प्रबल प्रताप है, यमराज भी जिनके शासन में डरता है।]

गान— जाबे कि हे दिन आमार विफले चलिये।
आछि नाथ दिवानिशि आशापथ निरखिये॥
तुमि त्रिभुवन नाथ, आमि भिखारी अनाथ।
केमने बोलिबो तोमाय, एशो हे मम हृदये॥
हृदय-कुटीर-द्वार, खुले राखि अनिबार॥
कृपा करि एक बार एशे कि जुड़ाबे हिये॥

[भावार्थ— क्या मेरे दिन सब व्यर्थ ही चले जाएँगे? हे नाथ, मैं रात-दिन आशापथ को निरखता रहता हूँ। तुम त्रिभुवन के नाथ हो और मैं भिखारी, अनाथ हूँ। किस प्रकार आप

से कहूँ कि मेरे हृदय में आओ। अपने हृदय-कुटीर का द्वार हर समय खुला रखे हुए हूँ। कृपा करके एक बार आकर उसे शान्त करें।]

मास्टर— गाना सुनकर क्या बोले?

नरेन्द्र— उनको भाव हो गया था। रामबाबू आदि ने पूछा, 'यह लड़का कौन है? आहा, कैसा गाना!' मुझे फिर और आने के लिए कहा।

मास्टर— उसके बाद कहाँ मिले थे?

नरेन्द्र— तब फिर राजमोहन के घर में। उसके बाद फिर दक्षिणेश्वर में। उस बार मुझे देखकर भाव में मेरे लिए स्तव करने लगे। स्तव करके बोलने लगे, 'नारायण, तुम मेरे लिए देह धारण करके आए हो।'

"किन्तु ये बातें किसी से भी न कहिएगा।"

मास्टर— और क्या बोले?

नरेन्द्र— तुम मेरे लिए देह धारण करके आए हो। माँ से कहा था, 'माँ, मैं क्या जा सकता हूँ! जाकर किसके संग में बातें करूँगा? माँ, कामिनी-काञ्चन-त्यागी, शुद्ध भक्त पाए बिना कैसे पृथ्वी पर रहूँगा?' बोले, 'तूने रात को आकर मुझे उठाया, और मुझसे कहा 'मैं आया हूँ।' मैं किन्तु कुछ नहीं जानता, कलकत्ता के घर में उम्दा नींद ले रहा था।

मास्टर— अर्थात् तुम एक समय में present (उपस्थित) भी हो, तथा absent (अनुपस्थित) भी, जैसे ईश्वर साकार भी हैं, निराकार भी हैं!

नरेन्द्र— किन्तु यह बात किसी से मत कहें।

(नरेन्द्र के प्रति लोकशिक्षा का आदेश)

नरेन्द्र— किन्तु यह बात किसी से मत कहें। काशीपुर में उन्होंने मेरे भीतर शक्ति संचार कर दी थी।

मास्टर— जिस समय काशीपुर के बागान में वृक्षतले धूनि जला कर बैठते थे, तब?

नरेन्द्र— हाँ! काली से कहा, मेरा हाथ पकड़ तो। काली बोला, कैसा एक

shock (झटका) तुम्हारा शरीर पकड़ने से मेरे शरीर में लगा।

"यह बात (हमारे बीच है) किसी से भी न कहें, प्रोमिज करें (वचन दें)।"

मास्टर— तुम्हारे ऊपर शक्ति–संचार की, इसका विशेष उद्देश्य है, तुम्हारे द्वारा अनेक कार्य होंगे। एक दिन एक कागज पर लिखकर कहा था, 'नरेन शिक्षा दिबे' (नरेंद्र शिक्षा देगा)।

नरेन्द्र— मैंने किन्तु कहा था, 'मैं वह सब नहीं कर सकूँगा।'

"वे बोले, 'तेरे हाड़ करेंगे'। शरत का भार मेरे ऊपर दे दिया। वह अब व्याकुल हो गया है। उसकी कुण्डलिनी जाग्रत हो गई है।"

मास्टर— अब पत्ता न जमे। ठाकुर कहते, शायद याद है, कि तालाब के भीतर मछली का गड्ढा होता है अर्थात् गर्त, जहाँ पर मछलियाँ आकर विश्राम करती हैं। जिस गड्ढे में पत्ते जम जाते हैं, उस गड्ढे में मछली आकर नहीं रहती।

(नरेन्द्र का अखण्ड का घर)

नरेन्द्र— मुझे नारायण कहा करते।

मास्टर— तुम्हें "नारायण" कहा करते— यह जानता हूँ।

नरेन्द्र— अपनी बीमारी के समय शौच का जल पहले देने नहीं देते थे।

"काशीपुर में कहा था— 'चाबी मेरे पास है, वह अपने को जान लेने पर देहत्याग कर देगा।'

मास्टर— जब तुम्हारी एक दिन वैसी अवस्था हुई थी ना?

नरेन्द्र— उस समय बोध हुआ था कि मेरा शरीर नहीं है, केवल मुख ही है। घर में कानून पढ़ रहा था, एग्जामिनेशन (परीक्षा) देने के लिए। तब हठात् मन में आया, क्या कर रहा हूँ!

मास्टर— ठाकुर तब काशीपुर में थे?

नरेन्द्र— हाँ। पागल की भाँति घर से निकल पड़ा। उन्होंने पूछा, 'तू क्या

चाहता है ?' मैंने कहा, 'मैं समाधिस्थ हुए रहूँगा।' उन्होंने कहा, तू तो बड़ा हीनबुद्धि है! समाधि के परे जो! समाधि तो तुच्छ बात।

मास्टर— हाँ, वे कहते, ज्ञान के परे है विज्ञान— छत पर चढ़कर फिर सीढ़ियों से आना-जाना करना।

नरेन्द्र— काली ज्ञान-ज्ञान करता है। मैं उसे डाँटता हूँ, ज्ञान कैसे होगा? पहले भक्ति पक्की हो।

"और फिर तारकबाबू को दक्षिणेश्वर में बोले थे— भाव, भक्ति, कुछ भी शेष (अन्तिम) नहीं।"

मास्टर— तुम्हारे विषय में और क्या-क्या कहा है, बोलो!

नरेन्द्र— मेरी बात पर इतना विश्वास था कि जब मैंने कहा, 'आप रूप-टूप जो देखते हैं वे सब मन की भूल है', तब माँ के पास जाकर पूछा, 'माँ, नरेन्द्र ने ऐसी बातें कहीं हैं, तो फिर क्या यह सब भूल है'? तत्पश्चात् मुझसे कहा, 'माँ ने कहा है, वह सब सत्य है!'

"कहते, शायद याद है, 'तेरा गाना सुनकर (छाती पर हाथ रखकर दिखाकर) इसके भीतर जो हैं, वे साँप की न्यायीं फुँकार करके जैसे फण धारण करके, स्थिर होकर सुनते रहते हैं'।

"किन्तु मास्टर महाशय, इतना उन्होंने कहा, मेरा फिर क्या हुआ!"

मास्टर— अब शिव सजे हो, पैसा तो लेना ही नहीं। ठाकुर की गल्प तो याद है?

नरेन्द्र— क्या, बताइए ना, एक बार!

मास्टर— एक बहुरूपिया शिव बना था। जिनके घर गया था, वे एक रुपया देने आए थे, उसने नहीं लिया! घर जाकर हाथ धोकर आकर रुपया माँगा। घर वालों ने कहा, तब तो लिया नहीं? वह बोला, 'तब शिव बना हुआ था— संन्यासी— रुपया छूना भी जो नहीं।'

यह बात सुनकर नरेन्द्र अनेक क्षण तक खूब हँसते रहे।

मास्टर— अब तुम रोजा (ओझा, भूत-प्रेत झाड़ने वाला) सजे हो। तुम्हारे

ऊपर सब भार है। तुम मठ के भाइयों को मनुष्य बनाओगे।

नरेन्द्र— साधन-वाधन जो हम करते हैं, वह सब उनके कहने से किन्तु strange (आश्चर्यजनक) है कि रामबाबू इसी साधन के लिए उलाहना देते हैं। रामबाबू कहते हैं, 'उनके दर्शन कर लिए अब फिर और साधन क्या?'

मास्टर— जिसका जैसा विश्वास, वह जो चाहे करे।

नरेन्द्र— हम लोगों को तो वे साधना करने के लिए कह गए हैं।

नरेन्द्र ठाकुर के प्यार की बातें फिर और बता रहे हैं।

नरेन्द्र— मेरे लिए माँ के निकट कितनी बातें कही हैं! जब खाने को नहीं मिलता था— बाबा की मृत्यु हो गई थी— घर में खूब कष्ट था— तब मेरे लिए माँ से रुपयों की प्रार्थना की थी।

मास्टर— वह जानता हूँ, तुम से सुना था।

नरेन्द्र— रुपया नहीं हुआ। वे बोले, माँ कहती है— मोटा भात, मोटा कपड़ा हो सकता है। भात-दाल हो सकता है।

"इतना मेरे लिए प्यार— किन्तु जब कोई अपवित्र भाव आया, तुरन्त जान गए! अन्नदा के संग में जब घूमता था, असत् व्यक्तियों के संग में तब कभी जा पड़ा था। उनके पास आने पर मेरे हाथ से फिर नहीं खाया, थोड़ा-सा हाथ उठा और नहीं उठता था। उनकी बीमारी के समय उनके मुख तक हाथ उठा और आगे नहीं उठा था। बोले, 'तेरा अभी तक भी नहीं हुआ।'

"एक-एक बार खूब अविश्वास आता। बाबूराम के घर में बोध हुआ, कुछ नहीं है। जैसे— ईश्वर-फीश्वर कुछ भी नहीं है।"

मास्टर— ठाकुर तो कहा करते थे, उनकी भी ऐसी अवस्था एक-एक बार होती थी।

दोनों जन चुप किए हुए हैं। मास्टर कह रहे हैं—

"धन्य तुम लोग! रात-दिन उनका चिन्तन कर रहे हो!"

नरेन्द्र कहते हैं,
"कहाँ? उनको देख नहीं पा रहा हूँ, इस कारण शरीरत्याग करने की इच्छा कहाँ होती है?"

रात्रि हो गई। निरंजन श्री पुरीधाम से कुछ क्षण हुए लौटे हैं। उनको देखकर मठ के भाई और मास्टर सभी आनन्द प्रकाश कर रहे हैं। वे पुरी-यात्रा का विवरण कहने लगे। निरंजन की वयस् अब 25-26 होगी। सन्ध्या-आरती के बाद कोई-कोई ध्यान कर रहे हैं। निरंजन लौटे हैं, इसलिए अनेक ही बड़े घर में (दानवों के घर में) आकर बैठ गए और सदालाप करने लगे। रात 9 बजे के बाद शशी ने श्री ठाकुर जी को भोग दिया और उन्हें शयन करवाया।

मठ के भाई निरंजन को लेकर रात का आहार करने के लिए बैठे। खाने में रोटी, एक सब्जी और थोड़ा गुड़ है, और ठाकुर का यत्किंचित् सूजी की पायस आदि प्रसाद है।

ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कलकत्ता—
मास्टर महाशय (श्री म) का कमरा और तख्तपोश

श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ, चण्डीगढ़—
पूजा तथा ध्यानकक्ष

श्रीरामकृष्ण साहित्य

श्रीरामकृष्ण आश्रम, त्रिवेन्द्रम के स्वामी विमलानन्द ने कहा था : "भारत के पिछले एक सौ वर्षों के धार्मिक इतिहास में दो घटनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं—

एक— स्वामी विवेकानन्द का पश्चिम में चार वर्ष का प्रवास और भारत लौटने पर बेलुड़मठ की स्थापना।

आज ठाकुर-कृपा से इसी बेलुड़मठ के तत्त्वावधान में श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द नाम से देश-विदेश में सैंकड़ों केन्द्र / आश्रम स्थापित हो चुके हैं, हो रहे हैं जो श्रीरामकृष्ण-विचारधारा का बीज छिड़कने में कार्यरत हैं।

दूसरी— मास्टर महाशय (श्री म) द्वारा 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत' का कथन-लेखन-प्रकाशन।

स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण-विचारधारा के बीज छिड़कने का कार्य किया तो श्रम म ने कथामृत के कथन-लेखन-प्रकाशन द्वारा उन बीजों को सुरक्षित रखने का महान् कार्य किया। श्री म द्वारा एक ओर कथामृत-लेखन-कार्य चला तो दूसरी ओर उनके पास आने वाले जिज्ञासु भक्तों के सम्मुख कथामृत-कथन, कथामृत-वर्षण होता रहा। ठाकुर के संग रहते-रहते और ठाकुर-वाणी का स्वयं पालन करते-करते श्री म का तो जीवन ही हो गया था ठाकुरमय! वे ठाकुरवाणी के अनुसार अपने ही घर में बड़े घर की दासीवत् असंग भाव से रहते और अन्त तक इसी भाव में रहे। ठाकुर-वाणी के कथन-वर्षण के साथ-साथ श्री म के अपने इस आचरण ने उनके अनेक गृही तथा संन्यासी भक्तों को प्रभावित किया।

श्री म की सेवक सन्तान जगबन्धु महाराज (स्वामी नित्यात्मानन्द) को दीर्घकाल तक अपने सद्गुरु श्री म के साथ रहने का,

उनके मुख से ठाकुर-वाणी सुनने का, ठाकुर-वाणी के अनुकूल उन्हें जीवन-यापन करते देखने का सुयोग मिला। जिस तरह श्री म ठाकुर की वाणी को, उनके प्रतिदिन के क्रिया-कलापों को नित्यप्रति अपनी दैनन्दिनी (डायरी) में संजोया करते थे, उसी प्रकार स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज भी श्री म के मुख से निःसृत ठाकुर-वाणी को, श्री म के क्रिया-कलापों को अपनी डायरी में नित्यप्रति लिखा करते। जिस तरह ठाकुर श्री म से अपनी बताई बातें सुनते और स्थान विशेष पर उन का संशोधन करते, उसी तरह श्री म ने भी जगबन्धु महाराज से उनकी डायरी अनेक बार सुनी और जहाँ कहीं आवश्यक हुआ, उसमें संशोधन कर दिया। जिस तरह ठाकुर के देहत्याग के पश्चात् श्री म ने ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कलकत्ता से 'कथामृत' के रूप में ठाकुर-वाणी का प्रकाश किया, उसी तरह स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने भी अपनी शिष्या श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता को निमित्त बनाकर श्री म ट्रस्ट की स्थापना की और ट्रस्ट के अधीन कथामृत पीठ, चण्डीगढ़ से 'श्री म दर्शन' के रूप में श्री म के मुख से निःसृत ठाकुर-वाणी का, ठाकुर वाणी के अनुसार जी रहे श्री म के क्रिया-कलापों का प्रचार-प्रसार और प्रकाश किया।

'श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन' नाम से बंगला 'श्री म दर्शन' का प्रकाशन-कार्य सन् 1960 से भी पहले से शुरु हो गया था। सन् 1967 में इस प्रकाशन-संस्था को स्वामी जी महाराज ने ट्रस्ट का रूप दिया और सन् 1977 में ट्रस्ट ने कथामृत पीठ का निर्माण कराया। श्रीरामकृष्ण-कथा के प्रचार-प्रसार का यह कार्य अब इसी कथामृत पीठ के तत्त्वावधान में श्रीमती गुप्ता के निवास स्थान 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ से हो रहा है। सन् 1975 में स्वामी नित्यात्मानन्द जी के देहत्याग के पश्चात् उन्हीं की शिष्या श्रीमती गुप्ता, श्री म ट्रस्ट की अध्यक्षा बनीं। वे सन् 1958 में माँ शारदा के जन्मोत्सव पर स्वामी नित्यात्मानन्द जी के सम्पर्क में आई थीं। सन् 1975 तक स्वामी जी के सानिध्य में रहकर श्रीमती गुप्ता ने श्रीरामकृष्ण श्री म साहित्य का न केवल मूल बंगला से हिन्दी में यथावत् अनुवाद-कार्य ही किया अपितु इस समस्त साहित्य का आजीवन प्रकाश, प्रसार और प्रचार करते हुए, ठाकुर-वाणी के ही अनुकूल जीवन जीते हुए वे 26 मई, 2002 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन ठाकुर-गोद में समा गईं।

❖

श्री 'म' ट्रस्ट के प्रकाशन

1. श्री म दर्शन

बंगला संस्करण— भाग 1 से 16— स्वामी नित्यात्मानन्द

श्री म दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाईबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. श्री म दर्शन

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 16

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. श्री म दर्शन

अंग्रेज़ी संस्करण— ('M'— The Apostle and the Evangelist)

श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M'— The Apostle and the Evangelist नाम से किया है। ट्रस्ट के पास प्रथम ग्यारह भाग तो उपलब्ध भी हैं। शेष पाँच भाग अभी मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

4. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में सम्पादित वृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. A Short Life of Sri 'M'

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री म ट्रस्ट के फाऊँडर सैक्रेट्री प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी गई श्री म की संक्षिप्त जीवनी।

6. **Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita**

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित श्री म के जीवन तथा 'कथामृत' पर शोध प्रबन्ध

7. **श्री श्री रामकृष्ण कथामृत**

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 5

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700 006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था।

इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली— सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. **Sri Sri Ramakrishna Kathamrit**

English Edition

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेज़ी-अनुवाद।

9. **नूपुर**

वार्षिक स्मारिका

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें

अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती हैं। साथ ही कथामृतकार श्री म के द्वारा 'श्री म दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं।

❖

श्रीरामकृष्ण परमहंस
(18-2-1836 – 16-8-1886)

श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट
(श्री म ट्रस्ट)

कार्यालय : 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन 0172-2724460

मन्दिर : श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ (श्री पीठ)
सैक्टर 19-डी, चण्डीगढ़ 160019

website : http://www.kathamrita.org
email : srimatrust@yahoo.com

श्री श्री रामकृष्ण कथामृत

श्री 'म' कथित

पाँच भागों में सम्पूर्ण ग्रन्थावली का

तृतीय भाग

मूल बंगला का शब्द-शब्द अनुवाद

अनुवाद

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता

सहयोग

डॉ० नौबत राम भारद्वाज

एम०ए०, पीएच० डी०

ISBN-13 : 978-81-88343-07-2 (Set)
ISBN-13 : 978-81-88343-09-6 (Volume-III)

प्रथम संस्करण : बुधवार, नागपञ्चमी, 15 जुलाई, 1987
पूज्यपाद आचार्य श्री 'म' की 133वीं जन्म तिथि
द्वितीय संस्करण : दीपावली, 17 अक्तूबर, 2009

प्रकाशन : प्रेसीडेण्ट
श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट
579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन - 0172-2724460
सहयोग : डॉ० कमल गुप्ता
(श्रीमती) डॉ० निर्मल मित्तल और श्री ईश्वर चन्द्र

मुद्रण : प्रिंट-लैण्ड, कश्मीरी गेट, दिल्ली - 110006

मूल्य : 100/- रुपये

विषय सूची

सन् 1908 में बंगला कथामृत भाग-III (प्रथम संस्करण) के प्रकाशन के समय श्री म का 'निवेदन' :

श्री श्रीगुरुदेव
श्री पादपद्म भरोसा
पूजा और निवेदन

नमस्ते भुवनेशाणि नमस्ते प्रणवात्मके।
सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्त्तये॥

माँ,

आश्विन का महामहोत्सव उपस्थित है— हमारा नैवेद्य ग्रहण करो। श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, तृतीय भाग इस बार का नैवेद्य है।

माँ, आपके आशीर्वाद से श्री श्रीकथामृत प्रथम भाग का चतुर्थ संस्करण, द्वितीय भाग का द्वितीय संस्करण और तृतीय भाग का प्रथम संस्करण प्रकाशित हो गया है। हम कर जोड़कर फिर प्रार्थना करते हैं कि जैसे श्री श्रीठाकुर के श्री पादपद्मों का ध्यान करके और उनके श्रीमुख से निकले वेदान्त-वाक्य-चिन्तन करके— उनके श्रीमुख का कथामृत-पान करके— उनके भक्तों के संग विहार, अलौकिक चरित्र स्मरण, मनन करके देश-देश में, सर्वकाल में आपकी सन्तानों के हृदय में शान्ति, आनन्द, श्री पादपद्मों में शुद्धा भक्ति और अन्त में परमपद लाभ हो!

माँ, श्री ठाकुर की वाणी और उनके भक्तों की वाणी एक ही है। आज हम ईश्वर-प्राप्ति के लिए नरेन्द्र की व्याकुलता

और तीव्र वैराग्य[1] का चिन्तन करते हैं। और श्री विद्यासागर, शशधर, डॉक्टर सरकार आदि पण्डितों के प्रति उनकी आश्वासन-वाणी और भक्तिपथ-प्रदर्शन का चिन्तन करेंगे। जो लोग 'मैं पापी, मेरा क्या फिर उद्धार हो सकता है' इस प्रकार सोचते हैं, उनके प्रति[2] अभय-वाणी जैसे न भूलें। और 'धर्म-संस्थापन के लिए मैं युग-युग में अवतीर्ण होता हूँ'[3] जैसे हमारा मूल-मन्त्र हो जाए।

एकान्त शरणागत

आपके प्रणत सन्तानगण

देवी पक्ष,
आश्विन 1315 (बं०) साल (1908 ईसवी)

---

1 पृष्ठ 284 2 पृष्ठ 130, 133 3 पृष्ठ 144

निवेदन

(प्रथम संस्करण)

हिन्दी भाषा-भाषी भक्तों के हाथों में श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के तृतीय भाग का यह प्रसाद देते हुए अतीव प्रसन्नता है और सन्तोष भी कि और अधिक संख्या में आन्तरिक-जिज्ञासु-भक्त युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण की अमृतमय अभयकारी वाणी के परिशीलन से मनुष्य-जीवन के ध्येय— ईश्वर-दर्शन— को प्राप्त कर, जीवन्मुक्त होकर जीवन-यापन करेंगे। अवतारी-पुरुषों की वाणी का श्रवण-मनन-निदिध्यासन करने के अतिरिक्त अन्य सरल उपाय भी तो नहीं है ब्रह्मज्ञान-लाभ का या ईश्वर-दर्शन का। अत: पूर्ण विश्वास है कि सद्य अवतार भगवान श्रीरामकृष्ण की 'कथामृत' के रूप में रिकार्ड की गई यह वाणी आचरण में लाए जाने पर सभी भाई-बहिनों को स्व-स्वरूप का ज्ञान-लाभ कराएगी।

पूज्यपाद आचार्य श्री म के 133वें जन्म-दिवस के शुभ अवसर पर हम सबकी श्री श्रीठाकुर, माँ, स्वामीजी, श्री म तथा उनके अन्य पार्षदों से प्रार्थना है कि जो सम्पूर्ण प्रेम-भक्ति-भाव श्री श्रीठाकुर ने बंगला-कथामृत द्वारा भक्तों में वितरित किया है, वही सम्पूर्ण प्रेम-भक्ति-भाव इस हिन्दी 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत' से भी भक्तों को उसी रूप में प्राप्त हो।

इस ग्रन्थ की रचना और प्रकाशन में जिन्होंने जिस प्रकार की भी सहायता प्रदान की है, उन सबके लिए मैं आभार व्यक्त करती हूँ। इस सम्बन्ध में प्रिय भाई रामप्रकाश गुप्ता और डॉ० नौबतराम का सेवा-सहयोग विशेषत: उल्लेखनीय है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे हम सभी से निष्काम सेवा लेते रहें

जैसा कि स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने 20 दिसम्बर, 1967* को रोहतक में प्रार्थना की थी।

इस ग्रन्थ का पाठ करके हिन्दी भाषा-भाषी भ्राता-भगिनियों को भगवान में भक्तिलाभ हो, एवं संसार में परमानन्द प्राप्त हो; भगवान श्रीरामकृष्ण के श्री चरणों में सम्पूर्ण भक्ति-भाव हो; यही इस दीन अनुवादिका की एकान्त प्रार्थना है। ॐ तत् सत्!

विनीता,

ईश्वरदेवी गुप्ता

श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट
579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़-160018
नाग पञ्चमी, 15 जुलाई, 1987 ईसवी।

---

* 20 दिसम्बर, 1967 को की गई प्रार्थना पृष्ठ xvii–xviii पर देखें।

निवेदन

(प्रस्तुत द्वितीय संस्करण)

श्री म ट्रस्ट (श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट) के संस्थापक स्वामी नित्यात्मानन्द जी की महासमाधि के पश्चात् ट्रस्ट की द्वितीय अध्यक्ष श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता अपने पास आने वाले हम ठाकुर-भक्त बालकों से प्राय: कहा करतीं—
''देखो, निरन्तर रुग्णावस्था में रहने पर भी 'कथामृत' के सभी पाँचों भागों का बंगला से हिन्दी में अनुवाद और इनके प्रकाशन का कार्य तो ठाकुर ने मुझ द्वारा सम्पन्न करवा लिया है पर अपने शरीर की लाचारी के कारण इनका संशोधन मैं न कर सकी। यह कार्य अब तुम करो।''

'कथामृत' प्रथम भाग का संशोधन-कार्य उन्होंने अपने सामने ही अपने मार्ग-दर्शन और अपनी देखरेख में इस जन द्वारा सन् 1996-97 में करवा लिया था। सन् 1998 में इसका प्रकाशन भी हो गया था। गत वर्ष सन् 2008 में 'कथामृत' के द्वितीय भाग का संशोधन भी अपने अशरीरी रूप* से उन्होंने स्वयं करवा लिया था। ठाकुर आगे भी इसी प्रकार यह कार्य करवाते रहें!

और अब कथामृत तृतीय भाग का यह संस्करण प्रस्तुत है यथासम्भव संशोधित रूप में।

इस कार्य में जिन-जिन का भी सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सभी का हृदय से धन्यवाद। मुद्रण-प्रक्रिया के अन्तिम चरण में श्री आशीश जी और उनकी पत्नी श्रीमती अनुराधा जी

---

* 26 मई, 2002 को बुद्धपूर्णिमा के दिन वे ठाकुर-गोद में समा गईं।

ने सम्पूर्ण समर्पित भाव से मूल बंगला संस्करण देखकर हमारी शंकाओं का समाधान किया है, विशेषतः बंगला गानों के हिन्दी-लिप्यन्तरण, transliteration में। उनके प्रति विशेष आभार।

— डॉ० निर्मल मित्तल

1020, सैक्टर 15-बी,
चण्डीगढ़ - 160015,
फोन : 0172-2772104, मो० : 9872010620

‘कथामृत’-प्रेरणा-स्रोत

जिस दिन मास्टर महाशय (श्री म) ने ठाकुर रामकृष्ण के प्रथम दर्शन किए थे, उसी दिन से ही निज कानों से सुनी ठाकुर-वाणी को, निज चक्षु से देखी ठाकुर-लीला को वे घर आकर अपनी डायरी में संजोते रहे।

अपनी डायरीबद्ध ठाकुर-वाणी को प्रकाश में लाने की श्री म की अपनी तनिक भी इच्छा / योजना नहीं थी।

ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् माँ सारदा ने जब श्री म के मुख से डायरीबद्ध ठाकुर-वाणी सुनी तो उन्होंने श्री म को प्रेरित किया कि वे जनकल्याण हेतु अपनी डायरी-बद्ध ठाकुर-वाणी प्रकाश में लाएँ। उन्होंने 26 नवम्बर, 1895 को बंगला में लिखे अपने पत्र में श्री म को लिखा था :

> बाबा जीवन,
>
> तुमने जो उनसे सुना, वही कथा ही सत्य है। इससे तुम्हें कोई भय नहीं। एक समय उन्होंने ही तुम्हारे पास यह सब कथा रख दी थी। इस समय आवश्यकतानुसार वे ही इसे प्रकाशित करवा रहे हैं। यह निश्चित जानना कि यह सब कथा प्रकाशित न करने से लोगों को चैतन्य होगा ही नहीं। उनकी समस्त कथा जो तुम्हारे पास है, वह सब ही सत्य है। एक दिन तुम्हारे मुख से सुनकर मुझे बोध हुआ कि वे ही वह समस्त कथा बोल रहे हैं।

जयरामवाटी,

27 आषाढ़, 1304 (बंगला) साल।

ठाकुर-वाणी को लीफलेंट-आकार में प्रकाशित देखकर नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) ने श्री म को लिखा था :

> ''...तुम बिल्कुल ठीक कर रहे हो। ...शाबाश! ...तुम्हारे प्रकाशन के लिए बार-बार धन्यवाद। ...बस यही भय है कि इस पैम्फ्लेंट-आकार से काम नहीं चलेगा... कोई बात नहीं, ...इसे प्रकाश में आने दो...''

—अक्तूबर, 1897

और दूसरे लीफ़लेंट के प्रकाश में आने के बाद उन्होंने श्री म को लिखा था :

> ''... आपके दूसरे लीफ़लेंट के लिए बार-बार धन्यवाद। यह वास्तव में विलक्षण है। ...मैं अब समझा कि हममें से किसी दूसरे ने उनका जीवनचरित पहले क्यों नहीं लिखा। यह महान कार्य तो केवल आपके लिए ही सुरक्षित किया हुआ है। वे निश्चय ही आपके साथ हैं।''

— नवम्बर, 1897

और

परिणामत: ठाकुर की यह वाणी 'श्रीश्री रामकृष्ण कथामृत' (कथामृत) नाम से बंगला में पाँच भागों में प्रकाश में आई।

'कथामृत' में वे ही बातें हैं जिन्हें, श्री म ने स्वयं ठाकुरमुख से सुना, ठाकुर के वही लीला-दृश्य वर्णित हैं जिन्हें उन्होंने निज चक्षुओं से देखा, उन्हीं पात्रों का वर्णन है जो श्री म के समक्ष उस समय वर्तमान थे। 8 दिसम्बर, 1924 को श्री म का जगबन्धु (स्वामी नित्यात्मानन्द) के साथ इसी विषय पर वार्तालाप हुआ था।

बातों-बातों में ठाकुर की बातों के तीन प्रकार के evidence (साक्ष्यों) की बात उठी :

(Three classes of Evidence)*

(तीन प्रकार के उपकरण)

प्रथम (direct and recorded on the same day)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने स्वयं श्री मुख से बाल्य, साधनावस्था इत्यादि के सम्बन्ध में अथवा भक्तों के सम्बन्ध में जो निज चरित बोले थे, और जिसे भक्तों ने उसी दिन ही लिपिबद्ध कर लिया था। श्री श्री कथामृत में प्रकाशित श्रीमुख-कथित चरितामृत है इसी जाति का उपकरण।

श्री म ने स्वयं जिस दिन ठाकुर के पास बैठकर जो देखा था या उनके श्रीमुख से सुना था, उसी दिन रात को (या दिवा भाग में) उन्होंने वह सब स्मरण करके दैनन्दिन विवरण (diary) में लिपिबद्ध कर लिया था। इस जाति का उपकरण है प्रत्यक्ष (direct) दर्शन व श्रवण द्वारा प्राप्त— वर्ष, तारीख, वार, तिथि समेत।

द्वितीय (direct but unrecorded at the time of the Master) ठाकुर के श्रीमुख से भक्तों ने स्वयं जो सुना था, उसे स्मरण कर इस समय बोल रहे हैं। इस प्रकार का उपकरण भी है खूब भला। और दूसरे अवतारों का प्राय: इसी रूप में हुआ है। तब भी

* श्री म दर्शन-IX, अध्याय 14 द्रष्टव्य

चौबीस वर्ष हो गए हैं। लिपिबद्ध रहने से जो भूल की सम्भावना है, उसकी अपेक्षा इसमें है अधिक भूल की सम्भावना।

तृतीय (hearsay and unrecorded at the time of the Master)
ठाकुर के समसामयिक 'हृदय मुखोपाध्याय', 'राय चैटर्जी' आदि अन्यान्य भक्तों से ठाकुर की बाल्य व साधनावस्था के सम्बन्ध में हमने जो सुना है अथवा कामारपुकुर, जयरामवाटी, श्यामबाजार–निवासी या ठाकुर–गोष्ठी के भक्तों के मुख से उनके चरित के सम्बन्ध में जो सुन पाया हूँ, वे हैं तृतीय श्रेणी के उपकरण।

'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' के प्रणयनकाल में श्री म ने प्रथम श्रेणी के उपकरणों पर ही निर्भर किया है।

कलकत्ता, 1317 (बंगला साल) :
1930 ईसवी

कथामृतकार श्री म के अन्तरंग शिष्य स्वामी नित्यात्मानन्द ने ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसार के लिए श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) की स्थापना के समय ठाकुर से यह प्रार्थना की थी :

प्रार्थना

हे कल्याणमय एवं स्नेहमय परम पिता ठाकुर!

आज हम जगत के सभी दुःख-सन्तप्त मनुष्यों के लिए शान्ति तथा आनन्द स्वरूप आपकी अमृतमयी वाणी का विनम्रभाव से प्रचार एवं प्रसार करने के उद्देश्य से इस 'श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट' (श्री म ट्रस्ट) की स्थापना करते हैं। स्वामी विवेकानन्द, आचार्य श्री म आदि अपने सांगोपांग पार्षदों तथा श्री श्री माँ के साथ आप हमें आशीर्वाद दें, हमारे साथ नित्य वास करें और मंगलमय दिशा में हमारा मार्ग सदा प्रशस्त करते रहें!

इस निष्काम कर्म तथा निःस्वार्थ सेवा-भाव से आपके वस्तु-स्वरूप-नरदेह में अवतीर्ण साक्षात् ईश्वर-स्वरूप को हम सतत अनुभव करें!

हमें वास्तविक शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति हो!

समस्त ब्रह्माण्ड के सकल जीव प्रशान्त एवं आनन्दमय हों! समग्र ब्रह्माण्ड में शाश्वत तथा अनन्त सुख–शान्ति का चिरस्थायी निवास रहे!
ॐ तत् सत्!

आपकी विनम्र सेवक–सन्तान,
स्वामी नित्यात्मानन्द

सिविल लाइन्ज, रोहतक।
20 दिसम्बर, 1967

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः॥

— श्रीमद्भागवत 10.31.9

हे प्रभो! आपकी कथाएँ अमृतस्वरूप हैं। संसार-ताप से तप्त जीवों के लिए तो वे जीवनस्वरूप हैं। ऋषियों ने, भक्त कवियों ने उनकी स्तुति की है। वे पापों को हरने वाली हैं। वे श्रवणमात्र से मंगलकारी हैं। वे सुन्दर, सुखद तथा बहुत सुविस्तृत हैं। इस संसार में जो उनका बखान करते हैं, वे (ही वस्तुतः) महान दाता हैं।

श्री 'म' के ठाकुर-दर्शन

श्री 'म' (महेन्द्रनाथ गुप्त) ने ठाकुर श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के 174 शुभ दर्शनों का चित्रण श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के पाँच भागों में किया है।

श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के इस तृतीय भाग में चित्रित 31 शुभ दर्शन :—

क्र.सं.	दिनांक	पृष्ठ	क्र.सं.	दिनांक	पृष्ठ
1.	05-08-1882	3	17.	12-04-1885	193
2.	24-08-1882	14	18.	09-05-1885	201
3.	22-10-1882	21	19.	23-05-1885	213
4.	24-10-1882	39/40	20.	13-06-1885	229
5.	21-07-1883	59	21.	28-07-1885	239
6.	20-08-1883	69	22.	18-10-1885	267
7.	07-09-1883	77	23.	30-10-1885	277
8.	09-09-1883	89	24.	06-11-1885	287
9.	27-12-1883	97	25.	04-01-1886	303
10.	02-03-1884	105	26.	05-01-1886	317
11.	30-06-1884	113	27.	14-03-1886	333
12.	09-11-1884	127	28.	15-03-1886	343/344
13.	10-11-1884	134	29.	09-04-1886	353
14.	14-12-1884	137	30.	12-04-1886	366
15.	07-03-1885	149	31.	13-04-1886	372
16.	06-04-1885	171			